



# श्री जवाहर-किरणावली

२०४६

अरुण

तृतीय-किरण  दिव्य-संदेश

पूय श्री जवाहरलालजी महाराज व भीनामर चातुसाम के  
कतिपय व्याख्यान



संपादक—

प० गोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ

प्रकाशक—

मेठ बहादुरमलजी माठिया, भीनामर (धीकानेर)

प्रकाशन—

बहादुरमल घाठिया,  
भीनामर ( बीकानेर )

प्रति १०० ]

प्रथमावृत्ति  
वि० सं० १९६६, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी  
सा० १० नवम्बर १९७०

[ मूल्य १ रुपय ]

मुद्रक—

रामस्वरूप मिश्र  
मनोहर प्रिंटर  
व्या

## मदीयम्

हमार देश के नवयुवकों।म धर्म क प्रति अग्रचि का जो भाव दिनों निन बढ़ता जा रहा है उसका एक कारण अगर पाश्चात्य शिक्षा है तो दूसरा कारण धर्मापदेशकों की उपेक्षा भा है। धर्मापदेशक अक्सर धर्म को मकीर्णता क कारागार में कैद कर रखते हैं और उसे परलोक के काम को चीज बताते हैं। वर्तमान जीवन में धर्म की क्या उपयोगिता है, और किम प्रकार ए पर धर्म का जीवन में समावेश होना आवश्यक है, मसी और उनका लक्ष्य शायद ही कभी जाता है। मनेप में रहा नाय तो आन धर्म 'व्यग्रहार' न रहकर 'भिद्वान्त' बन गया है।

समार म आन समाजवाट का भावना घट रही है और भारत भी उस भावना का अपवाद नहीं रहा है। धर्मापदेशक जय ग्वान्तत न्यक्तित्वाट की ओर आकृष्ट होकर 'यत्तिगत अभ्युत्थ' के टा साजन म धर्म की 'याख्या' करते हैं तय समानवागी नवयुवक धर्म का 'भिकारत भरी निगाह' से देखन लगता है।

११

न को उँचा उठाने के लिए प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो

पलों की आवश्यकता है। निम्न परी का एक पर उभड़ जायगा वह अग्र अनन्त और असीम आकाश में विचरण करने की इच्छा करेगा तो परिणाम एक ही होगा—अधःपतन। यही बात जीवन के मवध में है। जीवन की उन्नति प्रवृत्ति और निवृत्ति-यों के बिना साध्य नहीं है। अन्त निवृत्ति निरी अकर्मण्यता है और अन्त प्रवृत्ति चित्त की चपलता है। इसीलिए ज्ञानी पुरुषों ने कहा है—

अमुहादा विणिविती सुदे पविती य जाण चारित्त ।

अर्थात्—अशुभ से निवृत्त होना और शुभ में प्रवृत्ति करना ही सम्यक् चारित्र समझना चाहिए।

‘चारित्त रतु धम्मो’ अर्थात् सम्यक् चारित्र ही धर्म है, इस कथन को मानने रख कर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि धर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप है। ‘अहिंसा’ निवृत्ति है पर उसकी मात्रता विश्वमैत्री और समभावना को जागृत करने रूप प्रवृत्ति से ही होती है। अहिंसे अहिंसा व्यक्त होती है। किन्तु हमें प्राय जीवघात न करना सिखाया जाता है, पर जीवघात न करके उसके बदले करना क्या चाहिए, इस उपदेश की ओर उपेक्षा बताई जाती है।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म० के व्याख्यान म इन गुरुियों की पूर्ति की गई है। उन्होंने धर्म को व्याख्याय, मराठी और प्रवर्तन रूप देने की सफल चष्टा की है। अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा उन्होंने शास्त्रों का जो नवनीत जनता के समक्ष रक्खा है, निम्नदेह उसमें जीवनी शक्ति है। उनके विचारों की उत्तरता एसी ही है जैसे एक मामिन् विद्वान जैनाचार्य की होनी चाहिए।

आचार्य की वाणी में युगदर्शन की छाप है, समान म फैले हुए अनेक धर्म सन्धी मिथ्या विचारों का निराकरण है, फिर भी वे प्रमाण

भूत शास्त्रों से इन्द्र मात्र इधर उधर नहीं होते। उनमें समन्वय करने की अद्भुत क्षमता है। वे प्रत्येक शब्दावली की आत्मा को पकड़ते और इतने गहरे जाकर चिन्तन करते हैं कि वहाँ गीता और जैनागम एकमेक से लगते हैं।

गृहस्थ जीवन को अत्यन्त विरुद्ध देख कर कभी-कभी आचार्य तिल मिला उठते हैं और कहते हैं—‘मित्रो ! जी चाहता है, लज्जा का पर्दा फाड़कर सब जगें साफ-साफ कह दू।’ नैतिक जीवन की विशुद्धि हुए बिना धार्मिक जीवन का गठन नहीं हो सकता, पर लोग नीति का नहीं, धर्म की ही बात सुनना चाहते हैं। आचार्य उनसे साफ-साफ कहते हैं—‘लाचारी है मित्रो ! नीति की बात तुम्हें सुननी होगी। इसके बिना धर्म की माधना नहीं हो सकती।’ और वे नीति पर इतना ही भार देते हैं, चितना धर्म पर।

आचार्य के प्रवचन ध्यान पूर्वक पढ़न पर विद्वान पाठक यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि व्यवहार्य धर्म ही ऐसी सुन्दर उदार और सिद्धान्त सगत व्याख्या करने वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति अत्यन्त विरल होते हैं।

आचार्य श्री अपने व्याख्यय विषय को प्रभावशाली बनाने के लिए और कभी-कभी गूढ़ विषय का सुलभ बनाने के लिए कथा का आश्रय लेते हैं। कथा कहने की उनकी शैली निराली है। साधारण कथानक में व जान डाल देते हैं। उनमें चादू-सा चमत्कार था जाता है। उन्होंने अपनी सुन्दर शैली, प्रतिभासयी भावुकता पर विशाल अनुभव की सहायता से कितने ही कथा-पात्रों को भाग्यवान बना लिया है। ‘मन्त्रा फला धम्मफला निणइ’ अर्थात् धर्मफला समस्त कलाओं में उत्कृष्ट है, इस कथन के अनुसार-आचार्यश्री की कथाएँ उत्कृष्ट काटि की कला का निरर्शन हैं। प्रायः पुराणों और इतिहास

में परिणत क्याओं का ही प्रवचन करते हैं पर अनेकों बार मुनी हुई कथा भी उनके मुख से परम मौलिक अश्रुतपूर्व भी जान पड़न लगती है।

आचार्य के उपदेश की गहराई और प्रभावोत्पादकता का प्रधान कारण है, उनके आचरण की उच्चता। ये उच्चश्रेणी के आचारनिष्ठ महात्मा हैं।

आचार्य के प्रवचनों का उद्देश्य न तो अपना वस्तुत्वकांगल प्रकट करना है और न विद्वत्ता का प्रदर्शन करना, यद्यपि उनके प्रवचनों से उक्त दोनों विशेषताएँ स्वयं मलिन ही हैं। श्रोताओं के जीवन को धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से ऊँचे उठाना ही उनके प्रवचनों का उद्देश्य है। यही कारण है कि वे उन बातों पर बारम्बार प्रकाश डालते नजर आते हैं जो धर्ममय जीवन की नव व के समान हैं। इतना ही नहीं, वे अपने एक ही प्रवचन में अनेक जीवनोपयोगी विषयों पर भा प्रकाश डालते हैं। उनका यह कार्य उस शिक्षक के समान है जो शोध्यालय को एक ही पाठ का एक बार अभ्यास कराकर ऊँचे स्तर के लिए तैयार करता है।

विश्राम है यह प्रवचन समग्र पाठनों को अत्यन्त लाभप्रद मिद्ध होगा। हम समग्र के प्रकाशन की आशा देन बाल श्रीहितचन्द्र आचर मठल गनलाम और प्रकाशक सेठ बहादुरमलनी बाँठिया, भीनासर, के प्रति हम पाठनों की ओर से कृतज्ञता प्रकाशन करते हैं।

सम्पान करते समय मूल व्याख्यानों के भावा का और भाषा का पूरा ध्यान रक्का गया है। फिर भी यह छद्म ही पैसा जो अभ्रान्त होने का गया करे? अगर कहा भाव भाषा सवधी अनौचित्य दिखाई पड़े तो उसका उत्तराधिकार सम्पादक के नाते मुम पर हैं।

‘जयान्तर किरणावली’ का पहली और दूसरी किरण भी माथ ही प्रकाशित हो रही है। अभी मुझे सूचना मिली है कि धामानर का आगे का जैन हितकारिणी सम्यथा न पूर्यक्षी का उपलब्ध साहित्य प्रकाशित करना तय किया है। हितकारिणी सम्यथा का यह पुण्य निश्चय उगाड़ के योग्य है। आशा है इस किरणावली की अगला अनेक किरणें भी शीघ्र पाठकों को हस्तगत होंगी।

जैन गुरुकुल,  
ब्यावर  
दीपावली, १९३३

}

—शोभाचन्द्र भास्कर, न्यायतीर्थ





## प्रकाशक के दो शब्द



परम प्रनापी जैनाराय पृज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के जनहितकर व्याख्यान प्रकाशित करने का सुयोग पाकर मेरी प्रसन्नता का पार नहीं है। सर्व माधारण जनता हमसे लाभ उठाये इसाम मेरी वृत्तार्थता है।

राजनीतिक परिस्थितिक कारण कागज का मूल्य तेज बढ़ गया है और इतने पर भी समय पर आवश्यक कागज नहीं मिलता। फिर भी पुस्तक का मूल्य अधिक नहीं रखना गया है। पुस्तक-विषय की आय भी साहित्य प्रचार में ही खर्च की जायगी।

जब पुस्तक प्रकाशन का निश्चय हुआ तब पृज्य श्री का नयन्ती कालिक शुभा चतुर्था को बहुत दिन नहीं रह गये थे और उस समय पर पुस्तक प्रकाशित करनी थी। साहित्य प्रेमी प० शान्तिलालजी शेट के घोर परिश्रम से पुस्तक समय पर प्रकाशित हो सका है। अतएव हम पंडितजी का आभारी हैं।

शीघ्रता के कारण प्रक मधधी जुटिया का गह जाना स्वाभाविक है। आशा है प्रेमी पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।



श्रीमान् सेठ बहादुरमल्लजी बाठिया  
भीनासर ( बीकानेर )



# श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी सा वाठिया

[ सच्चित्त परिचय ]



स्थानिकवासी सम्प्रदाय के पुगन नायकों का स्मरण करने पर भीनामर ( बीकानेर ) के श्रीमान् सेठ बहादुरमलजी सा वाठिया का नाम अवश्य याद किया जाता है । आपने विगत वर्षों में समाज की बहुमूल्य सेवाओं की हैं । समाज की अनेक प्रसिद्ध सस्थाओं के साथ आपका घनिष्ठ सवध रहा है ।

सेठ बहादुरमलजी सा एक आदर्श श्रीमान् के समस्त गुणों में युक्त महानुभाव हैं । आपके श्रेय की उन्नता, सन्तोषारिता, मरलता और सेवाप्रेम अनुकरणीय हैं ।

न्दारतो वाठिया-वंश में परम्परागत वस्तु घने गर् है । सेठ बहादुरमलजी सा को भा बह वसीयत म मिली है । सेठजी के पिता मह श्रीहजारीमलजी वाठिया ने एक लाख, एकतालास हजार रुपय का न्दरे गने किया था, जिसके मावेनिक कार्यों में सेदुपयोग करते हुए आपने भी अपने जीवनकाल में लगभग संवा लाख रुपयों का दान किया है ।

आपकी और से भीनासर में एक जैन औषधालय चलता है। बहुत वर्षों तक मेठनी अपने निजी स्वयं से और निजी रेसिपेस में उसका संचालन करते रहे। वि. स. ६६ में आपने स्थायी रूप प्रदान करने के उद्देश्य से २५०००) रु. दान कर औषधालय का फंड बना दिया है।

पॉन्सपोल के लिए आपने अपना एक मकान भेट दिया है, पचायत के लिए मकान और जमीन भी है, छोटा आदि पशुओं की ज्यामे प्रेरित हो गंगाशहर से लेकर भीनासर तक पत्नी सहित धनवाने में आपका मुख्य हाथ है और उसके लिए आपने आधा खर्च भी किया है।

पूज्यश्री के प्रति आपका अनुपम भक्ति है। पूज्यश्री को तब युवाचार्य पदवी देने का श्रीमन्त्र ने निश्चय किया, पर पूज्यश्री ने उसे स्वीकार न करते हुए सामान्य मुनि के रूप में ही रहने की इच्छा प्रदर्शित की थी तब स्वर्गीय सेठ वर्धमानजी पीतलिया के साथ आप पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और आपने युवाचार्य पद की स्वीकृति प्राप्त की।

जलगाँव में तब पूज्यश्री का स्वास्थ्य बहुत अधिर खराब हो गया था, तब आप अपने घर-द्वार की चिन्ता छोड़कर पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित रहे। उस समय की आपकी भक्ति अत्यन्त सराह

नीय है। मधु १६८४, ६८, और ६६ म भी आपको पूज्यभी की मया का महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त हुआ है।

गद है वि वि म १६६६ में आप लफया मे प्रस्त हो गये हैं और चलन-चिरने में अममर्थ हैं। फिर भी भक्ति व आपिक्य के कारण आप प्रतिष्ठित पूज्यभी तथा सर्वा व श्वा करने के लिए धाम तीर पर बनबाई गई गाड़ी में किमी प्रकार जान हैं, सामाजिक करते हैं और जगत्या मुनते हैं। जय अनक मन्दुग्म्ल लोग धमक्रिया में प्रमाणील बन रहा हैं तथ गेठ मा की यह धर्मभक्ति देखकर हृदय में 'बाह-बाह' निरल पड़ता है।

गद मा की धमपत्री का जय स्वर्गवाम हुआ, तथ आपकी उम्र मिय ३६ वर्ष का थी। धन की बहुलता और यौवनकाल हो पर भी आपको दूसरा विवाह नहीं मिया और पूण मध्यम्य पाला करने का भीष्म प्रतिष्ठा ले ली। जहाँ ६० वर्ष के वृद्ध काम-धामता के गुलाम को रहत हैं वहाँ गेठ मा का भर जवानी में पूर्ण मध्यम्य-पाला मिमन्नेद लव बहुत उषा आर्ग है और इगने एक जीवत की उषा का अनुमात लगाया जा सरता है। आपक मध्यम्य का ही यह प्रताप है कि लफया म दीर्घ काल म प्रस्त होन पर भी आप अथ तक मंभगत करते रहत हैं।

गेठ का अनुमजती मा को मानिन्य म बहुत प्रम है। आपन अरती और म बड़ दुम्के प्रकारिता को हैं और कइयों क प्रहारा

में सहायता प्रदान की है। 'धर्म द्यालया' की दो हजार प्रतियाँ आपने बिना मूल्य विहीन कराई और 'मृत्युमूर्ति हरिश्चन्द्र', 'ब्रह्मचर्य व्रत', 'सुदर्शन चरित्र' और 'मुसलमनिका सिद्धि' आदि पुस्तकों को अर्द्ध मूल्य में विक्रय करने के लिए सहायता दी। प्रस्तुत पुस्तक 'दिव्य-सन्देश' भी आपकी ही सहायता से प्रकाशित की जा रही है। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के जीवन-चरित के लिए आपने दो हजार रुपये की बिना माँगी सहायता दी और अपने साहित्यप्रेम एवं धमानुराग का परिचय दिया।

दीक्षाभिलाषी वैरागियों को आपकी ओर से शास्त्र आदि धर्मोपकरण भेंट किये जाते हैं। आपने अपने अध्ययन के लिए पुस्तकों का धन्यालय के रूप में संग्रह किया है निम्नमें छपे हुए ग्रंथों के अतिरिक्त हस्तलिखित धर्म ग्रन्थ भी हैं।

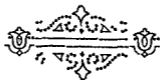
आज कल भी आप 'हितेच्छु श्रावण महल' रतनाम आदि अनेक मस्याओं के प्रथमश्रेणी के मन्स्य हैं। इस प्रकार आपके जीवन की सक्षिप्त रूपरेखा है।

आपका कुटुम्ब बीकानेर के प्रसिद्ध धनिकों में गिना जाता है। कलकत्ता और मन्सुर (आसाम) में आपके पस चलते हैं और भिषेपुरा (पंजाब) में आपकी विशाल जमीनारी है। कलकत्ते में इतरी को आपका प्रसिद्ध कारखाना है। इस प्रकार धन का भरापूर

भंडार होन पर भी आपकी सांगी प्रशसनीय है। आप अत्यन्त सरल, मिलनसार और भावुक हैं।

आपके सुपुत्र कुँ० तोलारामजी तथा कुँ० श्यामलालजी भी बड़े सेवामात्री, धर्मानुरागी और सरल हय हैं। आपमें समान को बड़ी बड़ी आशाएँ हैं।

शासनदेव में प्रार्थना है, मठ बहादुरमलजी माहदय बाँटिया स्वास्थ्य के माथ चिरनीजन प्राप्त करें और अनुररणीय आन्श समान के समन उपस्थित करते रहे।





# दिक्क-सन्देश : : विषयानुक्रम



न०	विषय	पृष्ठ
१	ब्रह्मचर्य	१-३१
२	रक्षाबन्धन	३२-५३
३	धर्म की व्यापकता	५४-७४
४	आघात प्रत्याघात	७५-९३
५	महिदान्त	९४-१०३
६	सच्चे सुरा का मार्ग	१०४-१०४
७	स्याद्वा	१०५-१४४
८	विवेक	१४६-१४७
९	मनुष्यता	१४८-१६६
१०	जहरीली चड	१७०-१६४
११	डगर अहिंसा	१६६-२४
१२	नारी-सम्मान	२०६-२२५
१३	मन्याप	२०६-२३७
१४	आशीषा	२३८-२४६
१५	चार चयन	२४७-२६६





## ब्रह्मचर्य प्रार्थना

श्री आनीश्वर स्वामी हो,  
प्रणमू स्तिर नामी शुभ मणी प्रमु अन्तर्माया घाप ।  
मो पर ग्दर करीजे हो,  
मटीजे चिन्ता मन तणी, ग्दारा काट पुराकृत पाप ॥

भगवान् आदिनाथ की यह प्रार्थना की गड है । ऋषभदेव के नाम से जैन और अर्धन जाता उन्हें अपना आराध्यदेव मानता है । आदिनाथ भगवान् इस अवसरपिणी काल क प्रथम तीर्थंकर हुय हैं । उनक जीवन पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि भगवान् ऋषभदेव ने धर्म-तीर्थ की स्थापना करने स पहले जनता में धार्मिक पात्रता उत्पन्न करने के लिये सुन्दर समाज-व्यवस्था की थी । उन्होंने विविध कलाओं का स्थापना की और शिक्षा पद्धति भी चलाई थी । समाज शांति के लिये भगवान् ने नीति निर्माण किया और वर्ण व्यवस्था की भी नींव डाली थी ।

शास्त्रों के मर्म का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के द्वारा का दुर्ग व्यवस्था करने की सुविधा के लिये है। यह अहङ्कार का पापण करने के लिये बना था। अतएव आत्म-वर्णन के नाम पर जो च्यता चारता की भावना फैली हुई है, वह वर्ण व्यवस्था का स्वरूप नहीं है। यह वर्ण व्यवस्था का विकार है। प्रत्येक व्यवस्था कुछ समय व्यतीत होने पर सब साधारण के सम्पर्क से विकृत हो जाती है। यहाँ तक कि लोग उमका मूल मिद्धात मुला-नेते हैं और उसका विविध विचार का इनका अर्थ महत्व-नेते हैं कि उमका मूल मिद्धात को खोल निकालना भागुरिफल हो जाता है। जब उम व्यवस्था का मूल मिद्धात विचार म-य च्यता है तो अनेक लोग उम हानिकारक और अनुपयोगी समझ कर, उमसे घृणा करने लगते हैं। अगर हम प्रकार घृणा करने वाले लोग शोष के पात्र हैं तो उनसे पहले दोषी य-ह जा अमृत मरीची हित-कारक शुद्ध व्यवस्था में विचार के विषय का मर्मिधरण करके उसे विपैली बना डालते हैं, तथापि विवेकशील विद्वानों का यह कतव्य है कि क्विसी व्यवस्था का समूल नष्ट करने का प्रयत्न करने से पहले उमके अस्तित्व का अन्वेषण करें और उसे पहचान कर आय हुए विकारों को ही दूर करने की चेष्टा करें।

1

वर्ण व्यवस्था सामाजिक और राष्ट्रीय अ-युक्त के लिये अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी थी और अब भी है परन्तु वर्ण व्यवस्था का वर्तमान विकृत रूप अत्यन्त व्याज्य है। उदाहरण के लिये आज रत्न के सत्रिय मूक पशुओं का शिकार करने से ही अपने-आपके धर्म की शोभा समझते हैं और राष्ट्र-रक्षा के अपने अमली कर्तव्य से विमुक्त हो गये हैं। कहा जा रहा है, राष्ट्र की निर्धन जनता की रक्षा करना और कहीं बेचारे घाम खा कर धन में रहने

वाने हिरन आनि सौम्य एव मूक प्राणियों की निर्दयतापूर्ण हिंसा ।  
नेनों में आराश पाताल का अन्तर है ।

एक समय ऐसा था जब क्षत्रियों ने अपने धर्म का पालन करके  
सम्राट को इस प्रकार प्रकाशित कर दिया था, जैसे मूर्य अपने प्रखर  
प्रताप से विश्व को आलोकित कर नेता है । वदे २ राजा-मन्तराजा  
ने और अपि महर्षिणा ने धर्म के तेज को धारण करके पाप के  
अन्धकार को विलीन-सा कर दिया था । उन तेजस्वी पुरुषों की  
जीवन-कथा आज भी हमें उनके पशुनुमरण के लिए प्रेरित और  
वन्मति करती है । प्राचीन काल में क्षत्रियों ने अपना चात्र धर्म  
किम प्रकार दिग्गया था, इसका उल्लेख इतिहास के पन्नों पर सुवर्ण  
वर्णों से लिखा हुआ है । वे गुरुभ्यः पर आनकल के आचार  
विचार वाले नहीं थे । गुरु गम्य अगम्य का अवगम था, भक्ष्य  
अभक्ष्य का भान था और कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक था । जिस  
गम्य अगम्य का ज्ञान नहीं है, भक्ष्य अभक्ष्य का विचार नहीं है और  
कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का शोध नहीं है वह सबे अर्थ में मनुष्य कहलान  
योग्य भा नहीं है ।

जिन्होंने कर्त्तव्य के राजमार्ग को छोड़ कर अकर्त्तव्य के पथ  
पर पैर रक्खा था उन्हें सम्राट घृणा की दृष्टि से देख रहा है ।  
अकर्त्तव्य करने वाले स्वयं तो पतित होते ही, पर उन पर जिने दूसरों  
का उत्तरदायित्व था, उन्हें भी बलें हूँ । उन्होंने उन मोर्ले और  
अज्ञाना लोगों को भी पतित बना लिया ।

वीर क्षत्रियवश ने अपने कर्त्तव्य में रम रह कर, न कबल अपने  
हा वश का, वरन चारों आश्रमा को देदीप्यमान कर दिया था । शास्त्रों  
में इस कथन के पोषक बर्तुत से उल्लेख मौजूद हैं । जैनिया के देवाधि  
देव तीर्थंकरों ने क्षत्रिय वश में ही जन्म लिया था । क्षत्र-तेज एक

बिना धर्म प्रकाशित नहीं होता। धर्म को प्रकाशित करने के लिए वीर क्षत्रियों ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। जिन्होंने अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दिया, उन्हें अपने तन का मितना मोह होगा, यह आप ही विचार लें। वास्तव में अपनी कुछ काम कर सकते हैं जिन्होंने अपने तन का मोह हटा लिया है। जिन्होंने अपने तन को धर्म में अधिक मूल्यवान् मान लिया शरीर को विलास का माधन समझ लिया, आमोद प्रमोद को अपने जीवन का उद्देश्य स्वीकार कर लिया और जिन्होंने सुकुमार बन कर सुख शण्या पर पड़े रहना ही अपना कर्तव्य बना लिया है, वे मसार में कुछ भी प्रमाण नहीं फैला सकते।

कह भाई कहते हैं—अभी पंचम काल है, कलिकाल है अतएव हमारी उन्नति नहीं हो सकती। जब समय ही बदल गया तब परिस्थिति भी प्रतिकूल हो गई। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि समय के बदल जाने का अर्थ क्या है? वही प्रध्वी है, वही सूर्य है, सूर्य का उमी प्रसार क्या अस्त हो रहा है। फिर बदल क्या गया है? और यों देखो तो समय प्रतिकूल बदलता ही रहता है। एक समय जो वर्तमान काल है वही दूसरे समय में भूतकाल बन जाना है और भविष्य काल वर्तमान रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। इस प्रकार काल अनादि में लेकर अब तक अविराम गति में चलता जा रहा है और सदैव निरन्तर बदलता चला जायगा। फिर अभी समय काल बदलने की शिफायत क्यों की जाती है?

माना, काल बदल गया है और बदलता जा रहा है, पर काल ने तुम्हारे अभ्युदय की मांग तो निर्गारित नहीं कर दी है? काल ने किसी के कान में यह तो कह नहीं दिया है कि तुम अपने कर्तव्य की ओर ध्यान मत दो। अपने प्रयत्न त्याग कर निश्चेष्ट होकर बैठे रहो। काल को गलत बना कर अपनी चाल को छिपाने का प्रयत्न करना

उपित नहीं है। अगर ऐसा हुआ तो काल का कुछ नहीं बिगड़ेगा—  
बिगाड़ तुम्हारा ही होगा। मचाई यह है कि जिनके ऊपर धर्माश्रम  
की रक्षा और व्यवस्था का उत्तरदायित्व था वही लोग आज इन्द्रियों  
के दास बन कर अपने कर्तव्य को भूल गये हैं। अगर वे अपना  
उत्तरदायित्व समझ लें तो उन्नति होने में विलम्ब नहीं लगगा।

मित्रो ! विपम काल तो क्षत्रियों के लिये बड़ा अन्धा अवसर  
गिना जाता है। विपम काल में और विपम परिस्थितियों में य अपने  
ज्ञात धर्म का प्रदर्शन करते हैं। जिन क्षत्रिय वीरों ने अपनी वीरता  
के जौहर दिखाये वह विपम काल ही था। महा शूरवीर क्षत्रिय  
विपम काल में नहीं डरता, डटना ही नहीं वह विपम काल में जूझ  
कर अपने ज्ञात-तेज को चमकाने के लिये उत्कण्ठित रहता है। जिस  
विपम काल में क्षत्रियां ने अपने धर्म का प्रदर्शन किया था, उस  
काल में उनके प्रतिपक्षियों का दग रह जाना पड़ा था।

बहादुर क्षत्रिय जिन प्रकार अन्य अन्याया को सहन नहीं कर  
सकते थे, उसी प्रकार रमणियों के आर्त्तनाद को भी सुन नहीं सकते  
थे। रमणियों की धर्मरक्षा के लिए उ होंने अपने प्राण सक्कट में डाले,  
अनक लड़ाइयाँ लड़ीं और घनघोर युद्ध किये।

वीर क्षत्रिय विलासमय जीवन को हेय और घृणित समझते  
थे। वे स्त्रियों की गोद में पड़ा रहना पसन्द नहीं करते थे। जिन  
क्षत्रियों ने विलासमय जीवन व्यतीत किया और जो रमणियों की  
गोद में पड़े रहे, उनकी क्या गति हुई, सो इतिहास के पन्ने पलटने से  
महत्त्व ही विदित हो सकता है। जिन वीरों ने अपने आदर्श-जीवन  
में भारत का मस्तक ऊँचा उठाया था, उनका मस्तक विलासपूर्ण  
जीवन बिताने वालों और स्त्रियों के साथ हरदम पड़े रहने वालों ने  
नीचा कर दिया। आप वीरों में वीर पृथ्वीराज चौहान के इतिहास को

पढ़िये। उसने भारत के शत्रुओं को अनेक घार परानित किया था। पर संयुक्ता के प्रेमपाश में बह तेमा फँसा कि बाग़द शप तरु अ त'पुर से बाहर न निकला। उसका फल यह हुआ कि शत्रुओं का बल ब' गया और उमे कै' होना पड़ा। शत्रुओं १ प्रखीराज को कै' किया अथात् समस्त भारतवर्ष को कै' कर लिया। एक वीर क्षत्रिय स्वनन्त्रता खो कर गुलाम बना बना, गारे भारत को उमन गुलाम बना दिया। जो क्षत्रिय अपने धम म च्युत होकर अपने देश को च्युत कर देता है वह अत्यन्त पातकी है।

चात्रधर्म का विषय बहुत विस्तृत है। इस पर भलीभांति प्रकाश डालने के लिए कई दिनों तक भाषण करने की आवश्यकता है। किन्तु आज मुझे ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में बोलने की सूचना दी गई है, अतएव इसी विषय पर कुछ प्रकाश डालूँगा। क्षत्रियों के तेजस्वी जीवन का ब्रह्मचर्य में घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। अतएव क्षत्रियधर्म में ब्रह्मचर्य का भी समावेश होता है।

ब्रह्मचर्य शब्द कैसे बना और ब्रह्मचर्य क्या वस्तु है सबप्रथम इस बात का विचार करना चाहिए। हमारे आर्यधर्म के साहित्य में ब्रह्मचर्य शब्द का उल्लेख मिलता है। जिन दिनों अवशेष ससार यह भी नहीं जानता था कि ब्रह्म क्या होता है और अन्न क्या चीज है नग धधग रह कर, कक्षा मास गार अपना पारिविज जीवन यापन कर रहा था, उन दिनों भारत बहुत ऊँची सभ्यता का धना था। उस समय भी उसकी अवस्था बहुत उन्नत थी। यहाँ के ऋषियाँ ने, जो समय, योगाभ्यास, ध्यान, मान आदि अनुष्ठानों में लगे रहते थे ससार में ब्रह्मचर्य नाम को प्रसिद्ध किया। ब्रह्मचर्य का महत्व तभी से चला आता है जब से धर्म की पुन-प्रवृत्ति हुई। भगवान् ऋषभ देव ने धर्म में ब्रह्मचर्य को भी अग्र स्थान प्रदान किया था। साहित्य

की ओर दृष्टिपान काजिये तो विन्ति होगा कि अत्यन्त प्राचीन माहित्य—आचारंग सूत्र तथा ऋग्वेद—में भी ब्रह्मचर्य की व्याख्या मिलता है। इस प्रकार आर्य प्रजा को अत्यन्त प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य का ज्ञान मिलता रहा है।

आनकल ब्रह्मचर्य शब्द का सवसाधारण में कुछ सजुचित मा अथ समझा जाता है। पर विचार करने से मालूम होता है कि वास्तव में उमका अथ बहुत विन्तुत है। ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत उदार है अतएव उमकी महिमा भी बहुत अधिज है। हम ब्रह्मचर्य का महिमागान नहा कर सकत। जो विन्तुत अथ को लक्ष्य में रख कर ब्रह्मचारी बना है उसे अखण्ड ब्रह्मचारी कहते हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी का मिलना इस काल में अत्यन्त कठिन है। आनकल तो अखण्ड ब्रह्मचारी के दर्शन भी दुलभ हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी में अद्भुत शक्ति होनी है। उमके लिए क्या शक्य नहीं है? वह चाहे सो कर सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी अकेला सार नद्याण्ड को हिला सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी यह है जिमने अपनी समस्त इन्द्रियों को और मन को अपने अधीन बना लिया हो—नो इन्द्रिय और मन पर पूर्ण आधिपत्य रखता हो। इन्द्रियों जिम फुसला नहीं सकती, मन जिसे विचलित नहीं कर सकता। ऐमा अखण्ड ब्रह्मचारी ब्रह्म का शीघ्र साक्षात्कार कर सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी की शक्ति अजय-गजय की होती है।

ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को अखण्ड ब्रह्मचर्य का आदर्श सामने रखना चाहिये। यद्यपि अखण्ड ब्रह्मचारी के दर्शन होना इस काल में कठिन है, तब भी उमके आदर्श को सामने रखते विना सादा ब्रह्मचर्य भी यथायत्न पालन करना कठिन है। सोई यह कह सकता है कि जब अखण्ड ब्रह्मचारी हमारे सामने ही नहीं है, तब उसका आदर्श अपने सामने किस प्रकार रखा जाय? इसका उत्तर



इस प्रकार है। भूमिति शास्त्र में भूमध्य रेखा का बड़ा महत्व है। भूमध्य रेखा सिर्फ एक कल्पना मात्र है। वास्तव में भूमध्य रेखा की कोई मोटाई नहीं है, फिर भी इस कल्पित भूमध्य रेखा को यथासंभव करने में तमाम रेखाएँ खींची जाती हैं। इसमें तमाम पृथ्वी भण्डल का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार यदि अखण्ड ब्रह्मचर्य को थोड़ा देर के लिए कल्पित मान लिया जाय, तो भी उस लक्ष्य बनाये रखने में सादे ब्रह्मचर्य का सम्यक् प्रकार से पालन किया जा सकता है। जैन शास्त्रों में पूर्ण ब्रह्मचारी की महिमा का मुक्त कण्ठ से गान किया गया है। जैन शास्त्रों में लिखा है कि अखण्ड ब्रह्मचारी को मनुष्य तो कहा, पर देवता, यज्ञ, किन्नर आदि सब देव नमस्कार करते हैं। ब्रह्मचारी में देवा की नम्र घनान की शक्ति किम प्रकार प्रादुर्भूत होती है यह विषय उहुत गूढ़ है। यहाँ इसका गहरा प्रतिपादन किया जाय तो उपस्थित भाइयों में मैं बहुत कम उमरे में समझ सकूँगा। अतएव मैं अपूर्ण ब्रह्मचर्य की जान आपके सामने रखता हूँ। जो अपूर्ण को समझ लेगा वह बाद में पूर्ण को सरलता से समझ जायगा। अपूर्ण को समझे बिना पूर्ण को समझा नहीं जा सकता।

अपूर्ण ब्रह्मचर्य केवल वीर्य-रक्षा को कहते हैं। वीर्य वह वस्तु है जिसके सहारे सारा शरीर टिका हुआ है। यह शरीर वीर्य में बना भी है। अतएव आँसू वीर्य हैं, कान वीर्य हैं, नासिका वीर्य है, हाथ पैर वीर्य हैं। मांस शरीर का निर्माण वीर्य से हुआ है, अतएव मांस शरीर वीर्य है। जिस वीर्य से सम्पूर्ण शरीर का निर्माण होता है उसकी शक्ति क्या माधारण कही जा सकती है? किसी ने ठाक हा कहा है —

मरण विदुपातेन जीवन विदुधारणात् ।

अर्थात् वीर्य के रूप ही जीवन टिका है। वीर्यनारा का फल मृत्यु है।

परन्तु अहमोम है कि लोग बड़ी वस्तु को भूल जाते हैं और छोटा मी चीज को महत्व दते हैं । छोटी को मान देना और बड़ी को भूल जाना इस यही स मूर्खता आरम्भ होती है । एक मीघा मा प्रश्न आपक सामन उपस्थित है । त्रनात्ये, आँस बड़ी है या सुरमा बड़ा है ?

'आँस बड़ी !'

फूटी आँस में कोई सुरमा डालता है ?

'नहीं !'

जो फूटी आँस में सुरमा आँसता है उसे आप क्या कहेंगे ?

'मूर्ख !'

आपसे तो प्रश्न हो चुका । अब एक प्रश्न बहिना से भी करना है । बहिनो ! बताना तुम्हारी नाक कामती है या नथ ?

'नाक !'

कोई बहिन नाक कटवा कर नथ पहनना चाह तो उस आप क्या कहगी ?

'मूखा !'

क्योंकि पहल नाक, फिर नथ । जब नाक ही न जागी तो नथ कहीं और कैसे पहनी जायगी ? जीभ को पान ग्याकर थाडा देर के लिए लाल फरन में क्या लाभ है जब कि वह गन्ती हो रही हो । निम मनुष्य न धीर्य जैमी महत्यपूर्ण और चीबनाधार वस्तु को व्यर्थ क मत्ता मौन में गर्च कर लिया बह मथ से बड़ा मूर्ख गिना जाना चादिए । जो धीर्य रक्षा के उपदेश से चिन्ता है उससे कटना चादिए कि, तू क्या चिदता है ? क्या तू धीर्य में पैदा नहीं हुआ है ? क्या धीर्य का तेरे ऊपर उपकार नहीं है ? यदि है तो उसकी रक्षा क उपदेश से क्या चिदता है ?

और देशों में क्या होता है, यह प्रश्न मरे सामने नहीं है। मैं भारतवर्ष को लक्ष्य करके ही कह रहा हूँ। भागतवाभिर्या न धार्य का दुरुपयोग करके विविध प्रकार की व्याधियों विमाही हैं। करोड़ों मनुष्य वीर्य की यथोचित रक्षा न करने के कारण रोगों का शिकार हो रहे हैं। न जाने कितने हतवीर्य लोग आज भूख में तड़प रहे हैं, शोक में व्यथित हैं। स्वतंत्रता की जगह गुलामी भोग रहे हैं। ग्रीक का विनाश करके लोगों ने अपने पैर पर आप ही कुन्हाड़ा मारा है। यही नहीं, उन्होंने अपनी मन्तान का भविष्य भी अधक़ामय बना डाला है। निचलों की सत्तान कितनी मजबूत होती होगी? आनकल के युवकों का तजोहीन बदन चेहरे पर पड़ी हुई भुर्रियाँ, मुँही हुई फमर और गड़हों में धँसी हुई आँखें देख कर तरस आये बिना नहीं रहता। यह सब जीवनतत्त्व की न्यूनता का द्योतक है। वीर्यनाश का ऐसे ऐसे भयकर परिणाम विराइ रहे हैं फिर भी कुछ लोग भूई लज्जा के बश होकर हम सम्भ्रम प्रकट बात कहन का विरोध करते हैं। अरु रई की पाटली में लगा हुआ कप तक छिपेगी? वह तो आप ही प्रकट होगी। ऐसी स्थिति में वीर्यरक्षा का उपदेश देना जीवन की प्रतिष्ठा का उपदेश देना है।

जो वीर्य रूपी राजा को अपने कावू में कर लेता है वह मार मसार पर अपना नावा रख सकता है। उसके मुग-मण्डल पर विचित्र तेज चमकता है। उसके नेत्रों से अद्भुत ज्योति टपकती है। उसमें एक प्रकार की अनोम्पी जमता होती है। वह प्रमत्त, नीरोग और प्रमोदमय जीवन का धना होता है। उसका डम बन के सामने चाँही मोने के दुफड़े किसी गिनती में नहीं हैं।

मित्रो! तुम—ओमवाल भाइ—पहले वीर ज्ञत्रिय थे। तुम्हारे विचारों में अनियापन बाद में आया है। अपने इन अनियापन का

विचारों को हृदय से निकाल लो। गीता में कहा है—‘श्रद्धामयोऽयं पुरुषः ।’ अर्थात् श्रद्धा से मनुष्य जैसा चाहे वैसा बन सकता है। तुम श्रांसवालों में किमी प्रकार का विगाड नहीं हुआ है। तुम्हारे शरीर में शुद्ध क्षत्रियरक्त लौड रहा है। ठो ! तुम्हारे उठे बिना बेचारा रक्त भी क्या करेगा ? ‘महता दोली धोतीरा बाणिया हों’ इस प्रकार की कायरतापूर्ण बातें कहना छोडो। हमने—साधुओं ने—तुम्हें बनिया नहीं बनाये थे ‘महाजन’ बनाये थे। ‘महाजन का अर्थ उडा आदमी’ होता है। ‘महाजनो यत्र गतं स पन्था’ महाजन जिस माग से जावे वही सुमार्ग है, अर्थात् वही माग अनुसरणीय है। एसा लोकोक्ति तुम्हारे विषय में प्रचलित था। तुम दुनिया का राम्ना बतलान वाले थे।

एक समय आप लोग में बह ताकत थी ऐसा सुख्खत थी, जिसके प्रताप से राजा भी आपके आग नतमस्तक होत थे। राज्य का शासन तुम्हारे ही हाथों में रहता था। अभी बहुत दिन नहीं बीते हैं, बीरानेर, उदयपुर, जयपुर आदि राज्यों के दीवान ‘महाजन’ हाये। इतिहास इस बात का साक्षी दे रहा है कि आप महाजन क्षत्रिय थे।

‘क्षतात् नारात् प्रायत रक्षति नति क्षत्रियः ।’ अर्थात् जो दुःख में मरते हुए को रक्षा करता है वह क्षत्रिय है। मनु ने तथा ऋषभदेव ने आपको मसार का रक्षा करने का भार सौंपा था। उ होंर हुक्म दिया था कि दुःख पर न अत्याचार करो, न करन लो। मझा क्षत्रिय निर्बलों का प्राता—रक्षक होता है। यह स्वयं भरना म्भीमार करेगा परन्तु अपने मामने निर्बलों को मरत न नेय मकेगा। क्षत्रिय अपनी रक्षा के लिये दूसरे का मह नहीं देखेगा क्वाञ्चि वह स्वयं रक्षित है। मनुष्य स्वयं रक्षित तभी बन सकता है जय उमने धीय की रक्षा की हो। वीर बनने के लिये पहले वीर्य की रक्षा करो। वीर्य हमारा जीवन

है। वीर्य हमारा मों त्राप है वीर्य हमारा ब्रह्म है। वीर्य हमारा नन है। वीर्य हमारा मर्यस्व है। जो मुर्य अपन मर्वस्व का ताश कर डालना है उसके बराबर हत्याग दूसरा कौन है ? जो मनुष्य करोड़ रुपया तोले की कीमन का अतर गये के शरीर को चुपडता है उम आप क्या कहेंगे ?

‘महामूर्य !’

मभा मे, मभ्यता का मर्यादा का ध्यान रखना ही चाहिये। ममीलिण नम्र मत्य नहीं रहना चाहता, फिर भी विचार कीजिये कि वीर्य करोड़ रुपया तोले की कीमन वाल अतर की अपेक्षा भी अधिक कीमती है, उना कामती पत्न्य को जो नाच न्रिया की तरफ आकृष्ट होकर कचाल चलन का चेष्टा म पैंर देता है उम नीच पुरुष को क्या कहा जाय ? उमे किसकी उपमा ली जाय ?

मित्रो ! जो मूर्य अमूल्य अतर गये को लगा वेगा वह पादशाह की उच्चत किससे करगा ? जो मनुष्य अपन अनमोल वीर्य रूपो अतर को नीच बर्याआ को मर्पि देगा वह ममार की पूता—मथा—किसमे करेगा ? याद रख्यो, वाय म थड़ा भारी शक्ति है। इस शक्ति के प्रभाव मे इन्द्र आदि षडे षड देवता भी पापल म पत्त की भौंति थरथर कौपने लगते हैं। महाभारत म एक म्थल पर वर्णन है कि अर्जुन ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ तप कर रहा था। उसकी उम तपम्या देव्य कर इन्द्र को भय हुआ कि यहीं अर्जुन मग राज्य न छीन ल। मे कहा इन्द्र पद स भ्रष्ट न कर दिया जाऊँ। इम प्रकार भयभीत होकर इन्द्र ने बहूत विचार किया। जब उम कोइ उपाय न सूक्त पडा तब उमन रम्भा नामक एक अत्मरा को बुला कर कहा—‘रम्भे, जाओ और अपन इल नौशल म अर्जुन का ब्रह्मचर्य मरिहत करके उसे तपोभ्रष्ट कर डालो।’

रम्भा मुमज्जित होकर अर्जुन के पास गई। वह अपना हाव भाव त्रिग्या कर बोली—‘हा हा नाथ ! मेरे प्रियनम ! यह नाशकारी मन्त्र आपको किस गुरु ने प्रतनाया है ? इस मन्त्र के पीछे पड कर मनुष्यत्व से क्यों हाथ धो रहे हो ? मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। तपस्या करके भी मुझ से घटिया सैन्य भी चीन जा जाओगे ? जय में उपस्थित हो गई हूँ तब तपस्या करना निष्फल है। इस कायकलश का त्यागिय और मुझे ग्रहण कर मानव जीवन को सफल बनाइये।’

अर्जुन अपनी तपस्या में मगन था। वह रम्भा को माता के रूप में देख रहा था।

रम्भा ने अपना मारा कौशल आजमा लिया। उसने विविध प्रकार के हाव भाव त्रिग्याये और अर्जुन को तपस्या में व्युत्थित करने के लिए सभी कुट्ट कर डाला, पर अर्जुन नहीं डिगा सो नहीं डिगा। अर्जुन मानो सोच रहा था—माता अपने बालक को किसी प्रकार मनाना चाहती है।

रम्भा सब तरह स हार गई। वह अर्जुन का धीर्य न सोच सकी। तब उसने अपना अतिम अस्त्र काम में लिया, क्योंकि वह भिल्ललाई हुई थी, गुलाम थी, पुरुष की विषय-वामना की तामी थी। वह नम हो गई।

रम्भा अप्सरा थी। उसका रूप-सौन्दर्य कम नहीं था। तिस पर अर्जुन को तपोभ्रष्ट और ब्रह्मचर्य भ्रष्ट करने के उद्देश्य से उसने अपने देवी बल से अद्भुत आकर्षक रूप-धारण किया। उसने काम देव की ऐसी फुलवाडा रिललाई कि न मोहित होने वाला भी मोहित हो जाय। परन्तु बार अर्जुन तिलमात्र भी न डिगा। उसका मन-भरु रच मात्र भी विचलित नहा हुआ। उसने मुस्करा कर कहा—‘माता

अगर आपन इम सुन्दर शरीर से मुझे जन्म दिया जाता तो मुझ में और अधिक तेज आ जाता ।”

रमा लज्जित हुई। वह अर्जुन से परास्त हुई। उमन अपना रास्ता पकड़ा।

अजन की प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गाँडे व धनुष की नि दा फरेगा उमका मैं फिर उडा दूंगा। भित्तो ! अर्जुन यदि वीर्यशाली न होता तो क्या ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर सकता था ? कदापि नहीं ! वीर्यशल के मामन शत्रु का शल सुन्दर है। अर्जुन जय अपने धनुष की पिन्दा नहीं मह सकता था तब क्या वह अपन वीर्य की पिन्दा महन कर लेता ? नहीं। क्योंकि वीर्य के बिना धनुष काम नहीं आ सकता। अतएव धनुष कम कीमती है और वीर्य अधिक मूल्यवान् है।

। हे क्षत्रिय पुत्रो ! ते पाण्डवों की सन्तानो ! जिस वीर्य क प्रताप से तुम्हारे पूर्वजों न विश्व भर में अपनी कीर्ति कौमुदी फैलाई थी, उस वीर्य का तुम अपमान करोगे ?

वीर्य का अपमान क्या है और कैसे होता है इसे समझ लीजिये। लुभावने गग रग में लीन होकर विलासमय जीवन व्यतीत करना ही वीर्य का अपमान है। क्या आप 'नोबिल स्कूल' के क्षत्रिय कुमार वीर्य का अपमान न करने की प्रतिज्ञा कर सकते हैं ? आप क्षत्रिय हैं। वीरता के साथ बोलिये—हाँ, हम अपमान न करोगे।

वीर्य का अपमान न करने से मरा आशय यह नहीं है कि आप विवाह ही न करें। मैं गृहस्थ धर्म का निपेय नहीं करता। गृहस्थ की अपनी पत्नी के साथ मर्यादा के अनुसार रहना चाहिये। वीर्य का अपमान करने का अर्थ है—गृहस्थ धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करके परस्त्री के मोह में पडना, वेश्यागामी होना अथवा

अप्राकृतिक वृत्तेष्टाय करन वीर्य का नाश करना । पितामह भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था । आप उनका अनुकरण करके जीवन पय त ब्रह्मचर्य पालें तो खुशा की बात है । अगर आपसे यह नहीं हो सकता तो विधिपूर्वक लग्न कर मरने की मनाई नहीं है । पर विवाहिता पत्नी के साथ भी सन्तानोत्पत्ति क मिवाय—श्रुतुदान के अतिरिक्त वीर्य का नाश नहीं करना चाहिये । स्त्रियों को भी यह चाहिये कि वे अपन मोडक हाव भाव से पति को विलानी बनाने का प्रयत्न न करें । जो स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा क मिवाय केवल विलास क लिए अपन पति को विलाम में पँसाती है वह स्त्री नहीं पिशाचिनी है । वह अपने पति के जीवन की चूसन वाली है ।

आप परस्त्री सेवन का त्याग करें, यह किसी पर ऐहसान नहीं है । यह तो अपने आपके लिए लाभदायक है । कल्याणकारक है । भारतवर्ष का यह दुर्भाग्य है कि आज भारत की सन्तान को वीर्य रक्षा का महत्व समझाना पड़ता है ।

ये भीष्म की सन्तानो ! भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानों में ब्रह्मचर्य का पावन मंत्र फूँटा था । आज क्यों की सन्तान कहलाते हुए उठा के मन्त्र को क्यों भूल रहे हो ? भीष्म गंगा का पुत्र था । उसने अपन पिता शान्तनु के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य पाला था । ब्रह्मचर्य क प्रताप से उन पिता भीष्म के बराबर उलशाली मसार म दूमरा कोई नही था । लोगो न हाथ जोड कर उनस प्रार्थना की—'महाराज ! आप ससार को हानि पहुँचा रहे हैं !'

भीष्म बोले—कैसे ?

लोगों ने उत्तर दिया—अन्नदाता, धीर पुरुषा की सन्तान भी धीर होती है । आप ससार में अद्वितीय वीर्यशाली धीर हैं । आप विवाह नहीं करेंगे तो आप क पश्चात् कौन धीर कहलाने योग्य होगा ?



पितामह ने हँसकर कहा—भाइयो तुम न ठीक कहा । यदि मैं विवाह कर लेता तो मेरी एक-दो सन्तान खीर होती । पर मेरे आजीवन ब्रह्मचर्य को देखकर कितनी सन्तान खीर बनेगी, इसका भी अन्दाजा आपने लगाया ?

अहा ! पितामह भीष्म ने जिस उच्चतर ध्येय का अपन सामन रखकर ब्रह्मचर्य-व्रत का आदर्श ब्रह्म किया, उसी ध्येय के प्रति उनकी ही सन्तान उदासीयता दिखला रहा है । यह देखकर पितामह क्या कहत होंग ?

कई श्रावक गर्दन हिलाते हुये कहते हैं—‘महाराज, बच्ची तो मरदा फोयनी पाँच दिनरा पचप्राण करा यो । ( अधिक तो थड़ा है नहीं, पाँच दिन का त्याग करा दीजिये ) अफमोस ! श्रावक का नाम धरात है पर श्रावक के कर्त्तव्या का ज्ञान ही नहीं है । सच्चा श्रावक श्रुतुकाल के अतिरिक्त विषय-सोचन करता ही नहीं है । उमड़े बदले यहाँ यह हालत है कि पाँच दिन का त्याग किया जाना है और यह भी हम प्रकार कह कर, मानो महाराज पर चेहमान कर रहे हैं । पाँच दिनरा पचप्राण करा यो, बच्चा नहीं’, कितनी कायरता है । विषय-लम्पटना का कितना दार चल रहा है, यह इस घात का प्रमाण है और हम समझत हैं—गुणा ‘घा’ बोला यही गनामत है—बोलना तो सीम्बा । मवधा भोग में कुछ त्याग तो अन्दा हा है ।

घोरैरत्ता की माधना करने वाले को अपनी भावना पवित्र बनाये रखने की बड़ा आवश्यकता है । उम चाह्य कि वह कुत्सित विचारों को पाम न फटन ने । मग शुद्ध घातावरण में रहना, शुचि विचार रचना, आहार विहार सम्मरी विवरक रखना, ब्रह्मचर्य के माधन के लिए अनाब उपयोगी है । ऐसा किये जिना वीर्य की भलीभाँति रक्षा होगी सभव नहीं है ।

बालकों के मन्मन्ध म इन बातों पर ध्यान रखना उनके माता पिता एवं मरुक्तों का काम है । पर अभागे भारत म जो न हो बही गनीमत है । बचपन स ही बालक बालिकाओं म ऐमे भाव भरे जात हैं कि छोटी अवस्था में ही वे बिगड जाते हैं । लोग बालिका को प्यार करते हैं तब कहते हैं—‘नानी, थारे बोंद कैसे लावा ?’ और बालक को कहते हैं—‘नान्या, थार रींणी कैमी लावा ?’ इस प्रकार की प्रकारजनक बातें बालक बालिकाओं क मोमल मस्तिष्क म घूम कर उन पर क्या प्रभाव डालता है ? इससे व सोचने लगते हैं कि बालक बादणी—पत्नी पान के लिय और बालिकायें बोंद—पति प्राप्त करने के लिय ही हुये हैं ।

मित्रो ! नरा विचार करो । तुम जिम प्यार कहते हो—समझते हो वह प्यार नहा, महार है—सन्तान के जीवन को मिट्टी में मिला देने वाला मात्र है । यह तुम्हारा आमोद प्रमोद नहा है वरन् बालक बालिकाओं की स्वाभाविक शक्ति का समूल नष्ट कर देने वाला कुल्हाडा है ।

मित्रो ! दिल चाहता है, लज्जा के पर्दे को फाड़ कर सारी बातें तुम्हें साफ २ बतला दू, पर परिस्थिति मना कर रही है ।

आजकल की शिक्षा की ओर जब दृष्टिनिपात करते हैं तब और भी निराशा होती है । आधुनिक शिक्षापद्धति रोग्यली नजर आती है । शिक्षा का ध्येय जीवन निर्माण अथवा चरित्रगठन होना चाहिए । ‘ज्ञान भार क्रियां विना !’ अर्थात् चरित्रहीन ज्ञान जीवन का बोझ है । आज शिक्षा क नाम पर यही बोझ लादा जा रहा है । आधुनिक शिक्षा-पद्धति इतनी दूषित हो गई है कि उसमें चरित्र का कोई स्थान ही नहीं मतीत होता । यही कारण है कि हमारे देश की दुर्नशा हो

रही है। हमारे प्राचीन शास्त्रप्रणेतृणां ज्ञान का फल चारित्र्य  
घतलाया है। जिस ज्ञान में चारित्र्य का लाभ नहीं होता वह ज्ञान  
निष्फल है—अकार्य है। उससे जीवन का अभ्युदय साधना नहीं  
हो सकता।

शिक्षा का विषय स्वतंत्र है और उस पर यहाँ विस्तार-पूर्वक  
विवचन नहीं किया जा सकता। अतएव शिक्षा पद्धति की चर्चा में  
उदात्त हृदय विद्यार्थियों के हाथ में आने वाली पुस्तकों के सम्बन्ध में  
ही दो शब्द कहते हैं। विद्यार्थियों के हाथ में माया बहलाव के लिये  
प्रायः उपन्यास और नाटक आते हैं। किन्तु बहुत से उपन्यास और  
नाटक ऐसे सुद्र लेखकों द्वारा लिखे गये हैं जिनमें कुत्सित माननाशा  
को जागृत करने वाली सामग्री के विषय और सुद्ध नहीं मिलता।  
जब कभी ऐसी पुस्तक अनजान में हमारे हाथ आ जाती है तब उसे  
देखकर दिल दहलान लगता है, यह सोच कर कि ऐसी जघन्य पुस्तकें  
विद्यार्थी-समाज का कितना सत्यानाश करती होंगी? इन पुस्तकों के  
भावों को दरकर हृदय में सताप का पार नहीं रहता।

प्यारे विद्यार्थियों! अगर तुम अपना जीवन सफल और  
तजोमय बनाना चाहते हो तो ऐसी पुस्तकों का अभी हाथ मत  
लगाना, अन्यथा व तुम्हारा जीवन मिट्टी में मिला देंगा। अगर तुम  
अपने अनुभवशील शिक्षकों से अपने लिये सत्माहित्य का चुनाव  
कर लोगे तो तुम्हारा बड़ा लाभ होगा। इसमें तुम्हारे पथ भ्रष्ट होने  
की सम्भावना नहीं रहेगी। तुम्हारा मस्तिष्क गन्दगी का राज्ञाना  
नहीं बन पायगा।

भाण्डो, तुम्हें सत्पुरुषों की भगति करनी चाहिये। हृदय में  
धार्मिक भावना भरनी चाहिये। जो पुरे विश्व तुम्हारे दिमाग में भर  
गये हैं उन्हें उत्तमोत्तम पुस्तकों का पठन करके दूर कर देना चाहिये।

प्राचीन काल की माताएँ धरतल में ही अपने बालक को मधुपत्रिका दिया करती थी। वे मनचानी मन्त्रिका उत्पन्न कर मन्त्रिकाओं। मार्कण्डेय पुराण में मन्त्रिका का चित्र वर्णन किया गया है। उससे विदित होता है कि मन्त्रिका अपने पुत्र को आठ वर्ष की उम्र में तपस्या करने के लिए भेजना चाहती थी। उसका जब पुत्र उत्पन्न हुआ तभी से उसका उस अपने माता का पाठ पढ़ाना आरम्भ कर दिया। यही पाठ उसे पालने में लौकिकों के रूप में मियाया गया। गर्भ के संस्कार में तथा शैशव काल में प्रदत्त संस्कारों के कारण वह पुत्र बना तपस्वी और बुद्धिशाली हुआ कि आठ वर्ष की उम्र में समाज त्याग कर वनवासी हो गया। इस प्रकार मन्त्रिका ने अपने सात पुत्रों को तपस्या करने के लिए जंगल में भेज दिया। एक बार रातने रातने मन्त्रिका से कहा—‘मन्त्रिकासे तू मधु पुत्रों को जंगल में भेज देती है। मरा राज्य कौन सम्भालेगा?’

हंस कर मन्त्रिका ने कहा—‘नाथ आप विन्ता नहीं करिये। मैं आपको एक ऐसा पुत्र दूंगी जो मठा तपस्वी महाराजा कहला सकेगा।’

मन्त्रिका ने ऐसा ही आठवाँ पुत्र पैदा किया। उसने बड़ी योग्यता के साथ राज्यराज सम्भाला और प्रजा का पालन किया।

भाषना क्या नहीं कर सकती? वास्तविक भावना यस्य सिद्धिर्भवति तावन्ती।’ जैसा निम्नी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है।

वेद हैं कि आन की भावना अत्यन्त मलीन हो रही है। गान पान बहुत निगडा हुआ है। निम्न भोजन को २५-३०-४० वर्ष के मनुष्य करें वही भोजन वस्त्रों को खिलाया जाता है। क्या वस्त्रों का और वस्त्रों का भोजन एक मरीगा हो सकता है? बड़ा की थाली में चमचमाते करते मन्त्रिका वाले शाक आन हैं, क्या वही शाक थालकों

के लिये उपयुक्त है ? तब हुए पदार्थ कितनी हानि पहुँचाते हैं यह बात आप लोग जानत होंगे। यह चटपटा और फफफा भोजन बगैर बालक के ब्रह्मचर्य को आग क्या लगात हो ? रेचारा बालक निर्मगन अभ्यासी न होने पर भी भी-सी करता हुआ तुम्हारे जरिये चटपटे मसाले खाने का अभ्यासी बनता है। निन मिर्चा की पिसी हुई लुगदी कुछ घण्टों तक हाथ के चमड़े पर रखने से फुसियाँ उठ आती हैं, वे मिर्चे पेट में जाकर आतों को जला कर कितनी निर्मल बनाती होंगी, यह समझना बठिन नहा है। बालक के लिये और ब्रह्मचर्य पालने वाले युवक के लिए चटपटे मसाले हलाकत विष के समान हैं। उनका त्याग करने से ही कल्याण है।

ब्रह्मचर्य की आराधना करने वाला को—शक्ति की उपासना करने वालों को सात्विक भोजन ही अनुकूल और लाभप्रद होता है, यह आयुर्वेद का मत है। सात्विक भोजन मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने वाला, बुद्धि देने वाला और बल उत्पन्न करने वाला है। डाक्टरों के मत भी आयुर्वेद के इस विधान का अनुगोचन करते हैं।

अच्छा एक बात आप बताइये। जवाहरात पैरिस में अधिक हैं या हिन्दुस्तान में ? अमेरिका और इंग्लैण्ड में माणिक माती ज्यादा है या भारत में ?

‘पैरिस में !’

मगर पैरिस व तथा अमेरिका और इंग्लैण्ड में अनेक स्त्री पुरुष अपने बालक को भारत में लाते हैं। यह तो हमने आपकी भौति जवाहरात में लाना हुआ कभी नहीं देखा। इसका क्या कारण है ?

‘वे पसन्द नहा करते !’

व पसन्द नहीं करते और आप पसन्द करते हैं। हमारे यहाँ आभूषण इतना अधिक पसन्द किये जाते हैं कि तिनसे यहाँ सन्चे माणिक माती नहीं हैं वे बहिनें अपन बर्षा को सिंगारन के लिए ग्योटे जेवर पहनाती हैं पर पहनाय तिनता नहीं मानती। कहीं कहीं तो लोक त्रिखात्रे के लिए आभूषणों की थोड़ दिनों के लिए भीग्य मागी जाती है और उन आभूषणों से हीनता का अनुभव करन के बदले महत्ता का अनुभव किया जाना है। क्या यह घोर अज्ञान का परिणाम नहीं है ? आभूषण न पहनन वाले यूरोपियन क्या हीन दृष्टि में नरे जाते हैं ? फिर आपसो ही क्यों अपनी मारी महत्ता आभूषणों में दिखाई देती है ?

आभूषणों में लाल कर बच्चों को बिलौना बनाना आप पसन्द करते हैं, पर उनका भोजन की ओर असम्य अपेक्षा रखते हैं। यह कैसी दोहरी भूल है ? जरा अपन बच्चे का स्वाना त्रिमी अग्रेशन बच्चे के मामले रगिये। वह तो क्या उमरा आप भी वह भोजन नहीं खा सकगा, क्योंकि हमारा भोजन इतना चटपटा होता है कि बेचारों का मुह चल जाय !

सात्पय यह है कि ब्रह्मचर्य पालन वालों को अथवा जो ब्रह्मचर्य पालना चाहते हैं उन्हें विलासपूर्ण बच्चों में, आभूषणों में तथा आहार में सदैव धचते रहना चाहिये। मस्तिक में कुविचारों का अकुर उत्पन्न करन वाले साहित्य को हाथ भी नहीं लगाना चाहिये। जो पुस्तकें धर्म, देश भक्ति की भावना जागृत करने वाली और चारित्र को सुधारने वाली होती हैं उनमें सरकार गणनीति को ग व सघती है और उन्हें जल कर लती है, पर जो पुस्तकें ऐमा गण और घासलटी साहित्य उदाती हैं, प्रजा का सर्वनाश कर रही हैं, उाकी ओर से वह सवथा उगासीन रहती है। यह कैसी भाग्य विहम्यना है !

अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी और जापान की सरकार वहाँ के साहित्य पर न्यून ध्यान रखती हैं। वहाँ उचित भावना भरने वाली पुस्तकें विश्वार्थियों के हाथों में नहीं पहुँच सकती। यही कारण है कि वहाँ की सभ्यता श्रेष्ठ और चरित्रवान है। वहाँ के राजा के पास पुस्तकें पढ़ते हैं तब ही उनकी जातीय भावना सुदृढ़ होती है। साहित्य का जीवन के निर्माण में कितना महत्वपूर्ण स्थान है, यह बात शिवाजी के जीवन से समझी जा सकती है।

शिवाजी किसी राजा महाराजा के पुत्र नहीं थे। वे एक साधारण सिपाही के लड़के थे। उनकी माता जीजी बाई ने बचपन से ही उन्हें रामायण और महाभारत आदि की कथाएँ सुनाई। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र तथा पाण्डवों की धीरतापूर्ण पवित्र जीवनियों कण्ठस्थ कराईं। समय पाकर उन्होंने शिवाजी के आदर कैसी धीरता और चरित्रनिष्ठा उपदेश कर दी, जो आज भी नहीं जानता? पवित्र कथाओं ने एक साधारण सिपाही के लड़के को महाराजा शिवाजी बना दिया। जनता आज भी उनका नाम से प्रेरणा प्राप्त करता है उनकी प्रतिष्ठा करती है और उन्हें अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखती है। लोग गाने हैं—

शिवाजी न होव सो सुखत होती सब की।

एक बार शिवाजी किसी जंगल की गुफा में बैठे थे। उनका एक सिपाही किसी सुन्दरी स्त्री का जवहस्ता उठा लाया। उसने मोचा था—‘महाराज शिवाजी की मृत्यु करूंगा तो महाराज मुझ पर प्रमत्त होंगे। लेकिन जब उस रात को कल्पती हुई रमणी की आवाज शिवाजी के कानों में पड़ा तो वह उसी समय गुफा में बाहर निकल आये। उन्होंने देखा कि सिपाही स कहा—‘अरे कायर! हम यहिन तो यहाँ सिम लिए लाया है?’

शिवाजी क मह मे घडिन श सुनत ही सिपाही चोक उठा । वह मोचने लगा—'गन्ध हो गया जान पडता है । मैं इसे लाया किम लिए था और होना क्या चाहता है । चौंकेनी छत्रे बनने चले तो दुःख ही रह गय ।' सिपाही कुछ नहा पोला । वह नीची गर्दन किये लज्जित भाव से मौन हा रहा । शिवाजी न कडक कर कहा—'जाओ, इम घडिन को पान्चकी में धिठला कर आन्तर के माथ इमने घर पहुँचा जाओ ।'

मित्रो ! एक मन्चे बीयगाली आर चारित्रवान् व्यक्ति क मत्कार्य जा देखो । अमलाआ पर दूसरों द्वारा किये जाने वाल अत्याचारों का निवारण करना वार पुरुष का कर्त्तव्य है, न कि उन पर स्वय अत्याचार करना । इम कथा से तुम बहुत कुछ सीख सकते हो ।

शिवाजी का पुत्र शम्भाजी था । वह शिवाजी से ज्यादा वीर धीर और गम्भार था परन्तु वह सुरा और सुन्दरी के फेर में पड गया था । सुरा अथात् मन्त्रिा और सुन्दरी अर्थात् वेश्याओं से उस बहुत प्रेम हो गया था ।

उन दिना भारत का सम्राट् औरगजेय था । गठौर वीर दुर्गास एक वार शम्भाजी क पास दक्षिण में आया । शम्भाजी शराय के शौकीन थे ही । उन्होंने एक प्याला भर कर दुर्गास के सामने किया । दुर्गास न कहा—'सुमा कीजिये मुझे तो इसकी आवश्यकता नहीं है । मैंने इसे माता के समर्पण कर दिया है और यह अर्ज की है कि माता ! तू ही इम ग्रहण कर सकती है । मुझ में इसे ग्रहण करने का शक्ति नहीं ।'

दुर्गास न जा कुछ कहा समम शम्भाजी रुठ गया । दुर्गास वहाँ स खाना होकर शहर के बाहर किसी बगीचे में ठहर गया ।



मध्य रात्रि का समय था। चारों ओर वातावरण में निम्न-धता छाई हुई थी। लोग निद्रा की गोद में घेसुत्र हो विश्राम कर रहे थे। ऐसे समय में दुर्गादास को नींद नहीं आ रही थी। वह इतर में उधर करवट उदल रहा था। इसी समय उमरु फानों में एक आर्त्तनाद सुनाइ पड़ा। 'हाय ! कोई बचाने वाला नहीं है ? बचाओ ! दौड़ो ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! हाय रे !

दुर्गादास तत्काल उठ कर खड़ा हो गया। उसके काना में फिर वही करुण मदन सुनाई दिया। दुर्गादास ने मोचा—'किमी अबला की आवाज जान पड़ती है। चलकर दग्गना चाहिए, जात क्या है ?' इस प्रकार मोच कर वह बाहर निकले। इसी समय एक अबला दौड़ी आई और चिल्लाने लगी—'रक्षा करो ! बचाओ !

बार दुर्गादास सात्वना देते हुये—यहिन, इधर आ जाओ।

स्त्री को दादस घेंधा। वह अदर आकर बैठ गई।

कुछ ही समय बीता था कि हाथ में तलवार लिये शम्भाजी दौड़ते हुये वहाँ आय। वह बोले—इस मकान में हमारा एक आदमी आया है।

दुर्गादास—शभाजी, जरा सोच विचार कर बात करो।

शम्भाजी—( पहिचान कर ) ओह दुर्गादास ! भाई, तुम्हारे इधर हमारा एक आदमी आया है। उसे हमें लौटा दो।

दुर्गादास—यहाँ कोई आदमी तो आया नहीं है, एक औरत आइ है।

शम्भाजी—जी हाँ, उसी को तो मोंग रहा हूँ।

दुर्गादास—मैं उसे हर्गिज नहीं दे सकता। वह मरी शरण में है।

शभाजी—तुम्हें उसमें क्या प्रयोजन है ?

दुर्गादाम—प्रयोजन क्या है ? कुछ भी नहीं । मगर कह रहा हूँ वह मरी शरण में आइ है । मैं क्षत्रिय हूँ । शरणागन की रक्षा करना मरा परम धर्म है । तुम क्षत्रिय हाफर भी क्या यह नहीं जानते ?

शभाजी—मैं सब कुछ जानता हूँ । सब कुछ समझता हूँ । परन्तु मेरी चीज मुझे लौटा नो वरना ठीक न होगा ।

दुर्गादाम—मैं अपना धर्म मे कैसे च्युत होऊँ ?

शभाजी—तुम्हारे हाथ में तलवार नहा है । तलवार होती तो दो हाथ शभा दिसाता ।

दुर्गादाम—यग की हँसी हँस कर बोले—उम अरला के हाथ में तलवार है, इसलिए तुम उम पर बार करना चाहते हो ।

शभाजी—इतनी घृष्टता ! अच्छा, अपनी तलवार हाथ में लेकर जग अपना कौशल तो दिखलाओ । आज तुम्हें अपनी शूरवीरता का पता चल जायगा ।

दुर्गादाम ने अपना तलवार मम्भानी । दोनों की मूठभेड हुई । मौजा पाकर दुर्गादास ने शभाजी के हाथ में तलवार छीन ली । उन्होंने कहा—कहो शभाजी, अब क्या करोगे ?

शभाजी चुप हो गया । इतने में उसके मिपानी आ पहुँचे । दुर्गादाम ने उनके माथ युद्ध करना व्यर्थ समझा । मिपादियों ने उन्हें बन्नी बना लिया ।

शभाजी का एक यवन मित्र था—क्यालीषाँ । वह बादशाह औरगजेय का भेना हुआ गुमचर था । शभाजी को पथ भ्रष्ट कर देना

उमरा काम था। वह दुश्चरित्रा खिया को—वेश्याओं को—शम्भानी के पास लाता था। शम्भानी उसे बेभान हो गये थे कि उसे अपना मित्र मानते थे और अपने सच्चे हितैषी दुर्गादास को दुश्मन समझते थे।

औरगजेर का ढिंढोरा पिटा हुआ था कि दुर्गादास को कैद कर लाने वाला को इनाम दिया जायगा। कवालीखों को यह अच्छा अवसर मिला। उसने शम्भानी से कहा—'महाराज! हम बन्दी को मुझे सौंप दीजिए। मैं इसे बादशाह के पास ले जाऊँगा और अच्छा इनाम पाऊँगा।'

शम्भानी ने उसे सौंप दिया। उसने बादशाह को ले जाकर सौंप दिया। बादशाह ने कवालीखों को अच्छा इनाम दिया।

बादशाह की बेगम गुलेनार वीर दुर्गादास पर मोहित हो चुकी थी। पर उसे दुर्गादास से मिलने का अभी तक अवसर नहीं मिला था। दुर्गादास को कैद हुआ देख उस बड़ी खुशी हुई। वह बादशाह से बोली—दुर्गादास मेरा पक्का दुश्मन है। उसे मेरे सिपुर्द कर दीजिये। मैं उसे सीधा फरूँगी।

बादशाह गुलेनार की उगली के इशारे पर नाचता था। उसने दुर्गादास को बेगम के सिपुर्द कर दिया।

बेगम को स्वर्ण अवसर मिल गया। वह रात्रि के समय सोलहों सिंगार करके जहाँ दुर्गादास कैद था वहाँ पहुँची। अपने साथ वह एक लड़क को लेती गई थी। लड़क के हाथ में नगी तलवार लेकर उसने कहा—'दुश्मन, भीतर कोई न आन पावे।'

बेगम दुर्गादास के पास जाकर बोली—आपको मैंने तकलीफ दी है। इसके लिए माफ कीजिए। मैं आप पर रिदा थी, इसीलिए

बादशाह को यह सुन कर आपको कैद करवाया है। आपको कैद होना का यह कारण है कि मैं पेशे आराम में आपको साथ रहूँ। आपकी गृध्रसूरती ने आपको कैद करवाया है। मैं तैयार होकर आइ हूँ।

दुर्गादास—मेरी माँ मुझे क्षमा करो। तुम मेरी माँ के समान हो। मैं पराई स्त्रियाँ का दुर्गा के समान समझता हूँ। तमाम स्त्रियाँ जगज्जननी का अवतार हैं। मुझे माफ़ करा, जेगम ! *शक्तिमय जन का पवित्रता पूजनीय*

गुलेनार—जानते हो दुर्गादास, तुम किससे बात कर रहे हो ?

दुर्गादास—मैं नारी रूप में एक माता से बात कर रहा हूँ।

गुलेनार—देखो, कहना मानो। मय तफ़लीफ़ा से छुटकारा पा जाओग। दिल्ली की यह बादशाहत मेरे हाथ में है। मैं इस बादशाह को नहीं चाहती। अगर तुम मेरा कहना मान लोगे तो रात ही रात मैं बादशाह को कत्ल करवा डालूँगी। दिल्ली की बादशाहत तुम्हारे हाथ में होगी।

दुर्गादास—मुझे इस प्रकार बादशाहत की जरूरत नहीं है। तुम्हारी बादशाहत तुम्हीं को सुधारित हो।

गुलेनार—देखो, खूब ममक-बूक लो। जैसे बादशाहत देना मेरे हाथ है उसी तरह तुम्हारा सिर उतरवालेना भी मेरे हाथ का बात है।

दुर्गादास—मुझे बड़ी खुशी होगी अगर मेरा सिर दुर्गारूप मुझ देवी के चरणों में लोटेगा।

दुर्गादास और जेगम के बीच इस प्रकार बातचीत हो रही थी। कार्यवश बादशाह का सिपहमालार उधर होकर जा रहा था। ज़मने रुक कर दाना की बात सुनी तो बह दग रह गया। दुर्गादास के प्रति उसका दिल में आदर का भाव जागृत हो गया।

वेगम वहीं दुर्गादाम की गर्दन न उतार ले, हम भाव से वह भीतर चला गया। दुर्गादाम रु चरणों में गिर कर जमन जग—  
'दुर्गादाम तुम इन्मान नहीं पीर हो, कोई पैगम्बर हो।'

वेगम चाँकी। रह धोली—सिपहमालार तुम यहाँ कैस ?

सिपहसालार—इस पैगम्बर को मिर भुजाने के लिए।

गुलेनार—तैती सुस्तागी ?

सिपहसालार—यह धदतमीजी ?

गुलेनार—जवान मँभाल ! किमम बात कर रहा है ?

सिपहमालार—में सब सुन चुका। अपनी अलमन्नी रहन दो।

अमत्य स्वभाजत निजल होता है। वेगम थर थर फॉपने लगी।  
सेनापति ने दुर्गादाम को मुक्त कर लिया और जोधपुर की ओर  
रवाना करने लगा।

दुर्गादाम ने कहा—में बादशाह का बन्दी हूँ। तुम मुझे मुक्त  
कर रहे हो। जगचिन् बादशाह जान गये तो तुम विपदा म पड  
जाओगे। बादशाह तुम्हारा मिर उतार लेंगे।

सेनापति—आप निश्चिन्त रह। मरा मिर उतारन वाला कोड  
नहीं।

इस दुर्गादाम रवाना हुआ और थर वेगम गुलेनार न जहर  
का प्याला पाकर अपन प्राण त्यागे।

बादशाह को सब समाचार मिल। जमने शम्भानी को कैद कर  
जुलाया। अत में शम्भानी बड, युगी तरह माग गया।

मरे प्यार मित्रो ! आपन इस घटनात म क्या सुना ? एउ ओर  
सुग और सुनरी की उपामना करन बाल शम्भानी की दुमात ओर  
सूरी और चरित्रनिष्ठ वीर दुर्गादाम की आत्मविनय !

इस शराव राक्षसों न क्या-क्या अनर्थ किये हैं और इसमें  
 किता दुर्गुण भरे पड़े हैं, यह शान आप उमरदा की कविता में  
 सुनिय —

राग को भवन जो कुजोग तोष मन जानो,  
 दया का दमन है गवन गरवाई को ।  
 विद्या की विनाशकारी तठक्षण श्रासकारी,  
 डिम्मत का हासकारी भैरु भरपाई को ।  
 उमर विचार सीख पाप रिक्ति थापन को,  
 विषय विष व्यापन को पीन पुरवाई को ।  
 भगतनि को भाइ औ कसाइ निज कामिनी को  
 शयु सुखदाइ मुरा हेतु हरवाई को ॥

पीयल<sup>१</sup> को खत पायों अहमद<sup>२</sup> को मान मार्या  
 हुदसिंह<sup>३</sup> को विगारयो नाके निरधार मँ ।  
 खून बिन जेत<sup>४</sup> खोयो दूगरमिह<sup>५</sup> को दुखोयो,  
 जोर<sup>६</sup> को मरन जोयो हिय मॉक हारो मँ ॥  
 तखत<sup>७</sup> को कीनी तग सज्जन<sup>८</sup> को मृत्यु सग,  
 कोटापति<sup>९</sup> का अपग उमर उचारो मँ ।  
 तोपपोष घोस मारु काहे अपमोम कोम  
 हाय दारु तेरे दोस कहीं कौ बखानू मँ ॥

१ पृथ्वीराज चौहान । २ अहमदशाह का सुल्तान मुहम्मद बेगदा । ३ चूड़ी  
 नरग । ४ जोधपुर का उमराव जेतसिंह । ५ यह भी जोधपुर का उमराव है ।  
 ६ जोरावरमिह—जाधपुर का उमराव । ७ जाधपुर—नरग । ८ उदयपुर के  
 महाराया । ९ कोटा नरेश भगवन्तसिंह ।

सुरा पिशाचिनी ने अनङ्ग राचा महागर्जा और सरलारो क फलेजे चूस लिये हैं। उस पिशाचिनी को यगैलत कइ गरु अकाल म ही मृत्यु के मुह में चले गये हैं। हे क्षत्रिय पुत्रो ! जिस राक्षसी ने तुम्हारे बोंगों का शिखर किया क्या उमका तुम आन्तर करोगे ? इस राक्षसी का ठोकर मारो और दुनिया में इमका नामनिशान मिटा डालो ।

आज अमेरिका वाले कानून बनाकर इसे रोक रहे हैं। अगर इसक सेवन म किसी प्रकार का लाभ होता तो वे लोग इसे रोकन के लिए कानून का आश्रय क्यों लेते ? वे लोग भिम वस्तु को हानिकारक समझते हैं उम रोकने का और जिसे अच्छा समझते हैं उमे प्रहण करन का उद्योग करते हैं। उनका यह गुण हमें सीखना चाहिए ।

मित्रा ! जिम प्रकार शराब हानिकारक है, उसी प्रकार मास भी हानिकारक है। यह दोनों वस्तुएँ ब्रह्मचर्य के पालन में बाधक हैं। मनुस्मृति में मनुजी ने आदेश दिया है कि किसी प्राणी की हिंसा नहा करनी चाहिए और न मासभक्षण ही करना चाहिए ।

मास खान से बुद्धि ठीक नहीं रहती। यूरोप में इसकी परीक्षा की गई थी। पाँच हजार विद्यार्थी शाकाहार पर और पाँच हजार मासाहार पर रक्खे गये थे। छ महीन बाद इस प्रयोग का परिणाम प्रकट किया गया तो मालूम हुआ कि शाकाहारों विद्यार्थी बुद्धिमान्, तेजस्वी और नीरोग रह और मांसाहारों इसस विपरीत सिद्ध हुए ।

मनुष्य निसर्गत मासाहारी प्राणी नहीं है। मांसाहारी प्राणियों क नाखून पंने और नाँत नुकील होत हैं और शाकाहारियों के चपटे। मांसाहारी प्राणी नीम से चपचप करते हुए पानी पीते हैं और शाकाहारों स। एमा अरु भिन्नताएँ हैं, जिनमे मालूम होता है कि मनुष्य मांसाहारी प्राणियों की नोटि में कदापि नहीं रक्खा जा

मरुता । अतएव मास मत्तणु करना मनुष्य के लिए प्रकृति विरुद्ध है । लेकिन मनुष्य अपने वियेष को तिलाजलि देकर भर्षभत्ती बन गया है । ग्यान पान के विषय में मनुष्य, पशुओं से भी गया धीना है । पशु अपनी प्रकृति के अनुसार आहार लेता है पर मनुष्य मांस आदि सभी कुछ खा जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य प्रकृति विरुद्ध व्यवहार करने के कारण ही पशुओं की अपेक्षा बहुत अधिक परिमाण में बीमारियों का शिकार बनता है । ब्रह्मचर्य पालन के लिए प्रकृति के अनुकूल आहार विहार की अत्यन्त आवश्यकता है । जो प्रकृति के अनुसार चलेगा—वही सुखी होगा—वही कल्याण का पात्र होगा ।\*

मानामर,

७—८—२७

---

\*बीकानेर के गोविन्द स्कूल (राजकुमार विद्यालय) के छात्रों के समक्ष दिया गया भाषण ।  
(सम्पादक)



# रक्षा-कवच

## प्रार्थना

विमल जिनेश्वर सेविण, धारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे ।  
जीवा विषय विकार विसारने, मू मोहनी कर्म स्याय रे ॥  
जीवा विमल जिनेश्वर सेविण ॥

विमलनाथ भगवान की यह प्रार्थना है । हम प्रार्थना में हमारी जीव अपन पाप कर्मों द्वारा कहीं ० भटकता और कैसे-कैसे कष्ट पाता है, हमका वर्णन भी आगया है । हमी वर्णन म नरक का भी उल्लेख किया गया है ।

जो मनुष्य हिंसा आदि क्रूर कर्म करते हैं, उन्हें नरक की महा यातनायें भागनी पडती हैं । नरक म कैसे-कैसे दुःख निय जात हैं, पापी प्राणिया को किस किस प्रकार क घोरतर कष्ट भोगन पडत हैं हमका वर्णन सुनने मात्र मे ही सहृदय मनुष्यों का कँपनेपी दूटने लगती है—रोमाञ्च हो आता है ।

पापी पाणी पाप स भयभीत हों और ममस्त जीवों को सुख को प्राप्ति हो, इस आशय मे ज्ञानिया ने नरक की स्थिति का वर्णन किया है । बुद्धिमान् पुरुष नरक का स्वरूप समझ कर उसमे बचने का उपाय करें ।

नरक का घणन करते हुए ज्ञानियों ने नारक जीवों के कष्टों का विस्तार में वर्णन किया है। यहाँ समग्र वर्णन करने का अवसर नही है। यहाँ पापी प्राणियों के ऊपर निरुत्थल कुत्ते छोड़कर उनका शरीर नुसलाया जाता है। निर्दयता पूर्वक शत्रुओं का प्रहार किया जाता है। गिद्ध आदि पक्षियों से आँसू निकलवाड़ जाती हैं।

इसके अतिरिक्त नारक जीव आपस में ही बुरी तरह लड़ते झगड़ते हैं और एक दूसरे को घोर से घोर कष्ट पहुँचाते हैं। कष्टों की यह परम्परा सदा जारी रहती है।

इन ऊपरी कष्टों के अतिरिक्त नरक की भूमि भी महान् कष्ट कारक है। वहाँ की भूमि का स्पर्श करते ही इतना दुःख होता है मानो एक हजार विन्दुआँ न काट ग्याया हो। वहाँ की सर्दी-गर्मी अमह्य है। भूख प्यास का कष्ट वर्णनातीत है।

पापी जीव इन सब यातनाओं से महा दुःखी होकर कष्ट व्यक्तनाद करते हैं पर उनका काहूँ नहीं सुनना। जब वे प्यास के मारे व्याकुल हो जाते हैं तब, उन्हें पिघला हुआ गरमागरम सीमा पिलाया जाता है। निरंतर कष्ट भोगते-भोगते जीव जब क्षण भर के लिए विश्रान्ति लन की प्रार्थना करता है तब नरक के दयता कहते हैं—'अरे पापी ! तुझे लान नही आती विश्राम माँगत ! जरा अपने पुराने पापों को तो स्मरण कर। उम समय विश्राम नही किया—दाड-दौड़ कर उत्साह के साथ पापाचरण किया, अब विश्रान्ति चाहिण ?' इस प्रकार कहकर देवता फिर प्रहार करना आरभ कर देते हैं।

आह ! नरक का यह कैसा भयावह दृश्य है ! फिर भी मनुष्य अपनी मोह-रूपी निद्रा को नहीं त्यागते ! व लोग जिन बुरे कामों को

हँसते हँसने खेल-खूद म कर डालते हैं, जिन कार्यों को मजाक समझ कर किया जाता है वही कार्य जब भयकर रूप धारण करके शैतान के रूप में सामने आता है तो मनुष्य घातर बन जाता है। उम समय उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। उम समय अपने कामों का पश्चात्ताप करने पर भी फल भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

मित्रो ! यह हमारे लिए कितने सौभाग्य की बात है कि ज्ञानियों के अनुभव द्वारा लिखे शास्त्र हमें पहले से सावधान रहने के लिए चेतावनी दे रहे हैं। जिनका कान है वे ज्ञानियों की चेतावनी सुनें। अगर नहीं सुनेंगे तो फिर पश्चात्ताप ही पल्ले पड़ेगा।

आदमी सौ बार कुपथ्य का सेवन कर ल और उसका बुरा नतीजा उमे मिल जाय। बाद में वैद्य या प्रकृति कुपथ्य सेवन न करने के लिए उमे सावधान कर दे, फिर भी वह न मान तो दोष किसका गिना जायगा ? उस न मानने वाले मनुष्य का ही। इसी प्रकार हमारे दुःखों के कारणों को शास्त्र स्पष्ट रूप से बतला रहा है। अगर हम उन कारणों से नहीं बचे तो यह हमारा ही दोष होगा। जो इन कारणों को ममत्त कर बचने का प्रयत्न करेगा वह बच सकेगा और उसकी आत्मा की रक्षा हुए बिना न रहेगी।

मित्रो ! आज रक्षाबंधन का त्यौहार है। आप सब लोगों ने रक्षा-राखी-बँधवाई होगी, पर आपको यह भी पता है कि यह रक्षा बंधन का त्यौहार क्यों और किस आशय से चला है ? रक्षाबंधन के इस त्यौहार को धर्म ग्रन्था ने जुदे जुद कारणों से प्रचलित हुआ बनलाया है। कारण कोई कुछ भी क्या न बताये, पर यह निश्चित है कि यह त्यौहार भारत भर में, उस छोटे से उम छोटे तक मनाया जाता है। एक छोटे से गाँव में निम ग्लाम के साथ मनाया जाता है उमी उल्लास के साथ बड़े-बड़े शहरों में भी मनाया जाता है। इससे

यह निष्कर्ष निकलता है कि रक्षाबन्धन के दिन कोई ऐसी घटना घटी होगी जिसका प्रभाव समग्र भारतवर्ष में व्यापक रूप में पड़ा होगा। उमरी घटना का स्मारक रूप में हम त्यौहार की प्रतिष्ठा हुई है। यह त्यौहार अकेले ग्राहण, अकेले क्षत्रिय, अकेले वैश्य या अकेले शूद्र ही नहीं मनाते बरन् चारों वर्णों के लोग समान भाव में मनाते हैं। वास्तव में आर्य जनता ने इस त्यौहार को प्रचलित कर एक बड़ा भारी काम किया है।

भिन्न भिन्न घर्मा के साहित्य में रक्षाबन्धन के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इन विभिन्न घटनाओं में कौन सा अधिक महत्वपूर्ण है और कौन नहीं, हम चर्चा का आवश्यकता नहीं हैं। यहाँ तो यही घटना उपयोगी होगा कि इन घटनाओं से क्या शिक्षा ग्रहण की जा सकती है ?

रक्षाबन्धन त्यौहार के विषय में हिन्दू शास्त्रों में जो क्या लिखी हुई है, उसका सक्षेप हम प्रकार है —

राजा बलि दैत्यों का राजा था। उसने दान, यज्ञ आदि क्रियाओं से अपने तेज की इतनी वृद्धि की कि देवराज इन्द्र भयभीत हो गया। समन सोचा—'अपने तेज के प्रभाव से बलि इन्द्रासन पर बैठ जायगा और मुझे इन्द्र पद में भ्रष्ट कर देगा।' इन्द्र ने अपने वचाप का उपाय सोचा। जब उसका कारगर उपाय नजर न आया तो वह विष्णु भगवान का शरण गया। विष्णु भगवान् ने बलि की प्रार्थना की—'प्रभो ! राजा कीजिये। दैत्य हमें दुःख दे रहे हैं। ये हमारा राज्य छीनना चाहते हैं।' विष्णु भगवान् ने इन्द्र का प्रार्थना स्वीकार की। उन्होंने वास्तव रूप धारण किया और वह बलि के द्वार पर जा पहुँचे। राजा बलि अति दानी था मगर साथ ही अभिमानी भी था। विष्णु ने दान की याचना की। बलि ने कहा—'कहो, क्या माँगते हो ?

वामन—विष्णु बोले—रहने के लिए सिर्फ साढ़े तीन पैर जमाने।  
 बलि ने चाके ५० अंगुल के छोटे स्वरूप को देख कर हँसत  
 हुए कहा—“तना ही क्या माँगा ? कुछ तो और माँगते ।

वामन—इतना दे दोगे तो बहुत है ।

राजा बलि ने स्वीकृति दे दी । विष्णु ने अपने वामन रूप की  
 जगह विशाल रूप धारण किया । उन्होंने अपनी तीन लम्बी हड्डियों में  
 स्वर्ग, नरक और पृथ्वी—तीनों लोक नाप लिए । इसके बाद बलि म  
 कहा—तीन पैर तो हो गये, अब आपके पैर भर जमीन और दे ।

नेचारा बलि किञ्चिद्व्यमूढ हो रहा । वह और जमीन कहाँ से  
 लाता । परिणाम यह हुआ कि वह अधिक जमीन न दे सका । तब  
 विष्णु ने उसके मस्तक पर पैर रखकर उसे पाताल में भेज दिया ।

इस प्रकार तैत्थ्यों द्वारा होने वाले उपर्यों को मिटा कर विष्णु  
 ने भारत भूमि को सुरक्षित रखाया ।

जैन शास्त्रों में इस त्यौहार की कथा इस प्रकार है —

विष्णुकुमार नाम के एक जैन मुनि बड़े तजस्वी और महापुरु  
 थ । उनके समय में चक्रवर्ती राजा का राज्य था । उसके प्रधान क  
 नाम नमूची था । राजा ने बचन बढ़ होकर एक बार सात दिन क  
 लिए राज्य क समस्त अधिकार नमूची को दे दिये । नमूची कट्टर  
 नास्तिक और प्रबल द्वेषी था । उस माधु शाह म भी चिढ़ होती थी ।  
 वह अपने राज्य म मे समस्त माधुओं को निजालन लगा । माधु बड़  
 सकट म पड़े । तब विष्णुकुमार मुनि नमूची क पास गये और बोले-  
 भाइ अथ माधुओं को अपने राज्य म रहने दे या न रहने दे; परंतु  
 मैं ना राजा का भाइ हूँ । कम से कम मुझे तो साढ़े तीन पैर जमीन  
 रहन क लिए दे ।

नमूची ने कहा—मैं साधु मात्र से घृणा करता हूँ। अपने राज्य में एक भी साधु का रहने देना नहीं चाहता। पर तुम राना के भाई हो अतएव तुम्हें सात तीन पैर जमीन देता हूँ।

नमूची के वचन देने पर विष्णुकुमार मुनि ने अपनी विशिष्ट विद्विद्या शक्ति से तीन पैरों में ही तीनों लोकों को लिये। अपनी जमानत में वचने से अतः नमूची के प्राणा का अन्त हुआ और साधुओं का वृष्ट निवारण से सम्पूर्ण भारत में खुशा मनाई गई।

आपने हिन्दू शास्त्रों और जैन शास्त्रों की कथाएँ सुनीं। दोनों कथाओं में कितनी समानता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। विष्णु ने दैत्य राजा का विनाश कर इंद्र की रक्षा की और जैन कथा के अनुसार विष्णु कुमार ने नमूची को दण्ड देकर साधुओं की रक्षा की। परन्तु मैं इन दोनों कथाओं से प्रतिध्वनित होने वाला रूपक आध्यात्मिक दृष्टि में घनाता हूँ।

इंद्र का अर्थ है—आत्मा। इन्द्रोक्ति—इन्द्र—आत्मा। इस प्रकार अनेक स्थलों पर आत्मा का अर्थ में इंद्र शब्द का प्रयोग किया गया है। इस इंद्र (आत्मा) को अहंकार रूपी दैत्य हराना है। तब इन्द्र धराकर आत्मवल रूपी विष्णुसे प्रार्थना करता है—त्राहि माम् त्राहि माम्—मेरी रक्षा करो—मुझे बचाओ। मेरी नैया पार लगाने वाले तुम्हीं हो। आत्मवल अपनी विशेष शक्ति से पर पैर पैना पर स्वर्ग, नरक और पृथ्वी को तैयार करना है। जब आधे की आवश्यकता और रहनी है तब मिद्ध स्थान प्राप्त कर, आनन्द कर देता है।

इस रूपक का विशय खुलामा अकार के साथ होता है। इसकी विशेष व्याख्या करना का समय नहीं है। अकार में साठे तीस मात्राएँ हैं। तीन मात्राएँ स्वर्ग, नरक एवं पृथ्वी का समावेश हो जाता है। शेष आधा मात्रा में मिद्धशिला पर पहुँचने की मिलता है।

रक्षाबन्धन का व्यावहारिक अर्थ क्या है यह बतला देना आवश्यक है। यद्यपि सभी लोग लम्बे लम्बे हाथ करके राखी बाँधवा लेते हैं, पर इसका वास्तविक रहस्य समझने वाले बहुत कम मिलेंगे।

राखी कई प्रकार की होती है। सोने की, चाँदी की, रशम की और सादी रुई की भी राखी बनती है। राखी प्रायः बहिन भाई को बाँधती है और स्त्री पुरुष को बाँधती है। उसका उपलक्ष्य में भाई बहिन को और पुरुष स्त्री को सम्मान की वस्तु भेंट करता है। यह इस त्यौहार का प्रचलित रूप है। मगर रक्षाबन्धन का वास्तविक व्यावहारिक अर्थ को जानने के लिए प्राचीन काल के घत्तान्त देखने की आवश्यकता है। प्राचीन समय में रक्षा-बन्धन सचमुच ही रक्षा का बन्धन था। जो पुत्र अपने हाथ पर रक्षा बाँधवा लेता था वह रक्षा के बन्धन में बाँध जाता था। राखी बाँधने वाले की रक्षा का भार उस पर आ पड़ता था। उस समय राखी बनती पवित्र वस्तु मानी जाती थी कि उस बाँधवाने वाला अपने सर्वस्व को यहाँ तक कि प्राणों को भी निद्रावर करके राखी बाँधने वाले की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझता था।

राखी बाँधते समय यह श्लोक बोल कर बाँधवाने वाले का ध्यान रक्षा की ओर आकर्षित किया जाता था।

यम बद्धो बली राजा, दानवन्दा महाबल ।

तेन त्वां प्रतिबन्धामि, रक्षे मा चक्ष मा चक्ष ॥

रक्षा का डोंग मायारण डोंग नहीं है। यह जमा बन्धन है कि उमंग बाँधवाने के पश्चात् फिर कर्तव्य में प्रियुक्त होकर छुटकारा नहीं मिल सकता। रक्षा के बन्धन से सिर्फ हाथ ही नहीं बाँधता मगर वह हृदय का बन्धन है, वह आत्मा का बन्धन है, वह प्राणों का

बन्धन है, वह कर्त्तव्य का बन्धन है, वह धर्म का बन्धन है। रास्ती के उस माधारण से प्रतीत होने वाले बन्धन में कर्त्तव्य की कठोरता बँधी है, सर्वस्व का उत्सर्ग बँधा है। राग्ना बँधवान वाले को प्राण तरु अर्पण करने पड़ते हैं।

नागौर (मारवाड़) के राजा रु राय पर एकबार बादशाह ने चढाई की। उनकी पुत्रीन अपन पिता से आज्ञा लेकर एक क्षत्रिय को भाई बनाने के लिए राग्नी भेनी। यद्यपि उस क्षत्रिय का नागौर के राजा म मनमुटाव था, दोनों म परस्पर शत्रुता थी, फिर भी वह राग्नी का तिरस्कार नहीं कर सका। राग्नी का तिरस्कार करना अपनी वीरता का तिरस्कार करना है, अपन कर्त्तव्य की अवहेलना करना है पवित्र मयादा का अतिक्रमण करना है और कायरता का प्रकाश करना है। यह साचर क्षत्रिय न राग्नी स्वीकार कर ली। बादशाह न जब नागौर पर चढाई की तब उस बार क्षत्रिय ने अपनी बहादुर सना के साथ बादशाह का सना पर धावा बोल लिया।

बादशाह की फाज पराजित हुई। नागौर के राजा ने उस क्षत्रिय का उपहार माना। दोनों का विरोध शांत हुआ। नागौर पति ने अपनी कन्या का विवाह उसक साथ कर देना चाहा। जब कन्या के पास यह समाद पहुँचा तो उसने कहा—यह मरे भाई हैं। मैंने राग्नी भेज कर उन्हें अपना भाई बनाया है। भाई के साथ बहिन का विवाह समर्थ कैसे हो सकता है ?

रक्षा-बन्धन के साथ उत्तराधिकार का बन्धन किस प्रकार आता है, यह समझने के लिए यह एक घटना आपके सामने उपस्थित की गई है। भारतीय इतिहास में इस प्रकार की अनक घटनाएँ घटी हैं। तात्पर्य यह है कि पहले जमान की राग्नी रक्षा करने के लिए होती थी।



आज महाजन अपनी बहियों को, चौपड़ियों को, गवात को, फलम को, तराजू को, घाँटों को—ज्यापार के सभी उपकरणों को राखी गोदते-बैधाते हैं, पर अनेक भाइ रक्षा को धो कर उतारी भजा बना डालते हैं। उन वस्तुओं पर रक्षा घोंघा का अभिप्राय तो यह होना चाहिए कि बहियाँ में भूटा जमा रस न लिया जाय, फलम के द्वारा भूटी हवारत न लिखी जाय, तराजू में कम ज्यादा न तोला जाय घाँट गोदते न हों, आदि। पर आज यह सब कुछ हो रहा है। बहियों में थोटा जमा रस लिस कर, जाली दस्तावेज बना कर, भूटी गवाही दिला कर, आयाय से-घोरे स-दन्तखत करा कर और तराजू से कम-ज्यादा तोल कर, तथा हमी प्रकार की अन्य कार्रवाई करके प्रामाणिकता का आत कर रहे हैं।

जैस बहिन भाइ और स्त्री पुरुष आपस में रक्षा का सम्बन्ध जोड़ते हैं, हमी प्रकार राजा और प्रजा में भी रक्षा सम्बन्ध जोड़ा जाता था।

राजा और प्रजा के मधुर सम्बन्ध के समय राजा प्रत्यक्ष सम्बन्ध उपाय में प्रजा की सुख शांति के लिये, प्रजा के अभ्युदय के लिए चेष्टा करता था। वह प्रजा के सुख को ही राज्य की सफलता की कसौटी समझता था। उसका समस्त कार्या का मुख्य और प्रधान ध्येय यही होता था कि प्रजा किस प्रकार अधिक से अधिक सुखी, समृद्ध और सम्पन्न हो। प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रधान कर्तव्य था। राजा जब इस प्रकार से वर्तमान करता था प्रजा का अपने को सबके समझता था, तब प्रजा भी सब प्रकार से राजा की सेवा के लिए तैयार रहती थी। आज यह सब बातें कहने सुनने के लिए रह गई हैं। आज राजा स्वाधीन होकर प्रजा को चूमना चाहता है इसलिए प्रजा राजा का अन्त करन का उद्योग कर रही है। दोनों एक दूसरे के विराधी बन गये हैं।

आज भी प्रत्येक हिन्दू राजा के राज भण्डार में राखी बाँधी जाती है। उसी प्रकार शस्त्रों में, रथों में, घोड़े को, हाथी को और इसी प्रकार से अन्य वस्तुओं को राखी बाँधने की परम्परा चल रही है। मगर आज इसका आशय क्या समझा जाता है, भगवान् हाँ जाने। पहले राज भण्डार में राखी बाँधने का आशय यह था कि भण्डार में अन्याय का घन न आन पावे। गरीब प्रजा की गाड़ी कमाई के पैसों से राज-कोष न भरा जाय। शस्त्रों को राजा बाँधने का आशय था—शस्त्रों द्वारा देश की समुचित प्रकार से रक्षा की जाय। रथ घोड़ों आदि को राखी बाँधने का प्रयोजन था—इन सब में घृथा व्यय न किया जाय—आवश्यकता से अधिक इन वस्तुओं का भ्रमण अथवा विलास के उद्देश्य से न किया जाय। प्रजा के धन का किसी भी प्रकार अनावश्यक खर्च न किया जाय।

मित्रो! आज समय पलट गया है। अब बहुत सी बातें उलटी हो गई हैं। अन्धकारी टोम काम के बदले दिव्यावती और शोधी बातें हो रही हैं। राखी के सन्ध में भी यही हुआ है। राखी की भी पत्नी ही दुर्दशा हुई है। यह या तो परम्परा का पालन करने के लिए बाँधा बाँधा जाता है या लोकनिगाह के लिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आज राखी का जीवन तत्त्व निकल गया है और कबल निष्प्राण शरीर रह गया है। राखी अब मृत का भाग मात्र है—उसमें स कर्तव्य और धर्म की भावना चला गई है।

एक पवित्र प्रणालिका का मार-तत्त्व चला जाय और वह निर्नीध—जड़ मात्र अवशेष रह जाय तब क्या मताप नहीं होना चाहिए? निस्मन् रह यह मताप की बात है। आपको हृदय में अगर मताप हो तो आप उसमें पुन जीवन लाने का प्रयत्न करें।

बहुत से ब्राह्मण आज यत्नमान को मिक पैस के लिए राखी

बाँधते हैं। प्राचीन काल के ब्राह्मणों की रक्षा पैसों की नहीं, धन नीलन की नहीं बल्कि कामना की थी। उस समय न केवल ब्राह्मण ही, बल्कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी परस्पर राखी बाँधते थे। आज जैसी घृणा पहिले के समय में नहीं थी।

आज बहुत से भाई 'पम्बाल' बनाने वालों से घृणा करते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ, आप लोग में से कितने पेम हैं जिनके पेट में पम्बाल का पानी नहीं है? आप सभी के पेट में पम्बाल का पानी मौजूद है। तो आप पम्बाल का प्रयोग करते हैं, पम्बाल से प्रेम करते हैं, पर पम्बाल बनाने वाले से प्रेम नहीं करना चाहते। हाय हाय! यह कैसी विपरीत बुद्धि है। आप जूते पहन कर पैरों को सती गर्मी और काँटो-झींझड़ से बचाना चाहते हैं, उसके लिए जूता को चाहते हैं पर जूते बनाने वालों को नहीं चाहते। क्या कहें, प्यारे मित्रो! जितना जूता को चाहत हो, उतना भी जूता बनाने वाला को न चाहो, तो यह अनुप्यता का घोर अपमान है। मानव जीवन के प्रति यह अक्षम्य अपराध है। इस तथ्य को समझो। उनसे प्रेम करो, उनके साथ सदुच्यवहार करो। उन्हें राखी बाँधो और उनसे राखी बाँधवा कर निमल प्रेम की धारा बहा दो।

-आज बीकानेर रियासत के प्रधान मंत्री आये हैं। मैं उन्हें राखी बाँधना चाहता हूँ। पर मरी रक्षा भाव रूप है द्रव्य रूप नहीं। द्रव्य रक्षा में रंग ही नहीं शक्त और न उमर रमन की आवश्यकता है। मरी भाव रक्षा धर्म की रक्षा है, कर्तव्य की रक्षा है। भाव रक्षा बाँध कर मैं अपने शरीर की रक्षा करना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—धर्म की रक्षा हो, कर्तव्य की रक्षा हो।

आज भारत-कन्या उच्चाधिकारियों और राजाओं की ओर हाथ पमार कर रक्षा बाँधना चाहती है। आप लोग भारत कन्या की रक्षा

को स्वोत्तार की निष्ठा । राज्यसत्ता जिस कौशल के साथ भारत की रक्षा कर सकगी, उम प्रकार की रक्षा दूसरी शक्ति द्वारा होना कठिन है ।

आज भारत लुट रहा है पिट रहा है आर्तनाद कर रहा है राज्य सत्ता उस ओर तनिक भी ध्यान दे तो उसक समस्त दुखों का अन्त हो सकना है । किसी शहर में १०-२० घर लुट जायेंग, अथवा १०-५ लाख रुपयों का डाका पड जायगा, इस चिन्ता से राज्य अनेक प्रकार की व्यवस्था करत है और अपना उत्तरदायित्व समझ कर रक्षा का भार उठाता है । पर इस देश में एक ऐसा गुप्त चोर घुमा हुआ है जो अज्ञान प्रजा को—मूर्ख जनता को—अपनी प्रबल शक्ति के साथ दिनाग्नि लूट लमोट कर दीन दरिद्र बना रहा है । हमने करोड़ों की सम्पत्ति लूट कर समुद्र पार भेज दी है आर इस देश को भित्तारी बना दिया है । वह गुप्त चोर भयानक राक्षस है । उमका शरीर एक है, सिर बहुत से हैं । वह रावण से अधिक भय कर दे—प्रबल है । उसका अंत करने के लिए तेजस्वी राम की आवश्यकता है ।

इस महारावण के अनेक सिर हैं । उनमें में, में अपनी कल्पना के अनुसार वीर्यनाश को मुख्य मानता हैं । हमने भारतीय प्रजा को निस्तन, निरल बना दिया है । वीर्यनाश का पोषण करने में बाल विवाह की कुप्रथा ने मद्य से अधिक सहायता पहुँचाई है । इस मंत्रधर्म में मेरे पोषित स्कूल के विद्यार्थियों के सामन एक भाषण कर चुका हूँ । अतएव विम्बार से आज नहीं कहूँगा ।

मैंने भारत के अनेक प्रान्तों का भ्रमण किया है, पर इस कुटुम्बे रिवाज का पितना प्रचलन वीकानेर राज्य में देखा, उतना शायद ही कहीं होगा ।

विवाह शक्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शक्ति के लिए मंगल वायु बजराये जाते हैं। शक्ति के लिए ज्योतिषी से मंगलिक का सुयोग पूछा जाता है। शक्ति के लिए मुहागिनों का आशीर्वाद लिया जाता है। परन्तु जहाँ अशक्ति के लिए यह सब काम किये जाते हैं वहाँ के लोगों में क्या कहा जाय ? जो अशक्ति के स्वागत उत्सव के लिए यह सब समारोह करता हो उस मूर्ख का किम पन्थी में अलङ्कार करना चाहिये ?

बाल विवाह करना अशक्ति का स्वागत करना ही है। इसमें शक्ति का नाश होता है। अतएव चाहे कोई जैन धावक हो, वैष्णव गृहस्थ हो अथवा और कोई हो, सब का कर्तव्य है कि अपना सन्तति के दिन के लिए—मृत्यु की रक्षा के लिए इस घातक प्रथा को आज रना बन्धन के तिन त्याग दें। इसका मूलान्धेदन करके सन्तान का और सन्तान के द्वारा समाज पर्यं राष्ट्र का मंगलमाधन करें।

आप मंगल के लिए आज बचवाते हैं मंगल के लिए मुहागिनों आशीर्वाद लेते हैं, मंगल के लिए ज्योतिर्विद से शुभ मुहूर्त निकलवाते हैं, पर यह स्मरण रखिए कि यह सब मंगल जय अमंगल के लिए किये जाते हैं तब य किसका काम में नहीं आते। इन सब मंगलों से प्राप्त विवाह के द्वारा होने वाला अमंगल दूर नहीं हो सकता। छोटी-बच्ची उम्र में बालक बालिका का विवाह करना अमंगल है। ऐसा विवाह भविष्य में हाहाकार मचानेवाला है। ऐसा विवाह प्राहि प्राहि का आराधन में आकाश को गुञ्जाया जाता है। ऐसा विवाह देश में दुःख का आवानत रहमाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवनी शक्ति का हानि हो रहा है। यह शारीरिक क्षमता का न्यूनता उत्पन्न कर रहा है। विभिन्न प्रकार की आधि-याधियाँ को जन्म दे रहा है। अतएव अथ सावधान हो जाओ। अगर ससार की भलाई करने योग्य उपाय आपका दिल में नहीं आई है तो कम से कम

अपनी सन्तान का अनिष्ट मत करो। उसके भविष्य को घोर अंधकार में आवृत मत बनाओ। विमे तुमने जीवन दिया है, उसी के जीवन का सत्यानास मत करो। अपनी सन्तान की रक्षा करो।

यह बालक दुनिया के रक्तक यवन बाल हैं, ऐ भाइयो! छात्री मंत्र में विवाह करके इन्हें ससार की कोल्हू में मत पीलो।

यह बालक गुलाब के फूल से सुकुमार हैं, इन पर दाम्पत्य का पहाड़ मत पटओ। बेचारे विम जाएँगे।

बालक निमग का मुन्डनम उपहार है। इस उपहार को लापरवाही से मत रौंदो।

मित्रो! किसी रथ में दो छोटे-छोटे बछड़ों को जोत दिया जाय और उम रथ पर १०-१२ भ्रूलकाय आदमी बैठ जाँ तो जातने बाने को आप क्यावान कहेंगे या निर्दय ?

‘निर्दय !’

तब छोटे-छोटे बछड़ा का गहम्भा रूपी गाड़ी में जोत कर उन पर सवार का योक्त लादन बालों को आप निर्दय न कहेंगे ?

‘कहेंगे !’

साथ ही उन लड्डू उड़ान बालों को—जो हमें घोर अत्याचार की अनुमादना करते हैं—क्या कुछ कम निर्दय कहा जा सकता है ?

‘नहीं !’

अगर आप अपने अन्त करण में मेरे प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं तो धर्म के कानून से इस अन्याय प्रथा को बन्द करने का प्रयत्न काविए। आपने ऐसा न किया तो यह दीवान साहब ( सर मनु भाइ

मेहता) बैठे हैं। वे राजकीय कानून बना कर, आपकी 'रोटी' पकड़ कर इस अन्याय को छोड़ने के लिए बाध्य करेंगे।

भारतीय शास्त्र छाटी उम्र में बालक का विवाह करने का नियम करता है। बालक की उम्र बीस वर्ष और बालिका की उम्र सोलह वर्ष निर्धारित की गई है। इतने समय तक बालक बालिका सजा रहते हैं। अगर आप लोगों को यह बहुत कठिन जान पड़े तो सोलह वर्ष में पहले बालक और तेरह वर्ष में पहले बालिका का विवाह तो कदापि नहीं होना चाहिए। जिस राज्य में याग्य बालक बालिका का विवाह होता है उसी राज्य का राजा और मन्त्री प्रशंसा के योग्य हैं। जहाँ प्रजा इसका विपरीत आचरण करती है वहाँ के धार राजा और प्रजावत्सल मन्त्री का कर्तव्य है कि वे अपने राज्य की जड़ को मोड़ना बनाने वाले आचरणों पर तीव्र प्रतिबन्ध लगा दें।

जिस राज्य की प्रजा बलवान् होगी वहाँ चोरी च्यादि का भय नहीं रहेगा। राज-कर्मचारियों को चोरी और लुटने के पीछे अपनी शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ेगी और वह शक्ति प्रजा के लिए उपयोगी अन्य कार्यों में लगाई जा सकेगी। इससे विपरीत जिस राज्य में प्रजा निबल होती है, उस राज्य को उमकी रक्षा करने के लिए पर्याप्त शक्ति व्यय करनी पड़ती है, काफी परिश्रम करना पड़ता है, फिर भी यथोचित शान्ति कायम नहीं रह पाती। वहाँ सौ भिन्न या गोगर्ग पहरदार स्वर्ग का वहाँ चोर की हिम्मत चोगी करने की हो सकती है? नहीं। इसी प्रकार जिस राज्य की प्रजा बलवान् होगी वहाँ चोरों और डाकूओं की दाल न गल सकेगी।

बलवान् प्रजा में सब बलवान् साधु निरालस की सम्मिद्ध की जानी है। निर्बल और हतवीर्य प्रजा में जैसे ही साधु निकलेंगे, जो दुनिया का कुम्भ भाँ बला करने में समर्थ न हो सकेंगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के धार्मिक विचारों में मरी मान्यता भिन्न है। किन्तु अन्य अनेक बातों में मैं उन्हें प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ। उन्हें विप दिया गया था और विप के प्रभाव से उनका शरीर फूट-फूट कर चूने लगा था। फिर भी उनके मुख पर तज झलक रहा था। उनके पास एक नास्तिक रहता था। वह इस विपम स्थिति में भी उनका आत्मबल देखकर चकित रह गया था। इस दरय ने उसे नास्तिक में आस्तिक बना दिया।

हाक्टरों का कथन था कि यदि ऐसा विप किसी साधारण मनुष्य को दिया जाता तो घंटे-दो घंटे में ही उसका प्राण पर्येक उड़ जाता। मगर उन्होंने ब्रह्मचर्य के प्रताप से ३-४ मास निकाल दिये। चढ़कर न मरण सारा शरीर फूट निकला है पर मुह पर विपाद की रेखा तक नजर नहीं आती। दिन पर दिन अपने नये तात्त्विक विचार लोगों को सुनाते हैं और स्वयं आनन्द में मग्न रहते हैं।

दयानन्द सरस्वती ने ब्रह्मचर्य के प्रताप से भारतवर्ष में एक सामाजिक क्रान्ति पैदा कर दी। उन्होंने सामाजिक विषयों में विचारों की रूढ़ता एवं गुलामी का अन्त-किया और राष्ट्रीयता का पाठ पढाया।

अहा! ब्रह्मचर्य में कैसी अद्भुत शक्ति है। कितना चमत्कार है। किन्तु इस अद्भुत शक्ति को न पहचान कर लोग अनाथ बालकों का विवाह कर रहे हैं। यह कितना परिताप की बात है।

आज के राजा महाराजा अगर उनका आँगरेजों का काम करने वाले माधु मन्नों का मतलब करे तो उन्हें अपने कर्तव्य का भूलना से बचो हो सकता है और जिम कार्य के लिए उन्हें बड़ी बड़ी तनख्वाहों के पदाधिकारों नियत करने पड़ते हैं, फिर भी कार्य यथावत् नहीं होता, वह अनायास ही सम्पन्न हो सकता है।



बाल विवाह की भयावह प्रथा का अगर जनता स्वयमेव त्याग नहीं करती तब उसका एक ही उपाय रह जाता है और वह यह कि राज्य अपनी सत्ता से कानून का निर्माण करे और दुरामहशील व्यक्तियों के दुरामह को छुड़ावे। मनुष्य की आयु का ह्रास करने में बाल विवाह भी एक प्रधान कारण है। अमेरिका, जर्मनी और जापान आदि देशों में १५० वर्ष की आयु के इष्टेष्टे त-दुस्सल पुरुष मिल सकते हैं, वहाँ भारतवर्ष की औसत आयु पच्चीस वर्ष की भी नहीं है। भारतवर्ष का यह पैसा अभाग्य है।

देश को इस दुर्दशा में भी भारत के माठ माठ वर्ष के बूढ़े विवाह परन के लिए तैयार हो जाते हैं। बूढ़ों की इस कामना न देश को उजाड़ डालता है। आज विधवाओं की संख्या पित्तनी व्याधा बढ़ गई और बढ़ती जाती है, यह किसे नहीं मालूम? आप धाकड़ों पर धाकड़े गिन लत हो पर कभी इन विधवाओं की भी गिनती आपन की है? कभी आपने यह चिन्ता की है कि इन विधवा बहिनों का निर्वाह किस प्रकार होता है?

इस प्रकार एक ओर बाल विवाह मानव-जीवन को कतर रहा है और दूसरी ओर वृद्ध विवाह विधवाओं की संख्या बढ़ाने का बीड़ा बढाये है। मित्रो! अगर रक्षाधन के त्थीकार से लाभ बढाना है तो इन घातक रिवाजों को दूर करके समाज और देश की रक्षा करो।

भारत में शिक्षा की भी बहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है वह इतना निरम्मा है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले बाल बुरक किसी काम के नहीं रहते। वे गुलामी के लिए तैयार बिय जाते हैं और गुलामी में ही अपना दिन व्यतीत करते हैं। उनका अपनापन अपने तक या अधिक से अधिक अपने मरकाण परिवार तक सीमित रहता है। उससे आगे की बात उनके भ्रमिन्दक से प्रायः कभी आती ही नहीं है।

व अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज के श्रेय में अपना श्रेय एवं समाज के अमंगल में अपना अमंगल नहीं माँते। समाज में व्यक्ति का वही स्थान है जो विशाल जलाशय में एक जल कण का होता है। जलकण अपने आपको जलाशय में भिन्न मान तो क्या यह ठीक होगा ? इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति जब सामाजिक भावना से हीन हो जाता है, अपनी सत्ता स्वतन्त्र और निरपेक्ष समझने लगता है, तब समाज का ध्यान रुक जाता है। राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। ऐसे लोग स विश्व सेवा की आशा ही क्या की जा सकती है ?

पहले यह नियम था कि पहले शिक्षा पीछे स्त्री मिलती थी। प्रत्येक बालक को ब्रह्मचर्यमय जीवन व्यतीत करते हुए विद्याभ्यास करना पड़ता था। अब आजकल प्रायः पहले स्त्री और पीछे शिक्षा मिलता है। जहाँ यह हालत है वहाँ सुदृढ़ शारीरिक सम्पत्ति सम्पन्न प्रकारण विद्वान् कहीं स उत्पन्न हाने ?

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, आनकल जो शिक्षा मिलती है उसका जीवन सिद्धि के साथ काइ सरोकार नहीं है, यह बकार-सी है, फिर भी यह बड़ी घोर होती है। विद्यार्थियों पर पुस्तक का इतना अधिग्रहण लादा जाता है कि प्रचारे रोगी बन जाते हैं। चेहर पर तेज नहीं, ओंन नहीं, रूग्ण और पाला चेहरा, धँसी हुई आँखें, फुस शरार, गाला में गहू, यही नव विद्यार्थी की सम्पत्ति होती है। युवा वरुण में जब यह दशा होती है, जवानी में बुढ़ापा आ जाता है तब पुत्रापे स क्या होगा, यह विचारणीय प्रश्न है। अन्तर अनेक युवकों का बुढ़ापा ही नहीं आन पाता और व विधवा की सक्या स गक की वृद्धि करके चल समते हैं।

विधवा-वेदिनों की दशा पर जब मैं विचार करता हूँ तब मेरी

आँसुओं में आँसू आ जाते हैं। कई भा.यों के हृदय इतने कठोर बन हुए हैं कि इन बहिनों के दुःख को देख करके भी वे नहीं पसीनत। याद रखना, इन विधवाओं के हृदय से निकली हुई आँसू वृथा नई जाएँगी। समय आने पर वे ऐसा भयकर रूप धारण करेंगी कि भारत को भस्मी भूत कर डालेंगी। आप पशुआ पर दया करते हैं छोटे-छाटे जंतुओं पर करुणा की वपा करते हैं पर इन विधवा बाइयों की तरफ ध्यान हा नहीं देते। क्या इनका जीवन सूदम की पतंगों और पशु पक्षियों स भी गया-बीता है ?

दीवान साह्य। विधवाओं की दशा सुधारन और उनकी रक्ष करने का भार आपकी गोद में सौंपा जा रहा है। आप इसे उठाइय हमारे उपदेश को लोग इतना न मानेंगे जितना आपका आदेश मानेंगे। 'भय भिन होत न प्रीत' उक्ति प्रसिद्ध है।

भय से मरा यह आशय नहीं है कि जनता को डराया धमकाय जाय अथवा मार पीट का अवसर उपस्थित हो। मेरा आशय यह है कि आप कुछ जोर देकर कहेंगे तो काम बन जायगा।

मिश्रो। अवसर आया है तो एक बात और कह देना चाहता हूँ। आप लोगों में एक और हानिकारक रिवाज देखता हूँ—बच्चों को जेवर पहनाना। बच्चों को आभूषण पहनाने में आपका उद्देश्य क्या है ? इसक दो ही उद्देश्य हो सकत हैं—या तो बालक को सुन्दर दिखाना अथवा अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करना। मगर यह दोनों उद्देश्य भ्रम पूर्ण हैं। बालक स्वभाव से ही सुन्दर होता है। वह निसर्ग का सुन्दरतर उपहार है। उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को आभूषण दबा देत हैं—विश्रुत कर देते हैं। जिन्हें मन्चे सौन्दर्य की परख है व तेसे उपायों का अबलम्बन नहीं करत। विवकवान व्यक्ति जड़ पदार्थ लाद कर चेतन की शोभा नहीं बढ़ाते। जो लोग आभूषणों में सौन्दर्य

निहागते हैं, कहना चाहिए कि उन्हें सौंदर्य का ज्ञान ही नहीं है। व मनीष बालक भी अपेक्षा निर्जीव आभूषणों को अधिक चाहते हैं। उनकी रुचि जड़ता की ओर आकृष्ट हो रही है।

अगर अपनी श्रीमत्ता प्रकट करने के लिए बालक को आभूषण पहना कर खिचौना बनाना चाहते हो तो स्वार्थ की हद हो गई। अपनी श्रीमन्ताड प्रकट करने के लिए निर्दोष बालक का जीवन क्यों विपत्ति में डालते हो ? जिसे अपनी धनाढ्यता का अनीर्ण है—जो अपने धन को नहीं पत्रा मकता वह किसी अन्य उपाय से उसे बाहर निकाल सकता है। इसक लिए अपनी प्रिय सन्तान के प्राणों को कट म डालना क्या उचित है ?

बच्चों को आभूषण पहनाने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक हानियाँ होती हैं। उन मय का कथन करन का समय नहीं है। परन्तु एक प्रत्यक्ष हानि तो आप सभी जानत हैं। गहनों की बदीलत कई बालकों की हत्या होती है। हत्या की घटनाएँ आये दिन घन्ती रहती हैं। फिर भी आप अपना दर्ग नहीं छोड़ते, यह कितने आश्चर्य की बात है ? आपका विवेक कहाँ है ? वह कब जागृत होगा ?

आई बापे जरी सर्पिणी के घोका,  
त्याचे सगे मुखा ना पावे बाळ ।  
चंदनाचा शूल सोनी बांधी बेडी,  
सुखनिधि कोडी प्राण नारी ॥

यह पद भक्त तुकाराम का है। थोड़े से शब्दों में कितना मर्म भर दिया है ? कहा है—जिस घर में माता सर्पिणी और पिता विलास बन कर रहे वहाँ बच्चा शांत कैसे रह सकता है ? जिस समाज में

स्त्रियों सर्पिणी और पुरुष विलाव होत हैं वहाँ मेरे चैमे की स्थिति कैसे हो सकती है ?

मित्रो ! मैंने आपके सामने भारत के शत्रु एक महारावण के निकट एक मिर का वचन किया है। समय अधिक हो गया है और मैं दीवान साहब का और अधिक समय लेना नहीं चाहता, अतएव व्याख्यान अधिक लम्बा नहीं करता।

विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि का मदन किया था। वामन का आशय है छोटा—बिनयी। आप भी नम्र बन कर राजा साहब और दीवान साहब समक्ष महारावण का मिर तोड़ने का वचन लीजिए।

अत में एक बात और कह देना आवश्यक है। प्रत्येक हिन्दू गौ को गोमाता के नाम से पुकारता है और उसे श्रद्धामात्र में देखता है। फिर भी उसकी पालना जैसी खाटिण वैसी नहीं हो रही है। गाय के मानव-ममान पर अपरिमित उपकार हैं। उसके उपकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए उसे 'गोमाता' मज्ञा दी गई है। इस मज्ञा को सायन बनाने के लिए उसके प्रति आज जो उपेक्षा दिखाई दे रही है उसका दूर होना आवश्यक है। अमेरिका में भारत की ही गाय से १२० रत्न दूध प्राप्त किया जा रहा है। अमेरिका ने गाय की सेवा करके मचमुच ही उसके 'माता' पद को मार्थक किया है। अमेरिका के विद्वानों ने अनक थड़े थड़े निबंध लिखकर बतलाया है कि गाय प्रत्येक दृष्टि में रक्षणीय है। पर गाय को माता कह कर पूजन वाले हिन्दुस्तान में गाय का क्या दुर्दशा हो रही है ? उस पर यहाँ सचावच छुरियाँ चल रही हैं, यह कितनी लज्जा की बात है। बीकानेर के दीवान साहब चाहें तो बीकानेर की गायों को बाहर भेजे जाने में रोक सकते हैं। ऐसा करना न केवल गोवंश पर ही बरन

मानव प्रजा पर भी यडा उपकार होगा, जनता की यह सची सेवा होगी ।

मित्रो ! रक्षाधन्धन के दिन आपकी रक्षा के कुछ उपायों का दिग्दर्शन कराया गया है । अगर आप इनकी और ध्यान देंगे ता आपका कल्याण हागा ।

भीनासर }  
१३-८-२७ }

# धर्म की दृष्टिकोण

## प्रार्थना

धरम जिनेश्वर मुक्त हियके बसो प्यारा प्राण समान ।  
कषहुँ न विसरूँ हो धितारूँ नहीं, सदा अखंडित ध्यान ॥ धरप० ॥

श्रीधर्मनाथ भगवान की यह प्रार्थना है। इस प्रार्थना में प्रार्थना करने वाले ने धर्मनाथ भगवान् को अखंडित ध्यान की कामना प्रकट की है। धर्मनाथ भगवान् का ध्यान और आराधन किस प्रकार किया जा सकता है? वास्तव में धर्म की आराधना ही धर्मनाथ की आराधना है। निर्मल हृदय से, निष्काम भाव से परमात्मा के आदेश का अनुमरण करना ही परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ आराधना है। परमात्मा के आदेश को प्रतिकूल आचरण करने वाले, परमात्मा के गुणों का रत्न उपर उपर से करत रहें और हृदय को पापवामना से मलीन बनाय रखें तो उसमें क्या लाभ हो सकता है?

कह भाइ मोरत हैं कि धर्म की आराधना माधु ही कर सकत हैं। गृहस्थ लाग नहा। यह विचार भ्रमपूर्ण है। धर्म तत्त्व इतना मनुचित नहा है। धर्म में एसी मकीर्णता नहीं है कि थोड़े से लोग ही उसका उपयोग कर सकें और जगत् मात्र उससे बचित रह। अगर धर्म में इतना सकीर्णता होती तो धर्म का फैलान वाल अवतारों को लोग इश्वर, परमेश्वर प्रभु, जगन्नाथ, जगद्गन्धु, जगन्नियन्ता आदि उदार विशेषणों से क्यों स्मरण करत? अतएव इस ध्रान्त धारणा

को निकाल कर फेंक दो। धर्म सिर्फ साधुओं-त्यागियों के लिए नहीं है पर सारं सभार के लिए है जैसे प्राकृतिक पदार्थों को—हवा, पानी आदि को—उपयोग में लाने का अधिकार सभी प्राणियों को है, उससे कोई वंचित नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार धर्मतत्त्व क पालन करने का अधिकार भी सभी को है। गृहस्थ तो मनुष्य ही है, पर शास्त्रकार तो पशुओं को भी धर्मपालन का अधिकार देते हैं। कोई-कोई पशु भी प्रबल पुण्य क परिपाक स श्रावक के कतिपय नियमों की आराधना करके पंचम गुणस्थान श्रेणी को प्राप्त कर सकता है। जहाँ पशुओं को भी धर्म साधना का अधिकार हो वहाँ मानव मात्र का अधिकार तो स्वयं सिद्ध हो जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि भगवान् महाशार क ममशालीन श्री गौतम बुद्ध न अपने सघ म गृहस्था को स्थान नहा दिया, पर उमका परिणाम कुछ अच्छा नहीं आया। इसमें विपरीत जैन सघ म श्रावक और श्राविका को स्थान प्राप्त है। इसका परिणाम यह है कि श्रावक जैनों की सख्या अल्प होन पर भी जैन सघ शौद्ध मघ की अपेक्षा अपने मूल भूत उसूलों से अधिक चिपटा हुआ है। यह ठीक है कि उसमें भी अनक प्रकार के विकार आ गये हैं फिर भी शौद्ध माधु और श्रमणोपासक से जैन साधु और श्रावक की तुलना करने से दोनों का भेद स्पष्ट प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा। यह कहकर मैं किसी धर्म की निन्दा नहीं करना चाहता, अपितु यह बताना चाहता हूँ कि धर्म तत्त्व उदार है, व्यापक है और उसे साधन करने का गृहस्था को भी अधिकार है।

सूर्य किमी व्यक्ति-विशेष के घर पर ही प्रकारा नहीं फैलाता पर जगत् को प्रकारामय बनाता है। जल किसी खास व्यक्ति की तृपाको शांत नहीं करता बरन् प्रत्येक पीने वाले की प्यास बुझाना है। वायु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए ही नहीं है किन्तु सभी क लिए है। अग्नि सिर्फ राजा के पकवान ही नहीं, पकाती पर सभी प्राणा



धर्म के भीतर एक महान् तत्त्व है। उम महान् तत्त्व की उल्लिखित मध्य को नहीं होना पाती—कोई विरला ही उसे प्राप्त करता है। निम्नमें धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धाभाव के और हिमाचल की भी श्रद्धा है यही उस गूढ़तर तत्त्व को पाना है।

जय प्रह्लाद पर अभियोग लगाया गया तब हिरण्यकश्यपु ने पुरोहिता को आज्ञा दी कि कोई ऐसा अनुष्ठान करो जिससे प्रह्लाद का अन्त हो जाय। जिस धर्म का अन्त करने के लिए मैं तन्म लिया है, प्रह्लाद वसी को फैला रहा है। मर हा घर में जन्म लेकर, मेरे शत्रु—धर्म को प्रश्रय दे यह मुझे असह्य है। मैं धर्म को जीवित नहीं रहने दूंगा। अगर प्रह्लाद उसे जीवित रखने की चेष्टा करेगा तो उस भा जीवित न रहने दूंगा।

हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को बुलाकर समझाया—अरे! इस धर्म को तो छाड़ दे। मैं ही प्रभु हूँ मैं ही इश्वर हूँ। मेरे विपरीत आचरण करने से यह भूलोक ही तेरे लिए पाताऊँ लोक—नरक बन जायगा। मेरा कहना मान। बाल हठ मत कर। धर्म तुझे लक्ष्मण।

प्रह्लाद ने निर्भय और निश्चित भाव से कहा—तुम और हो, प्रभु बुद्ध और है। धर्म के अनुकूल आचरण करना मेरे जीवन का उद्देश्य है। धर्म का अनुमरण करने में ही अगर कोई विरोध मसक्तता है तो मेरा क्या दोष है? मैं आपसे नम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप अपना दुराग्रह त्याग दें। धर्म अमर है, अविनाशी है। वह किसी का मार मर नहीं सकता। वह किसी के नाश किये नष्ट हो नहीं सकता। जो धर्म का नाश करने की इच्छा करता है, वह अपने ही विनाश को आमंत्रित करता है। आप अपना अनिष्ट न करें, यही प्रार्थना है।

प्रह्लाद की नम्रतावृण किन्तु रुढ़ता में व्याप्त बाणी मुनकर  
 हिरण्यकश्यपु क्रोध के मारे तिलमिला उठा। उसने अपनी  
 लाल-लाल भयानक आँखें तरे कर प्रह्लाद की ओर देखा, मानो  
 अपने क्रोधानल से ही हिरण्यकश्यपु को जला देगा। फिर कहा विद्रोही  
 छोकरे ! अब अपने धर्म को याद करना। हेमों तेरा धर्म तेरी क्या  
 मदायता करता है ? अभी तुझे धम का मधुर फल चखाता हूँ।

इतना कह कर उमन पुरोहिता को आज्ञा दी—'इसे आग में  
 डाल कर जीवित ही जलाकर खाक कर दो।' पुरोहितों ने तत्काल  
 हिरण्यकश्यपु के आदेश का पालन करना चाहा। उन्होंने धधकती  
 हुई आग में प्रह्लाद को बिठलाया। उस समय की प्रह्लाद की  
 धर्मश्रद्धा एवं ममभावना से आश्चर्य होकर देवी शक्ति ने चमत्कार  
 दिखाया। वह अग्नि अपनी भीषण ज्वालामुक्तियों से पुरोहिता को ही  
 जलाने लगी। प्रह्लाद के लिए वह जल के समान शीतल बन  
 गई। आग से बचने के लिए प्रह्लाद ने एक श्वास भी प्रार्थना में नहीं  
 लगाया उमने अपने बचाव के लिए परमात्मा से एक शब्द में भी  
 प्रार्थना नहीं की। 'ह ईश्वर ! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार की एक भी  
 वाक्य उक्ति उसके मुख से नहीं निकली। वह जानता था—आत्मा  
 जलने योग्य वस्तु नहीं है। वह आत्मा है—आत्मा का कोई कुछ  
 बिगाड़ नहीं सकता। उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

क्षण भर में पुरोहितों के हाहाकार और चीत्कार से आकाश  
 व्याप्त हो गया।

राज्यसत्ता अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए दूसरों को  
 कष्ट देती रहती है। मारे समार की राजनीति में हमी बात का ध्यान  
 रखा जाता है। राज्यसत्ता ने अपनी प्रतिष्ठा का अस्तित्व रखने के  
 लिए, प्रतिष्ठा का विस्तार करने के लिए और अपनी सत्ता को अक्षुण्ण

बनाये रखने के लिए गत महायुद्ध का भीषण रूप उपस्थित किया था। (और इसीलिए वर्तमान में भीषण सद्गर या नगा नृत्य हो रहा है। इस महार के सामने गत महायुद्ध का ध्वम भी नाचीज ठहरता है।—सपादक)

द्विरण्यकरयपु न अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए प्रह्लाद को उखाड़ना चाहता। पर उनकी दैवी शक्ति अपनी प्रयत्न थी कि उसके सामने द्विरण्यकरयपु की गवनीय शक्ति फातर धन गई।

मैं कई बार यह चुका हूँ कि धर्म वीर का होता है कायों का नही। वीर पुरुष अपनी रक्षा के लिए लालायित नहीं रहत, धरन अपने जीवन का उत्सव करके भी दूसरे की रक्षा के लिए सदा यद्य रहत हैं। वे प्रह्लाद करने वाले की निरालमिलानी हुई तलवार को देख कर नहीं डरते। डरना तो दूर की बात है, उनका एक रोम भी नही बड़कता। वीर पुरुष प्रहार करने वालों को भी अपना सहायक मममता है। उनके विचारों में निरातार्पण होता है।

या निशा सर्वभूताना तस्यो जागति सयमी ।  
यस्या जाप्रति भूतानि, सा निशा परवतो मुन ॥

जहाँ अन्य प्राणी अज्ञान रूप अवकार का अनुभव करते हैं, वहाँ ज्ञान पुरुष ज्ञान रूप प्रकाश की अवस्था का अनुभव करते हैं। अन्य प्राणियों या जो अवस्था प्रकाशमयी मान्य होती है, उसे ज्ञानी अवस्थामयी मानता है।

कहन का तापर्य यह है कि अज्ञानी जिसे अमत्सुग या हेय मममता है उसीको ज्ञानी जो मन् अथवा उपाये मानते हैं। राजमुकुमार के मन्त्र पर चढ़ते हुए अगार रखे गए परतु चढ़ते।

प्रकार रखने वाले को अपना उपकार ही माना। आप लोग इस कथा को सदा सुनने हो और स्वीकार भी करते हो, किन्तु जब क्रिया करने का अवसर आता है तब कुछ और ही रंग निम्नान लगत हो।

चिन्होंन आत्मतत्त्व की उपलब्धि करला है, जो आत्मा के महान स्वभाव में रमण करने लगे हैं, व भारतन वालों को भी उपकारी समझते हैं। उनका मतव्य होता है कि हम उहाँ कुछ समय के आशात पहुँचने वाल थे वहाँ हम उपकारी ने जल्दा ही पहुँचा लिया है।

मित्रो! धर्म धाना में नहीं होता। धर्म अनुष्ठान में—क्रिया से होता है। धीर पुरुष ही धर्म का पालन करते हैं। क्षत्रिय को तलवार का बल होता है पर वारों में धीर, देवी शक्ति का धनी, आत्म बल से सम्पन्न महात्मा तलवार का बल को हेय समझता है। वह अपनी आत्मिक शक्ति के द्वारा तलवार वाले की भी रक्षा करता है।

जिस समय प्रह्लाद को जलान के लिए धधकाइ हुई अग्नि पुरोहिता को ही भस्म करने लगी, तब प्रह्लाद ने प्रार्थना की—प्रभो! इन दातवों का प्राण करो। यह नेचारे अज्ञान प्राण। अपने भौतिक बल को ही प्रबल समझ बैठे हैं। दाकी बुद्धि अज्ञान में मलान है। उन्हें क्षमा करो। न्या करो, निमस उन्हें शान्ति मिले।

जिस प्रह्लाद ने अपना परित्राण के लिए प्रार्थना का एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया था, वही प्रह्लाद उसी का भस्म करने के लिए उद्यत हुए पुरोहिता के लिए परमात्मा पर प्रति प्रार्थी बना। उसकी प्रार्थना निष्फल नहीं हुई। अग्नि शान्त हो गई और पुरोहित आश्रय करने लगे। व धोल—ओह! आग अचानक शांत हो गई। प्रह्लाद, तुम बड़े करामाती हो। यह विद्या तुमने कहाँ सीखी ?

प्रह्लाद बोला—

सर्वत्र दीया समतामुपेत्य,  
समन्वयमासाधनमप्युत्तरय ॥

सब प्राणियों पर समताभाव लाओ। मारने वाले को भी मान दो। मारने वाले से मत डरो। डरने वाला ही क्रोध करता है और क्रोध करने वाला ही डरता है। जहाँ डर आया कि क्रोध आते देर नहीं लगती। अगर आपको पाम एक ऐसी वस्तु हो जो त्रिकाल में भी आपको छोड़ कर कहीं नहा जा सकती तो आप उस वस्तु के लिए चिन्ता करेंगे ?

‘नहीं’

जिस वस्तु के ७ दिन का आपको भरोसा है उसे छीने का अगर कोई प्रयत्न करता है तो क्या आप उस पर क्रोध करेंगे ?

‘नहीं’

क्रोध तभी आता है जब उस वस्तु के जान का भय हो।

जिम मनुष्य के पाम मौ टच का मर्चा साना है और जिसे मोन के मन्चे पथ विशुद्ध होने का विश्वास है वह उस सोन की पराज्ञा से भयभीत होगा ? अगर कोई आदमी उस मोन को तपाता चाहे तो क्या मोन का स्वाभी घबराएगा ? कदापि नहीं। वह कहेगा ‘लीजिए, खूब तपाइए। मर्चा हो तो लीजिए।’ इससे विपरीत जिसके पास सच्चा मोन नहीं है नक्ली है, वह तपान के लिए कहन पर क्या कहेगा ? वह कहेगा—‘वाहजी वाह ! आप मुझे पर नता भी विश्वास नहीं करते ! अगर आपको मुझे पर विश्वास नहीं है तो रहने दीजिए। मरा मोना मुझे लौटा लीजिए।’ इस प्रकार नक्ली सोने वाले को क्रोध आवेगा।

तात्पर्य यह है कि सत्य में क्रोध नहीं होता, मृत्यु में भय नहीं होता, सत्य में कपट नहीं होता, सत्य में लोभ नहीं होता ।

कडे दगाबाज हैं । यह आपको छोड़कर चले जा सकते हैं । इसी कारण उनकी रक्षा के लिए आपको चिन्ता करनी पड़ती है । अगर य आपको छोड़कर जाने वाले न होते तो आपको उनकी चिन्ता करनी पड़ती ? नहीं । क्योंकि जो स्वयं रक्षित है उसकी रक्षा करने की क्या आवश्यकता है ?

जो आत्माराम में रमण करता है, जिस मच्चिदानन्द पर परिपूर्ण श्रद्धाभाव उत्पन्न हो चुका है, वह मरने में नहीं डरता, क्योंकि वह समझता है—मरी मृत्यु अमम्भव है, मैं वह हूँ, जहाँ किसी भी भक्ति शक्ति का प्रवेश नहीं हो सकता ।

मित्रो ! यह विषय बड़ा गूढ़ है । एक दिन के व्याख्यान में इस समझाना शक्य नहीं है । इसे हृदयगम करने के लिए कुछ दिन धरा धर इस विषय को सुनना चाहिए, इस पर मनन-चिन्तन भी करना चाहिए । जब इसे हृदयगम कर लोगें तब इसका अभ्यास भी कर सकोगे ।

जो मनुष्य मच्चिदानन्द के स्वरूप का अनुभव करने लगता है उसे डराने की शक्ति त्रैलोक्य में भी नहीं है । आप चाहे वाल्मीकि-रामायण को देखिए, चाहे जैन-रामायण को पढ़िए, सीता के अग्नि स्नान का वर्णन कैसे जाञ्चल्यमान आत्म विश्वास का द्योतक है । निम्न मच्चिदानन्द पर पूरा विश्वास हो गया है पाँचों भूत उभक सबक धन जाते हैं । पौराणिक बातों को सिद्ध करने और उनमें रही हुई कल्पनाओं पर प्रकाश डालने का आज समय नहीं है । इस लिए आज इस विषय पर कुछ नहीं कहूँगा । अलक्षता यह बता देना चाहता हूँ कि दैवी शक्ति के छोटे-छोटे काम हम आन भी देख सकते

हैं। मैं एक बार घाटगोपर (बम्बई) में था, तब गोपरेज बराबरी एक पारसी मज्जा, जिनकी गोपरेज की तिनोरियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, मुझ से मिलना आये। उन्होंने मुझे एक पुस्तक बताई। मैं अंग्रेजी भाषा जानता नहीं था, अतएव एक दूसरे मुनि से मैंने वह पुस्तक मुनी। उसमें एक स्थल पर लिखा था कि फ्रान्स देश में एक ऐसा डाक्टर है जो बड़ी मद की गोटों को सिर्फ हाथ फेर कर गिरा देता है, जैसे काँड़ वृक्ष पर सफल फल फाड़ लेता है। यह सच क्या है? आत्मबल का चमत्कार, मानसिक शक्ति की परामात।

आचर्य के मनोविज्ञानवेत्ता मानवीय मन की शक्तियों की ग्योज में लगे हुए हैं। एक मनुष्य ने अपनी मानसिक शक्ति के द्वारा घड़े जहाँ को चलते दिया था। मम्मरेखम एक हल्की जाति की मानसिक क्रिया है। भारतीय साहित्य में उसे आटक क-मरने हैं। यह एक बहुत ही हल्की क्रिया मानी गई है। इसका माध्यम भी जय मनगहा काम कर सकता है तब बड़े मानसिक शक्ति वाले क्या काम न कर सकेंगे? साधारण मनावल वाला भी यदि मनुष्य को हँसा सकता है, कला सकता है, इधर उधर हिला-डुला सकता है तब उच्च-श्रेणी की मानसशक्ति प्राप्त कर लेने वाले को कौनसा काम अमाध्य हो सकता है? 'केसरी' पत्र के सम्पादक श्री कलकर ने चार इञ्च मोटे अष्ट पहलू लोहे के डण्डे को केवल मानसिक शक्ति के द्वारा कपड़े की तरह मोड़ कर रख दिया था। क्या यह साधारण तौर पर आसान काम है?

जिस मनुष्य का आत्मविश्वास प्रगाढ़ हो जाता है, उसके लिए काम फोड़ काम नहीं रहता जिसे बड़ कर न सकता हो। लाखों करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी जो काम बखूबी नहीं होता, उसे आत्मबली बात की बात में कर डालना है। आत्मबलशाली के सामने समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़ खड़ी रहती हैं।

रेटियम धातु क एक तोल का मूल्य चार करोड़ रुपया है । यह धातु यज्ञ कठिनाई म मिलती है । इसका एक कण, जो माइक्रोमैट्रोप में ही देखा जा सकता है, अगर शीशे की नली में बंद कर दिया जाय और रोगी क ऊपर उभना प्रयोग किया जाय तो चमत्कार दिखाई देगा । परन्तु आत्मबल क पहाड़ में स यात्र तुम कुछ भी शक्ति प्राप्त कर लोग तो तुम्हें यह मंत्र चमत्कार—यह सिद्धि—फोक जान पडग ।

परमात्मा की शक्ति अद्भुत है । इस तथ्य की परीक्षा जैन-दृष्टि म, वैष्णव दृष्टि में, ईसाई दृष्टि म मुस्लिम दृष्टि में या अन्य किसी भी दृष्टि से करो, अगर निष्पक्ष भाव से परीक्षा करो तो यमना पता चल जायगा ।

मत्र प्राणियों में आत्मन्वरूप क दर्शन करा, तुम्हारा कल्याण होगा । इश्वर-आनन्द घन रूप है । तमाम प्राणियों क हृदय म वमत्र दर्शन होते हैं । उसे पहचानन का प्रयत्न करो । मैंने तुवागम की एक अभंग कविता पढी है । उसमें भक्त-भागवतों को सवाधा किया गया है । तुम उस अहद्-भक्त को दृष्टि से देखना । धम किसी एक का वस्तु नहीं है । वह मत्र की सामान्य सम्पत्ति है । निममें धर्म का समावेश ही वही हमारी है । अमल में हमारा काम मत्य की ग्योन करना है । मैंने माधु का जो याग पढना है सो लोकर विचार क लिए नहीं, पूना-प्रतिष्ठा प्राप्त करा के लिए भा गडा, परन्तु परमात्मा की उप सन्धि क मार्ग पर अपने आत्मा को प्रस्तुत करने क लिए पढना है । तुमाराम का प्रश्न करा है ? मुनिये —

यथाव मय लग वैष्णवाचा धर्म भेदाभेद भ्रम भ्रमगल  
जी तुम्हीं भक्त भागवत करात ते हित सत्य करा ।  
कोणाही जिवाचा धर्म मत्सर धर्म सर्वेश्वर पूना ये  
तुना रह्ये एका देहा ये अवयव मुख-दुख जीव भोग पाव ॥



हे भागवतो भक्तो ! हे वैष्णवो ! और ते जैन भाइयो ! प्राणी मात्र के भीतर ईश्वर की मूर्ति है। आपने मन्दिरों में मूर्तियाँ देखी होंगी। कोई मूर्ति चाहे जैन मन्दिर में देखी हो चाहे वैष्णव मन्दिर में देखी हो, वह बम्र पहने देखी हो चाहे बिना बम्र की, चाहे पद्मामय वाली देखी हो, चाहे गद्गामन वाली देखी हो, यह किसी भी अवस्था में हो, पर यह है मनुष्य की ही आकृति में। कलाकार मनुष्य ने उसका निर्माण किया है, क्योंकि वह प्राकृतिक नहीं है। इस कारण वह मनुष्याकृति में बनी है। हाँ मूर्ति के निर्माण में जो बुद्ध भेद दिखाई देता है वह उसके बनवाने वाले की रुचि और श्रद्धा का भेद है। जिसकी जैसी रुचि और जैसी श्रद्धा थी, उसी के अनुसार वह बनाई गई है। पर बनाने वाले ने एक भूल की है। वह भूल क्या है ? उसने अपनी आकृति उसमें डाली है। आप बनाइए कि आपकी आकृति मूर्ति में है या मूर्ति की आकृति आप में ? आपकी आकृति उसमें है, तब बनाई हुई मूर्ति के प्रति इतना प्रेम और आदर हो तथा जो मूर्ति कुदरती है—प्राणी-मात्र का निर्माण प्रकृति ने किया है, उससे नरुगत की जाय, यह जैसी बात है ? जो कृत्रिम मूर्ति में प्रेम करना है और अकृत्रिम से घृणा करता है, उसे क्या कहा जाय ?

फोर्माई सोचेंगे कि मैं उनकी मूर्तियों की निन्दा करता हूँ। सम्प्रदायों की भिन्नता के कारण एक दूसरे का अपमान करता है, निन्दा करता है, यह सही है। पर मैं किसी की निन्दा नहीं करता। धर्म के नाम पर निन्दा रूप अधर्म का आचरण करना मुझे रुचिकर नहीं है। मैं जो मृत्यु समझता हूँ वही कहना हूँ—सकृत् प्रतिविक्रयानां निन्दा वा क्रोड प्रश्न ही रज्जा नहीं होता। मैं तो अकृत्रिम मूर्ति की महत्ता का निर्गुण धराना चाहता हूँ। देविया—

देहो देवावय प्रोक्तो, जीवो देव सनातनः ।

त्यजेदज्ञान निर्माल्यं, शोऽह भावन पूजयेत् ॥

यह देह मन्दिर है। इसमें विराचमान आत्मा देव परमात्मा है। अज्ञान रूपी तमालिय ( त्याज्य वस्तु ) का त्याग करके मोऽह भाव में उस परमात्मा की सेवा करना चाहिए।

यह 'मोऽह' भाव क्या है? इसको स्पष्ट करते हुये एक जैना चार्य ने कहा है—

यं परमात्मा स एवाह मोऽह स परमस्तत ।  
अहमेव मयाऽऽप्य, नाम्य कश्चिदिति स्थिति ॥

अर्थात् जो परमात्मा है वही मैं हूँ। जो मैं हूँ वही परमात्मा है। इस प्रकार मोऽह का अर्थ है—'मैं ईश्वर हूँ।'

यह आशंका की जा सकती है कि मैं ईश्वर हूँ। ऐसा कहने और अनुभव करने में तो अभिमान आ जायगा। यह आशंका ठीक है। ऐसा कहने एवं अनुभव करने में अगर अभिमान आ जायगा तो वह कथन एवं अनुभव मिथ्या होगा। अभिमान वृत्ति का त्याग करके जब ऐसा अनुभव किया जायगा अर्थात् कहा जायगा तभी उसमें माराई आणगी। अभिमान का आना अनिवार्य नडा है। इस प्रकार की अनुभूति जिस उच्च भूमिका में प्रवेश करने पर होती है, उसमें अभिमान का भाव शान्त हो जाना है।

मित्रो! अगर एकान्त में बैठ कर ध्यान का अभ्यास करोगे तो तुम्हें पता चल जायगा कि तुम ईश्वर से भिन्न नहीं हो। जो इस उन्नत अवस्था को प्राप्त करता है वही 'मोऽह' बन सकता है। आध्यात्मिक भेद करते हुए सोऽह का रूप इस प्रकार बताया गया है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य पर मन ।  
मनसस्तु परा बुद्धिर्षो बुद्धे परतस्तु स ॥

देह आदि पद्यों से इन्द्रियों पर हैं, इन्द्रियों से मन पर है, मन से बुद्धि पर है और बुद्धि से भी परम अथा आत्मा है।

म अयात् आमा फा टीक टीक अभिप्राय मममाने के लिए एक बात कहता है।

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों को मोड्ड का पाठ पढ़ाया गया और उस पर स्वतन्त्र विचार—अनुभव करने के लिए कहा गया।

दोनों शिष्यों में एक उद्वेग म्भवाय का था। उसने मारना तो कुछ की नहीं और मोड्ड—मैं ईश्वर हूँ इस प्रकार कह कर अपने आप परमात्मा बन बैठा। वह अपने परमात्मा होने का लिंग पीटने लगा। जो मिले उसमें कहता—मैं ईश्वर हूँ। लोगों ने उसकी मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके हाथों पर जलत अगार रखने चाहे। तब वह बोला—है। यह क्या करने हो? हाथ पर अगार रखने पर मुझे जलाना क्या चाहत है?

लोगों ने कहा—'भले आत्मी। यहाँ ईश्वर भी जलता होगा?' फिर भी वह मृगय गिर्य अपनी मूर्खता से न समझ मरा। वह अपने को ईश्वर कहता जा रहा। एक आत्मी ने उसका गाल पर रोंटा मारा। वह बोला—'क्या तुमने मुझे चोंटा मारा?'

वह आत्मी—'मृग! यहाँ ईश्वर क भी चोंटा लगा है?'

मार उसकी मूर्खता का रंग कतना कच्चा नहीं था। वह चढ़ा रहा। वह लोगों के विनोद का पात्र बन गया। उसमें अधिक यह उद्वेग न कर मरा। पर दूसरा शिष्य साधना में लगा। वह एकत्र काम करने लगा और सोपने लगा—'मैं अनेक प्रकार के रूप देख रहा हूँ, यह लोगों का प्रभाव है। मैं अन्तर काय सुनता हूँ, यह वाता की शक्ति है। नाना प्रकार क रमा का आस्वादन करना निहा

का काम है। किसी वस्तु का स्पर्शज्ञान होना हाथ-पैर आदि का काम है। मैंने जो गंध सूँघे हैं सो नाक के द्वारा। तो अथ मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि यह इन्द्रियों ही सोऽह है।

वह अपना निष्कर्ष लेकर प्रसन्न होता हुआ गुरुजी के पास पहुँचा। गुरुजी ने बोला—महाराज, मैंने सोऽह का पता पा लिया है।

गुरुजी—कैसे पता पा लिया ?

शिष्य—जो इन्द्रियों हैं वही सोऽह है।

गुरुजी—नाथो, अभी और साधना करो। तुम्हें अभी तक सोऽह का ज्ञान नहीं हुआ।

शिष्य चला गया। उसने सोचा—मैं अथ तब सोऽह का पता पा सका। गौर, अथ फिर प्रयत्न करना हूँ।

वह फिर मागना म जुट गया। विचार करने लगा—गुरुजी ने कहा है— इन्द्रियों सोऽह नहीं हैं। वास्तव में इन्द्रियों सोऽह कैम हा सकता है। इन्द्रियों सोऽह नहीं तो अस्मिता कैम होती ? इन्द्रियों परंपरा में जैसी था आन वैसी कहा है ? अथ अनिरिक्त मन भूतकाल म अथक शक्त गुण थ। उनका आन भी मुझसे पाता ह यद्यपि व वत्तमान म नहीं बोले जा रहे हैं। भूतकाल में मैंने जो निरिध रूप म्म थे वे आज निरिध नहीं दे रहे हैं फिर भी उनका मुझे स्मरण है। अथ इन्द्रियों ही जानने वाली जान तो वत्तमान में भूतकालीन विषया को ही स्मरण रखना ? इसमें यह स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि इन्द्रिया मे पर कोई ज्ञाना अथय है। तब फिर वह कैम है ?

उसने समस्या पर गहराई से साधन किया। तब उसे ज्ञान पड़ा कि इन सब क्रियाओं में मैंने साधन प्रेरणा रहती है। अतएव

मन ही सोऽह होना चाहिए । इसप्रकार निश्चय करके वह गुरुजी के पास आया । बोला—गुरु महाराज, मैं सोऽह का मनलघ्न समझ गया ।

गुरुजी—क्या समझे ?

शिष्य—यह जो मन है सो ही सोऽह है ।

गुरुजी—फिर जाओ और साधना करो ।

शिष्य फिर चला गया । उसने फिर साधना आरम्भ की ।

सोचा—मन सोऽह नहीं है । ठीक है । मन को प्रेरित करने वाला कोई और ही है । उसी का पता लगाना चाहिये । उसने बहुत विचार किया । तब उसे मालूम हुआ । मन को बुद्धि प्रेरित करती है । इसलिए मन में परे बुद्धि सोऽह है । वह फिर गुरुजी के पास पहुँचा । कहने लगा—गुरुजी, अब मैं सोऽह को समझ पाया है ।

गुरुजी—क्या है, बताओ ?

शिष्य—मन में पर बुद्धि सोऽह है ।

गुरुजी—बल्म, जाओ, अभी और साधना करो ।

शिष्य बेचारा फिर साधना में लगा । सोच विचार के पश्चात्

उमने स्थिर किया—गुरुजी ने ठीक ही कहा है कि बुद्धि सोऽह नहीं है । अगर बुद्धि सोऽह होती तो उममें विचित्रता विविधता क्या होती ? कभी वह विरसित होती है, कभी उममें मदता आ जाती है । कभी अन्धे विचार आते हैं, कभी घुरे विचार आते हैं । हमसे जान पड़ता है कि बुद्धि के परे जो तत्त्व है वही सोऽह है ।

शिष्य घड़ी प्रसन्नता के साथ गुरुजी के पास पहुँचा । बोला—महाराज, अब की बार सोऽह का पक्का पता चला लाया हूँ ।

गुरुजी—क्या ?

शिष्य—जो गुह्य तत्त्व बुद्धि से परे है, जिसकी प्रेरणा से बुद्धि का व्यापार होता है, वह सोऽह है ।

गुरुजी—(प्रसन्नतापूर्वक) हाँ अब तुम मममे । जो कुछ तुम हो वही ईश्वर है । उमी को सोऽह कहते हैं ।

मित्रो ! आत्मा का पता आत्मा क द्वारा आत्मा को ही लग सकता है । परन्तु आपने आत्मा के आच्छादनभूत बाह्य पदार्थों को महंगा बना लिया है, अतएव आपकी गति बाहर तक ही सीमित है । बाह्य आवरणों को चीर कर आप भीतर नहीं भाक पाते । आप पूछेंगे—कैसे ? मैं कहता हूँ—ऐसे उत्राङ्ग रूप बड़ा है या आँसों ?

आँसों ।

तो फिर रूप का लोभ क्या करते हो ? इसी प्रकार अन्यान्य वार्ता में भी समझना चाहिए । आप रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि के लोभ में पड गये हैं, उसी से आगे का काम रुका पडा है । मछला मांस लगे हुए जाल के काँटे में फँस जाती है । वह जानती है—मैं मांस खाने जाती हूँ, उमे यह नहीं मालूम कि वह मांस खाने नहीं जा रही वरन् मांस देन जा रही है ।

मित्रो ! मान लीजिए एक धीवर समुद्र के किनार जाल के काँटे में मांस लगाकर मछलियों पकड़ने की कोशिश कर रहा है । नाममक मछलियाँ मांस के लोभ से जाल की ओर बढ़ी चली आरही हैं । आप न्यावान् हैं और मछलियाँ अगर आपकी भाषा समझ सकती हैं तो आप उनसे क्या कहेंगे ? आप उनसे कहेंगे—'बहिनी ! निमके लिए तुम दौडी चली आ रही हो वह मांस नहीं, तुम्हारा नाश है—तुम्हारा ध्वंस है । इधर मत आओ । लेकिन आप जानत हैं कि मछलियाँ आपकी भाषा नहा समझतीं । इसलिये आप उनसे कुछ न

मकता है—पर मैं तो केवल यही कहता हूँ कि अपनी शक्ति क अनुसार अवश्य करो। जो मनुष्य परोपकार के गहरे तत्त्व को पहुँच जाता है, उसे दुनियाँ देवता की भाँति पूजती है। उस जाता अपना हृदय का हार बना लती है। उसक लिए सदा-मर्त्यता अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए तैयार रहती है। शास्त्रों म और लौकिक इतिहास म ऐसे बहुत से जाज्वल्यमान उदाहरण मौजूद हैं।

मित्रो ! धर्म क इस तत्त्व को प्राप्त करके व्यवहार करोग तो कल्याण होगा।

लूणियाँ की कोठी }  
भीनामर । }  
३—८—७७ }





## आधात-भत्याधात प्रार्थना

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिर नामी तुम भयी त  
प्रभु अन्तर्यामी आप, मो पर भ्दर करीजे हो ।  
मेटीजे चिन्ता मन तयी, श्दारा काट पुराकृत पाप ॥

यूरोपियन मज्जन टालसटाय एक बड़े विद्वान् और विचारशील पुरुष माने गये हैं । यह कोरे विद्वान् हां नहीं थे किन्तु उन्होंने अपना जीवन इतना उच्च घना लिया था कि य एक आदर्श पुरुष गिने गये हैं, उनका जीवन ह्द धर्ममय था । उनका जीवन का एक-एक दिन ऐसा धीतना था कि उसकी छाप दूसरों पर पड़े बिना नहीं रहती थी । उनका जीवन कसाईखाना देख कर धर्ममय घना था ।

कहत हैं, टालसटाय हमेशा कसाईखाने में पशुओं का बध रखने जाते थे । वहाँ जब पशुओं को गर्दन पर छुरी चलाई जाती थी तब उनके रोंगटे खड़े हो जाते थे । उस समय वे सोचते— 'हाय ! यह छुरी इसी तरह हमारी गर्दन पर चले तो हमें कितना कष्ट हो ! हम कितने छटपटाएँ ! बेचारे यह मूक प्राणी पराधीन हैं ।



भी छयाल नहीं करता, केवल पैरों में अपना लेब भरना चाहता है उसे कोई क्या कहेगा ?

‘चोर ! बदमाश !’

उसे दंड मिलेगा ?

‘अवश्य !’

यही बात आहार प्राप्त करने में समझती चाहिए । तो अपने मौजू शौक के लिए, अपनी जीभ को तृप्त करने के लिए, मूक प्राणियों का मांस खाता है उसे भी दंड मिल बिना न रहेगा ।

घालक माता के स्तन में दूध पीता है, यह उसका धर्म अर्थात् स्वभाव है पर जो घालक स्तन का खून पीना चाहता है उसे क्या घालक कहेगा ? लोग उसे घालक नहीं, जहरीला कीड़ा कहेंगे ।

‘प्रकृति हम, गाय, भैंस आदि से दूध दिलाती है । इससे हमारा बड़ा उपकार होता है । किन्तु हमारी अधीरता इन पशुओं का जन्ती ग्यात्मा कर एक से दिन पेट भर कर, अधिर दिनों तक पेट भरन घाल घी-दूध के स्रोत को बन्द कर देती है । मतलब यह कि लोग पशुओं को धीरे धीरे आता देख कर वृक्ष का ही मूलोच्छेदन कर डालते हैं ।

किन्तु इस गरीब गूग प्राणियों की बहालत कौन करे ? अन्ध की बात है कि इनकी करुणा भरी चीख को सुन कर हत्यारों का दिल पत्थर-मा क्यों घना रहता है ? विश्व के सर्व श्रेष्ठ कहलाने वाले प्राणी का—मनुष्य का—अतःकरण इतना जठोर कैसे घन गया है ? यह हृद दर्ज का अविचेकी क्या हो गया है । इसका कारण मनुष्य की परतंत्रता है । मनुष्य काम, क्रोध, मोह आदि ने अपने चहुन

में ऐसी बुरी तरह जकड़ लिया है कि वह कुछ कर नहीं पाता । उसकी बुद्धि पर काला पर्दा पड़ गया है, जिसके कारण कुछ भी नहीं सूझता ।

हाँ बैठे हुए अधिकांश भादू अमामाहारी हैं । वे मोचते होंगे— 'केवल मासाहारी ही पापी होते हैं । हम पाप में बचे हुए हैं । लोगों को दूमरे की किसी बात की टीका सुन कर मनोप होता है, मजा आता है, परन्तु जब उनके किसी काम की टीका की जाती है तब उन्हें बुरा लगता है । लेकिन सच्चा आत्मी तो वही है जो मधी बात कहे । हितचिन्तक नमी को समझना चाहिए जो श्रोता की रुचि अरुचि की चिन्ता न कर के श्रोता के हित की बात उतलाए । फिर श्रोता निम्न व्यक्ति पर श्रद्धा रखता है, जिसे अपना पथप्रदर्शक मानता है, उस पर तो यह उत्तरदायित्व और अधिक है कि वह अपने श्रोता को मत्स्य बात कहे । टीका ही कहा है—

रूसड वा परो मा वा, विस वा परियत्तड ।  
आसियप्पा दिया मासा, सपक्खगुणकारिया ॥

चाह कोई मूढ़ हो, चाहे तुष्ट हो, चाहे निष्प ही क्यों न उगलने लगे, लेकिन स्वपक्ष को लाभ पहुँचाने वाली, हितकर बात तो कहना ही चाहिए ।

जो व्यक्ति अपने श्रोता का लिहाज करता है, अपने श्रोता का अरुचि का विचार करके उसे मत्स्य तत्त्व का निदर्शन नहीं कराता, वरन् उसे प्रमत्त करने के लिए मीठी-मीठी चिकनी-चुपड़ी बातें करता है, वह श्रोता का भयंकर अपकार करता है और स्वयं अपने कर्त्तव्य से च्युत होता है । रोगी की अरुचि का विचार करके उसे आवश्यक

तो सारांश यह है कि सच्चिदानन्द भी शक्ति अद्भुत है। इसमें अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति विद्यमान है। इस पर विश्राम लाओ। इसकी ओर दृष्टि लगाओ। अन्तर्दृष्टि बनोगे तो अपूर्व प्रकाश मिलेगा।

प्रह्लाद अग्नि में डाल दिया गया मगर वह भस्म नहीं हुआ। तब दैत्यों ने पूछा—'हे प्रह्लाद ! तुमने यह शक्ति कैसे पाई है।' प्रह्लाद ने कहा—

सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत्य

समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥

हे दैत्यों ! समता धारण करो। तुम्हारे भीतर भी वह शक्ति आ जायगी।

प्रह्लाद को कितना कष्ट दिया गया था ! वह शस्त्र से काटन पर भी न कटा। जहरीले सर्पों से डँसाया गया पर जहर का कुछ भी असर न हुआ। मदोन्मत्त हाथियों के पैरों के नीचे कुचलवाने के लिए डाला गया पर हाथी उमे कुचल न सके। वह पर्वत पर से पत्का गया मगर चूर चूर न हुआ। उमे भस्म करने के लिए आग में डाला, पर आग ठण्डी हो गई। यह सब किमका चमत्कार था ? आत्म-शक्ति का। अमोघ आत्मिक शक्ति के आगे तमाम भौतिक शक्तियाँ बेकाम हो गई।

यह विज्ञान का युग है। लोग प्रमाण दिए बिना किसी बात को स्वीकार नहा करना चाहते। वे अपने घाह्य ज्ञान से समझते हैं कि आग एक आदमी को जलाए और दूसरे को न जलावे, यह कैसे हो सकता है ! पर यह सम्भव है कि शस्त्र से एक आदमी कटता है और दूसरा नहीं, बिपान करने से एक का प्राणान्त होता है और

दूमरे का नहीं। मगर आत्मबल की महिमा ममत्त लेने पर इस प्रकार की आशकाएँ निर्मूल हो जाती हैं। आध्यात्मिक बल के ममत्त भौतिक शक्तियाँ लुप्त बन जाती हैं। आग ने क्या सीता को जलाया था ?

‘नहीं !’

क्यों ? क्या अग्नि भी पक्षपात में पड़ गई थी ? उसे किसने सिखाया कि एक को जला और दूमरे को नहीं ? शस्त्र का काम काट डालना है पर उसने कामदक्ष श्रावक को क्यों नहीं काटा ? शस्त्र क्या अपना स्वभाव भूल गया था ? विप राने से मनुष्य मर जाता है, मगर मीरा घाई क्यों न मरी ? क्या विप अपने कर्तव्य से चूक गया था ? सत्य यह है कि आत्मबली के सामने अग्नि ठंडी हो जाती है, शस्त्र निकम्मा हो जाता है और विप अमृत बन जाता है। इस सत्य की साक्षी शास्त्र ही नहीं वरन इतिहास, प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुभव दे रहा है।

कृष्णाकुमारी की बात अग्नि पुरानी नहीं है। वह मेवाड़ के राणा भीमसिंह की कन्या थी। कहा जाता है कि उसकी मगाई पहल जोधपुर की गई थी पर कारणरस बाद में जयपुर कर दी गई। जोधपुर वाले चाहते थे कि इसका विवाह हमारे यहाँ हो और जयपुर वालों की भी यही इच्छा थी।

कृष्णाकुमारी अपने समय में राजस्थान की अद्वितीय सुन्दरी थी। उसके मीन्दर्य की महिमा धारों ओर फैली हुई थी। ऐसी स्थिति में उसे कौन छोड़ना चाहता ? निम्न पर प्रतिष्ठा का भी प्रश्न था।

विवाह की निश्चित तिथि पर जयपुर और जोधपुर वाले दोनों व्याहने जा पहुँचे। जयपुर वालों ने कहा—‘अगर कृष्णाकुमारी

हमें न दी गई तो रण भेरी बज उठेगी।' जोरपुर वालोंने कहलाया—  
 'अगर वृष्णाकुमारी का विराट हमारे यहाँ न किया गया तो हम  
 मेवाड़ को धूल में मिला देगे।'

राणा भीमसिंह कायर था। वह मरन से डरता था। उसे उन  
 रूखवार भेड़ियों को कुद्व भी जवाज देन की हिम्मत न हुई। वह मन  
 ही मन घुल रहा था। उस समय नहीं पड़ता था कि इस समय क्या  
 करना चाहिए और क्या नहीं? आखिर किसी ने उसे सलाह दी—  
 इस विपदा का कारण राजकुमारी वृष्णाकुमारी है। अगर इसे मार  
 दिया जाय तो भगड़ा ही मर जाय। फिर न रहेगा बाँस न  
 बनेगी बाँसुरी।

प्रताप के शुद्ध वश में फलक लगाने वाले और मातृभूमि के  
 उन्नत मन्त्र का नीचा करने वाले कायर राणा न यह सलाह मान ली।

सलाह को मध्यम परिणत कराने के लिए इन्त्यहान डरपोर  
 राणा ने अपनी प्यारी पुत्रा का दूध में त्रिप मिलाकर अपना हा हाओं  
 में पीने के लिए प्याला दे दिया। माली मालो कुमारी को कुद्व पना  
 न था। उसने समझा—सदा तासा दूध का प्याला लाकर रना है,  
 आज प्रेम के कारण पिताजी ने दिया है।' वृष्णाकुमारी त्रिपमिश्रित  
 दूध पी गई पर उस पर जहर का तत्काली भो असर न हुआ। दूसरे  
 दिन उस हत्यारे राणा ने फिर त्रिपमय रण का प्याला दिया। कुमारी  
 को त्रिमी प्रकार की शरा तो थी ही नहीं, वह फिर उसे गटगट पा  
 गई। आज भी त्रिप का प्रभाव नहीं हुआ। तीसरे दिन फिर यही  
 घटना घटन वाली थी कि किसी प्रकार कुमारी के कान में बात पड  
 गई। उसने साचा—हाय! मुझे मालूम ही नहा हुआ, अथवा  
 पिताजी को इतना कष्ट न देती। मरी ही बदीलत मेरी मातृभूमि पर

घोर मरुट आ पहा है । अगर मैं पुरुष होती तो युद्ध में प्राण निद्रापर करके मातृ भूमि की सेवा करती । मगर स्त्री, आच पिताजी रिपैला दूध पिलान आयेगे तो उसे पीकर मातृ भूमि का मरुट टालन के लिए अपनी जीवन-लाला समाप्त कर दूंगा ।

आरिज बड़ी हुआ । कृष्णा ने विषमिगित दूध का प्याला पीकर अपने प्राण दे दिए । आज मराठ क इतिहास में उसका नाम मुनहर अचरा में लिखा हुआ है ।

इस कथा से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि विष दो दिनों तक अपना असर क्यों नहीं लिया सजा ? और तीसरे दिन उमन क्यों प्रभाव डाला ? इसका उत्तर यह है कि दो दिन तक उसका पना ही नहीं था—कृष्णा की मृत्यु का भावना ही नहीं थी । वह पिता के द्वारा दिए हुए दूध का अमृत न समान समझ रही थी । इसी मनावल का शक्ति से विष उसका शक्ति भी रोकता कर सजा । तीसरे दिन वह मनोबल नहीं था । उसी विष को विष समझकर पिया, इसलिये उसकी मृत्यु हो गई । यह भावना बल, मनोभावना या आत्मबल का प्रभाव है । मुट्ट मनोबल के सामने विष और शस्त्र आदि अपने स्वभाव को छोड़ देते हैं । उनकी शक्ति भावनाबल से प्रतिष्ठित होता है ।

सीता की अग्नि परीक्षा हुई । मगर अग्नि उसका वज्र भी नहीं बिगाड़ सकी । जो लोग निरगत अधकानु हैं वे भय ही इस बात को स्वीकार न करें पर अमरिका और यूनान आदि के इतिहास में इसकी पुष्टि में प्रमाण मिलते हैं । निरुट भूतकाल में भी इस बात को मृत्यु सिद्ध करने वाली अनेक घटनाएँ घटी हैं । जो आत्म वज्र के क्षाता हैं, उन्हें मालूम है कि आत्मा में अरुत शक्ति भरी पड़ी है । आत्मा का शक्ति का पारावार नहीं है । आवश्यकता है उसे प्रकृतित

करने की। आत्मिक शक्तियाँ का आविर्भाव और विकास किस प्रकार होता है, यह आज का विषय नहीं है। शास्त्र में इस सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। नेचारे वज्र के आत्म-बल का भान नहीं है। अतएव वह मरते समय 'त्रे-त्रे' करता है और भाग जाता है। अगर उसकी सोई हुई आत्मशक्तियाँ जाग उठें, उसे आत्मबल का भान हो जाय तो किसकी मजाल है जो उसे काट सके।

मित्रो ! आप लोग यह न समझें कि आपको और दूसरों की आत्मा में कोई मौलिक अंतर है। आत्मा मूल स्वभाव में सर्वत्र एक समान है। जो मच्चिदानन्द आपको घट में है वही घट-घट में व्याप रहा है। इसलिए समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझो। किसी के साथ वैर भाव न करो। किसी का गला मत काटो। किसी को धोखा मत दो। दगाघाजी से वाज आओ। अयाय से बचो। परछी को माता के रूप में देखो।

भाइयो ! आप लोग जब मुकुटमा लड़ते हैं तो वकील को अपना मुक्तारनामा दे देते हैं, क्योंकि उस पर आप विश्वास करते हैं मगर क्या आप मरा विश्वास कर जीवन के मुकदमों को सुलभान के लिए मुझे मुक्तारनामा दे सकते हैं ?

( चुप्पा )

क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है ? आप मोचते होंगे—  
'महाराज कहीं मूढ़ कर हमें धारा न बना लें।'

मित्रो ! ऐसा खयाल मत करो। मैं आपको जबरदस्ती, आपकी इच्छा के विरुद्ध, चेला नहीं बनाऊँगा। मैं आपको अपना सर्वस्व त्यागने का उपदेश नहीं दे रहा हूँ, अगर आप वह त्याग दें तो

आपके लिए मौभाग्य की धातु अवश्य होगी। अभी मैं निर्फल यह कहता हूँ कि सब क साथ प्रेम करो, सगण्डि बनो और जिसे हजार दा हजार रुपय फर्ज दिये हैं, उस पर व्याज का व्याज चत्वारर हिसाब का तोड़ मरोड फर दुगुन-निगुन मत बनाओ। अन्धाय से धनोपार्जन मत करो। हक पर चलो। तुम्हें सच्चिदानन्द की दिव्य भाँकी दिखाने देगी।

हिंडोला चकर खाता है। उस पर बैठन वाले की भी चकर आन लगते हैं। इतना ही नहीं, हिंडोल म उतर जान क पश्चात् भी चकर आते रहते हैं। इसी प्रकार समार चक्र मदा घूमता रहता है। जब आप हट जाएँगे तब कुछ समय तक आपको चकर आते रहेंगे। मगर हिंडोले के चकरोँ के समान थोड़े समय क बाद आपके चकरोँ का अन्त हो जायगा। उक्ताने की जरूरत नहीं है।

एक आत्मी भरे समुद्र को लकड़ी के टुकड़े म उलीच रहा था। किसी न उमस कहा—‘अर पगले, समुद्र इस प्रकार खाली कैसे होगा?’ तब मन उत्तर दिया—‘भाइ, तुम्हें पता नहा है। इस समुद्र का अन्त है मगर इस—आत्मा—का अन्त नहीं है। कभी न कभी खाली हो ही जायगा।’

मित्रो! यह हृदतर आत्म विश्वास का उदाहरण है। ऐसे विश्वास से काम करोग वो सफलता आपकी दासी बन जायगी। विजय आपकी होगी। आधे मन मे दिलमिल विचार से, किसी कार्य की आरम्भ मत करो। चलन चित्त से कुछ दिन काम किया और शीघ्र ही फल होना हुआ दिख्यार् न दिया तो छोड-छाड कर दूर हट गये, यह असफलता का मार्ग है। इससे किया-कराया काम भी मिट्टी में मिल जाता है।



एक शहर में डाके बहुत पड़ते थे। वहा के महाजनाने सोचा— हमेशा की यह आपत्त बुरी है। चलो सब मिलकर डाकुओं का पीछा करें। उन्हें पकड़ें। सब महाजन नैयार हुए। शाम गँध कर शाम के समय जगल की तरफ खाना हुए। रात में विचार किया—डारू आधी रात को आवेंगे। सारा रात खराब करने से क्या लाभ है? अभी सो जाँ और समय पर जाग उठेंगे।

सब महाजन पंक्तिवार सो गये। उनमें जो सब से आगे लेगा था, वह सोचन लगा—‘मैं सब से आगे हूँ। अगर डारू आए तो पहला नम्बर भरा होगा। सब से पहले मुझ पर हमला होगा। मैं पहले क्या मरूँ? डाका तो सभी पर पड़ता है और मैं पहले मरूँ, यह कौन सी बुद्धिमत्ता है? अच्छा है, मैं उठ कर सब का पीछा चला जाऊँ।’

वह सब के अन्त में आकर सो गया। अब तक जिम्का दूसरा नम्बर था उसका पहला नम्बर हो गया। उसने भी यही सोचा—‘पहले मैं क्या मरूँ?’ और वह उठा और सब के अन्त में सो गया। वही प्रकार घरी घरी सब गिमकने लगे। सुबह होते-होते जहाँ थे वहीं वापस आगये।

लडाइ का काम वीरों का है। वीर पुरुष ही न्याय की प्रतिष्ठा और अन्याय के प्रतीकार के लिए अपने प्राणा की चिन्ता न करके जूझ पड़ते हैं। डरपोक उसम फतह नहा पा सकते। जिनके लिए प्राण रक्षा ही सब कुछ है, जिन्होंने जीवन को ही सर्वोच्च आराध्य मान लिया है, वे अशाय बर्दाश्त कर सकते हैं, गुलामी को उपहार समझ सकते हैं और अपने अपमान का कड़ुवा घट चुपचाप पी सकते हैं। वे महानन जीवन का गुलाम थे। इसी कारण वे लडाइ के लिए निराल कर भी ठिकाने पहुँच गये।

मित्रो ! जो कदम आपने आगे रख दिया है उस पीछे मत हटाओ । तभी आप विनयी होंगे । आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए आपको धीरों में भी धीर बनना पड़ेगा । किसी ने ठीक ही कहा है—

हरिनो मारग चे शूरानो, नदि कायरनो काम जो ने ।

दूसरी लड़ाइयों में तो कदाचिन् मौफा पडने पर ही सिर कटवाना पड़ता है पर हरि को अर्थात् सच्चिदानन्द को प्राप्त करने के लिए पहले ही सिर कटवा कर लडना पडता है । मगर यहाँ सिर कटवाने का आशय यह नहीं कि जैसे आप पगड़ी उतार कर रख देते हैं वैसे मिर भी घड़ से अलग करना पडता है । यहाँ मिर उतारने का अर्थ है, देह के प्रति अहंकार और ममता का त्याग करना । शरीर को स्वाक्षा मानना चाहिये आर आत्मा को—

नैन द्विन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावक ।

नैन क्लेदयन्वापो न शोषयति माहृत ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्याऽयमक्लघोऽप्रोष्य एव च ।

नित्य सर्वगत स्यात्पुरचलाऽय सनातन ॥

—गीता अ० २, श्लो० २३—२४

आत्मा को शस्त्र फाट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गला नहीं सकता और दवा सोख नहीं सकती ।

आत्मा कटन योग्य नहीं है, जलने योग्य नहीं है, गलने योग्य नहीं है, सोखने योग्य नहा है । आत्मा नित्य अजर अमर है, वह अपनी ज्ञान शक्ति क द्वारा व्यापक है, वह दूसरे द्रव्य रूप में कभी परिणत नहीं होता, मूल स्वभाव स वह अचल है—कभी उसक गुण बदलते नहीं हैं । वह सनातन है ।



## सच्चिदानन्द

### प्रार्थना

श्रीजिन अजित नमू जयकारी, मू देवन को दवजी ।  
'जितराघु' राजा ने विजया' राणी को, धातमजात स्वमेवजी ॥  
श्रीजिन अजित नमो जयकारो ॥ श्री ॥



प्रत्येक प्राणी मुख की तलाश में है। दुःख विन्नी को प्रिय नहीं लगता। सभी दुःख में बचना चाहते हैं। प्रत्येक प्राणी मुख के लिए मन्त्र मयर्प धरना रहता है। मुख प्राप्त करने के लिए मनुष्य ने बड़ी बड़ी लडाइयों लड़ी, पर मुख नहीं मिला। अगर कभी किसी को मुख मिला भी तो क्षण भर के लिए। फिर उन्नी मुख में से दुःख

फूट पड़ा। जिस सुग्न में मेरे दुःख फूट निकलता है उसे सुग्न न कह कर अगर दुःख का ध्यान बड़ा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

आज साइम विज्ञान की उत्पत्ति का ढँड हो रहा है। उसका उद्देश्य क्या है? सुग्न की खोज। जब तक मधा और स्थायी सुग्न न मिल जाय तब तक सुग्न की खोज जारी ही रहेगी। यह खोज सुग्न तक पहुँच सकेगी या नहीं, और यदि पहुँची तो कब तक, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर इसमें दिन प्रति दिन जो उत्साह दिखाया जा रहा है उसे देख कर यही कहना पड़ता है कि यह एकाग्र करने वाला नहीं है।

साइम जिस सुग्न को असली सुग्न मानेगा? इसकी गति भलाई की ओर हो रही है या बुराई की ओर? इस सन्दर्भ में कुछ टीका लिखना न करके साइंस के चर्चाचौध में चर्चित होने वालों में कुछ कहना उचित प्रतीत होता है।

बुद्ध भाई साइम द्वारा आरिष्वृत गैजिन को देख कर अत्यन्त आश्चर्य करते हैं। मैं इन भाइयों से प्रश्न करता हूँ कि गैजिन आश्चर्यजनक है या गैजिन का आविष्कार ?

‘गैजिन का आविष्कार !’

आरिष्वर्त्ता आश्चर्यजनक क्यों है? इसीलिए कि उमक भीतर मेमे-गमे अद्भुत कल पुर्वे हैं कि उमने गैजिन का निर्माण कर दिया है। अगर गैजिनियर में ऐसी शक्ति न होती तो गैजिन का निर्माण नहीं हो सकता था।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि गैजिनियर के भीतर गंगा कौन सा गैजिनियर बैठा है जो ऐसे-ऐसे ओर इससे भी—बढ़कर

प्राश्चर्य में डालने वाले अदभुत काम कर डालता है ? उत्तर मिलेगा—  
 गेंजिनियर के भीतर जो गेंजिनियर है उस का नाम है—आत्मा । यह  
 आत्मा सिर्फ गेंजिनियर के अन्दर ही नहीं, घरन् तमाम छोटे-बड़े  
 प्राणियों में मौजूद है ।

इस आत्मा में जबरनस्त शक्ति है । यह मसार को उथल-पुथल  
 कर सकता है । जिम साइम ने आज मसार को कुछ का कुछ बना  
 दिया है उसके मूल में आत्मा की ही शक्ति है । आत्मा न होता  
 साइस का काम एक जण भी नहीं चल सकता क्यों कि वह स्वयं  
 जड़ है ।

जड़ साइस के चकाचौंध में पड़ कर साइस के निर्माता आत्म  
 को नहीं भूल जाना चाहिए । अगर तुम साइस के प्रति निहाम  
 रग्यते हो तो माइम के निर्माता के प्रति भी अधिक नहीं तो उतनी ही  
 जिज्ञासा अवश्य रखो । साइम को पहचानना चाहते तो आत्मा  
 को भी पहचानने का प्रयत्न करो

आत्मा की पहिचान कैसे की जाय ? लक्षणों से । आत्मा का  
 लक्षण क्या है ? शास्त्र बतलाता है—सत्, चित् और आनन्द ।

सत्, चित्, आनन्द किसे कहते हैं ? सत् का मत लब क्या है ?  
 चित् किसे कहते हैं ? और आनन्द का अर्थ क्या है ? इसका उत्तर  
 सुनिये—

प्रश्न—सत् किम् ?

उत्तर—कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति आत्मा सत् ।

प्रश्न—चित् किम् ?

उत्तर—साधनान्तरनैरपेक्षयेण स्वयं प्रकाशमानतया पदार्थाव  
भासनमस्तीति आत्मा चित् ।

प्रश्न—आनन्द क ?

उत्तर—देश-काल-वस्तुपरिच्छेदशून्य आत्मा—आनन्द ।  
इत्यात्मन सच्चिदानन्दरूपत्वम् ।

जो भाई मस्कृत-भाषा जानते हैं वे मच्चिदानन्द की व्याख्या  
समझ गये होंगे । जो मस्कृत नहीं जानते उन्हें जरा विस्तार के साथ  
कहने से सच्चिदानन्द का रहस्य मालूम हो जायगा ।

मस्कृत में सत् का जो अर्थ किया गया है उसका आशय यह  
है कि तानों कालों में निमना नारा न हो, निसे निसे समय देगे  
उसका वही रूप सत् नजर आवे उसे सत् या सत्य समझना चाहिए ।  
जा एक क्षण निगाई दे और दूसरे क्षण न निगाई दे वह 'सत्' नहीं है ।

शास्त्र ने आत्मा का एक लक्षण सत् धतलाया है । आत्मा अपने  
शरीर के अन्दर है । कोउ यह प्रश्न उठा सकता है कि आपने कहा  
है 'निसे निसे समय देखें तब तब उमना वही रूप नजर आवे उसे  
सत् समझना चाहिए ।' मगर यह लक्षण आत्मा में नहीं पाया जाता ।  
मैं पहले ज्ञा था, बाद में युक्त बना और अज्ञ वृद्ध हूँ । इस प्रकार  
तीन अवस्थाएँ कैसे बदल गई ?

इसका उत्तर यह है कि यहाँ बाल, युवा, वृद्ध अवस्थाओं का  
जो परिवर्तन निगाई देता है वह शरीर की अवस्थाएँ हैं—आत्मा की  
नहीं । आत्मा में न तो कभी परिवर्तन होता है, न अभी होगा । यदि  
इसमें आपको कुछ शंका हो तो आपके शका के शत्रु ही आपकी  
शंका का समाधान कर लेंगे ।

में जब इतनी शक्ति है तब मैं वर्ष तक मनुष्य के शरीर में एक रूप में रहने वाली आत्मा में कितनी शक्ति होनी चाहिए ? भाइयो, आत्मा की शक्ति अनोखी है। वजानियों ने कहा है—आटलांटिक महासागर को हटा कर यदि आफ्रिका के रेगिस्तान में फेंक दिया जाय तो इसके नीचे से एसी उत्तम भूमि निकले कि उसका घणन ही नहीं हो सकता। यह शक्ति किसने निकाले हैं ? आत्मा ने ! आटलांटिक सागर कोई छोटा सा समुद्र नहीं है। वह सत्तर करोड़ सागरों में एक बड़ा भारी सागर है। आत्मा उभे भा उठा कर फेंक सकती है। ऐसी अद्भुत और अमीम आत्मा की शक्ति है।

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि, किसी पदार्थ का रूपांतर हो जाता है पर उसके परमाणुओं का नाश नहीं होता, यह आपने पहले कहा है और साथ ही यह भी कहते हैं कि सत् होने के कारण आत्मा का नाश नहीं होता। इस प्रकार नाश तो किसी भी वस्तु का नहीं होता फिर आत्मा को मत् और जड पदार्थ को अमत् कहन का क्या प्रयोजन है ?

इस आशङ्का का मरल समाधान यह है कि परमाणुओं द्वारा किसी वस्तु का घनना और विघनना अर्थात् परमाणुओं का मिलना और जुग हो जाना ही नाश कहलाता है। जिस वस्तु के परमाणु मिलते और विघनते हैं वह नाशया कहलाती है। आत्मा ऐसी वस्तु नहीं है। न तो उसके प्रवेश—अवशेष—कभी मिलते हैं और न विघनते हैं। वह सदा-मरल जैसी है ऐसी ही रहती है। इसी भेद के कारण जड को अमत् और आत्मा को मत् कहा गया है। कल्पना कीजिए, किसी न बकरे की गर्दन पर छुरी चलाई। उसका सिंग धड़ से अलग हो गया। पर उसके अन्दर रही हुई आत्मा के टुकड़े नहीं

हुए । यह ज्ञानघन आत्मा सूक्ष्म रूप में ज्यों की त्यों है । यह आत्मा का मनुष्यना है ।

सा का अर्थ व्यापक है । द्रव्य रूप से पुद्गल आदि पदार्थ भी मनु हैं अतएव उनको जुड़ा करके समझने के लिए आत्मा का दूसरा रूप 'चिन्' है । 'चित्' के द्वारा आत्मा के अध्याधारण रूप का पता लगता है । जो स्वयं प्रकाशमान है, निम्ने प्रकाशित करने के लिए निम्ना और की महायता अपेक्षित नहीं है उस 'चिन्' कहा गया है । शास्त्र का कथन है कि आत्मा सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान है । आत्मा सूर्य को देख सकता है पर सूर्य आत्मा को नहीं देख सकता । इस बात को प्रकाशित करने वाला भी आत्मा स्वयं ही है । साधना के द्वारा निम्ना को प्राप्त करने वाला आत्मा इस रहस्य का उद्घाटन करता है । एक व्यक्ति दीपक लेकर अन्धकार में व्याप्त कमरे में प्रवेश करता है । वह वहाँ की समस्त दृश्य वस्तुओं को देखता है और साथ ही दीपक को भी देखता है । वह दीपक उसको नहा देखता, क्योंकि दीपक जड़ है । हम सूर्य का नेत्रों द्वारा देखते हैं, पर वास्तव में देखने की शक्ति नेत्रों की नहीं, आत्मा की है । नेत्र बसल कारण होते हैं । दर्शन क्रिया का कर्ता तो आत्मा ही है । आत्मा न होता तो सूर्य के दर्शन न होत ।

अब आत्मा के तीसरे रूप 'आनन्द' को लीजिए । 'आनन्द' से भी आत्मा का पता चलता है । आनन्द किसे कहते हैं ? निम्ने देश, काल और वस्तु में बाधा न पड़ती हो और जो अनुभूत मनेन रूप होता है उसे आनन्द कहते हैं । यों तो साधारणतया इन्द्रियों से आनन्द का पता लगता है परन्तु पूर्ण आनन्द इन्द्रियों से परे है ।

एक आदमी ने मिठाई खाई । वह कहता है—'बड़ा आनन्द आया । पर शास्त्र कहता है—'आनन्द मिठाई खाने से नहीं है ।' आप



सकते हैं कि अगर मिठाई खाने में आनन्द नहीं है तो लोग खाने क्यों हैं ? रोग आदि हानि की परवाह न करके, पैसे खर्च करके लोग मिठाई खाते हैं और आप कहते हैं—'आनन्द मिठाई खाने में नहीं है।' इसका मत्तप में उत्तर यह है कि अगर मिठाई आनन्द रूप हो तो मुँह के मुँह में मिठाई टालिए, क्या उसे आनन्द आयेगा ? नहीं। इसीसे कहते हैं कि आनन्द मिठाई में नहीं, पर मिठाई से परे है।

अच्छा, मुँह को जाने दीजिए। कोई जीवित पुष्प भरपेट मिठाई खा चुके, तब उसके सामने पाँच दस सेर मिठाई रख कर, लट्टू तान कर सामने बैठ कर कोई उसे खाने के लिए बाध्य करे ता खाने वाले को वह मिठाई आनन्द देगी ? नहीं। उस समय मिठाई पहर से भी बुरी मालूम होगी। अगर मिठाई में आनन्द है तो वह हर समय एक मा आनन्द क्यों नहीं देती ? इससे प्रकट है कि आनन्द मिठाई में नहीं है। वह कहीं दूसरी जगह है।

इसके अतिरिक्त एक आत्मी के लिए जो मिठाई खिचकर हीन्ती है वह दूसरे के लिए अखिचर होती है। जो यस्तु एक को आनन्द दे और दूसरे को दुःख पहुँचाए, उसे आनन्द की वस्तु कैसे कहा जा सकता है ?

असली आनन्द आत्मा का गुण है। वह तुम्हारे पाप-कर्मों से दूँर गया है। तुम अपने पाप-कर्मों को हटा दो, फिर जान सकोगे कि असली आनन्द क्या है ?

आनन्द एक शक्ति निरुल्लसती है जिसे सेक्रीन कहते हैं। यह सेक्रीन साधारण शक्ति से २०० गुनी माठी होती है। सुना जाता है कि एक वैज्ञानिक अपना प्रयोग कर रहे थे। जब भोजन का समय हुआ तब भोजन करने गये। काम अधूरा ही पड़ा था। उन्होंने रोटी

हाथ में ली और खाने लगे । उन्हे रोटी बहुत मीठी लगी । नौकर से पूछा—आज रोटी मीठी बनाई गई है ? नौकर ने कहा—‘नहीं, मालिक, हमेशा जैसा रोटी है ।’ वैज्ञानिक ने हाथ धो डाले और फिर रोटी खाने बैठे । रोटी फिर भी मीठा ही लगती रही । वह फिर उठे । हाथ धोये । फिर उँगलियों चाटी तो नममें मिठास मालूम हुआ । उन्होंने सोचा—प्रयोग के कारण ही हाथों में मिठास आया जान पड़ता है । वह उठ और सीधे प्रयोगशाला में पहुँचे । प्रयोग की हुई वस्तु चरी तो वह बहुत मीठी मालूम हुई । उस समय वह माधारण शक्कर से ३० गुनी मीठी थी । यान्त्रिक ५०० गुनी मीठी की गई ।

निम्न पदार्थों में से सेमीन निकली वह और कुछ नहीं, केवल डामर बगैर रहये । इस कूड़े—कचरे में से भोजन इस प्रकार का मिठास निकल सकता है तब, निम्न आत्मा में अनन्त और अनीम मिठास है, उमकी शोध—माधना—क्यों नहीं करते ?

मित्रो ! आत्मा का विचार बड़ा लम्बा है । आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है । इसलिए स्थूल विचार में वह आता नहीं है । उसे अनुभव करने के लिए उन्मृष्ट साधना की आवश्यकता है । आत्मा के विषय में विस्तृत चर्चा फिर कभी की जायगी ? आन सच्चिदानन्द का सामान्य स्वरूप समझ कर अगर मनन करेंगे तो आपको अपूर्ण आनन्द का अनुभव होगा । रत्न को पहचान कर उसके लिए पैसा खर्चने में कोई आलस्य नहीं करता । अगर आप आत्मा को ‘सच्चिदानन्द’ मानते हो तो अपने तुच्छ सुख रूपा पैसों के बदले में ‘सच्चिदानन्द’ रूप को उपलब्ध करने में आलस्य मत करो ।

१. भीनामर  
 १५—८—३७



## सत्त्वके सुख का मार्ग

### प्रार्थना

'अश्वसेन' गृध्र कुल तिलोरे, वामा' देवीनी नन्द ।  
चिन्तामणि चित्त में बसेरे, दूर टले दुख द्वन्द ॥  
जीर रे ! तू पाश त्रिनेश्वर घद ॥ जीव ॥



कर्त्ता कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर अनेक विचारकों ने भिन्न भिन्न रूप से लिया है । व्याकरण शास्त्र का विधान है—'स्वतन्त्र कर्त्ता' अर्थात् जो स्वतन्त्र है, जिसे दूसरा कोई प्रेरित नहीं करता वरन् जो स्वयं साधनों का प्रयोग करता है, वही कर्त्ता है । व्याकरण शास्त्र का यह समाधान सामान्य अतएव अधूरा है । कर्त्ता स्वतन्त्र है, यह

चान लनेपर भी सृति नहीं होती। प्रश्न फिर भी घना रहता है कि  
 एमा कौन है जो स्वतन्त्र है ?

कोई 'स्वभाव' को कर्त्ता मानता है। उसके मत में विश्व की रचना  
 स्वभाव से हुई है। मगर विचार करने पर इस समाधान में भी पूर्णता  
 प्रतात नहीं होती। स्वभाव किसी स्वभावधान का होता है। बिना  
 गुणी के गुण का अस्तित्व नहीं हो सकता। स्वभाव अगर कर्त्ता है  
 तो स्वभावी या स्वभावधान कौन है ? इस प्रकार की निष्क्रामा फिर  
 भी रह जाती है, जिसका समाधान स्वभावधान में नहीं हो सकता।

स्वभाव को कर्त्ता मान लिया जाय और स्वभावधान को न माना  
 जाय, यह ऐसी मान्यता है जैसे दरय को स्वीकार करके भी दृष्टा को  
 स्नान न करना। मान लीजिए, एक आन्धी नीपक लेकर अंधेरे मकान  
 में जाए। वहाँ वह नीपक को दृग् और नीपक द्वारा अन्य वस्तुओं  
 को भी देखे। फिर भी वह पहे कि देखने वाला कोई भी नहीं है। ऐसा  
 कहने वाले व्यक्ति को आप क्या कहेंगे ? क्या देखने वाले का अभाव  
 घताने वाला व्यक्ति स्वयं ही देखने वाला नहीं है ? इस स्थिति में यही  
 कहा जायगा कि देखने वाला अज्ञान के कारण स्वयं अपने अस्तित्व  
 का निपेय कर रहा है।

प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में तीन चीजों की आवश्यकता होती  
 है। कर्त्ता, कर्म और कारण। इन तीन के बिना कोई वस्तु नहीं बनती।  
 आहरण के लिए घड़ा लीजिए। घना बनाने वाला कुँभार कर्त्ता है,  
 घड़ा कर्म है और मिट्टी, लड, चक्र, मूल आदि तिन साधनों स घड़ा  
 बनाया जाता है वे सब साधन कारण हैं। इन तान के बिना घड़ा नहीं  
 बन सकता।

कर्तृत्व का प्रश्न बड़ा जटिल है। सासकर जब मृष्टि और  
 उसके कर्त्ता का प्रश्न पथित होता है तब इस प्रश्न का जटिलता

रहता है ? आभूषणों को ठेम न लगाने के लिए नितनी सावधान रहती हो नितनी आत्मधर्म को ठेम न लगाने देने के लिए सावधान रहती हो ?

जगत् में नितने पदार्थ आँवों से दिखाई देते हैं वे सब दृश्य हैं, नाशवान हैं और जो इन्हें देख रहा है वह दृष्टा है, अविनाशी है। दृश्य खेल हैं और दृष्टा खेलाने वाला है। जिमसी पसी श्रद्धा है वह 'आस्तिक' कहलाता है। जो दृष्टा को अविनाशी रूप में नहीं मानता वह 'नास्तिक' है।

निसने दृष्टा को देख लिया है, पहचान लिया है वह दृश्य को मन्मान मिलने पर अपना सन्मान और अपमान मिलने पर अपना अपमान मानने के भ्रम में नहीं पड़ता। आप दृश्य के पीछे पड़ी हुई दुनिया उसके लिए अपनी सारी शक्ति खच रही है। फिर भी सुखकी परछाई तक दिग्गई नहीं गेती।

जो मनुष्य घडी को देख कर उसके कारागर को नहीं पहचानता वह मूर्ख गिना जाता है। इसा प्रकार जो शरीर को धारण करके इसम तिराजमान को नहीं पहचानता और न पहचानने का प्रयत्न करता है उमरी ममस्त त्रिशा अत्रिधा है। इसके सत्र काम गटपट, रूप हैं।

अज्ञान पुरुष को तिन पन्था के वियोग मे मर्मवेधी-पीडा पहुँचती है, ज्ञानी जन को उनका वियोग साधारण-सा घटना प्रतीत होती है। ज्ञानवान पुरुष सयोग को वियोग का पूर्व रूप मानता है। अनण्व वह सयोग के समय हप त्रिभोर नहीं होता और वियोग के समय विपात् मे मलीन नहीं होता। दोना अवस्थाओ म उह मध्यस्थ भाव रंगना है। सुख की कु जा उस हाथ लग गइ है इमलिए दु ख नसम दूर ही दूर रहने हैं।

घड़ी के किसी पुर्ने के नष्ट हो जाने पर मागरण मनुष्य को दुःख का अनुभव होता है पर घड़ीमान को कुछ भी दुःख नहीं होता। वह जानता है, पुर्जा टूट गया—नष्ट हो गया तो क्या हुआ। फिर बना लूँगा। कभी-कभी घड़ीमान अपनी इच्छा से घड़ा का पुर्जा-पुर्जा अलग कर देता है और फिर उन्हें नये भिरे से जोड़ कर, नवीन ज्ञान प्राप्त करके आनन्द का अनुभव करता है।

शरीर क्षेत्र है, आत्मा क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का अन्तर गाता में भी प्रतिपादन किया गया है। उसे इस समय विस्तारपूर्वक समझना कठिन है।

‘मित्रो ! आपको भोजन न मिलने से अधिक दुःख होता है या अपमान मिलने से ?

‘अपमान से ?’

क्यों ? इसलिए कि भोजन थोड़े परिश्रम से मिल सकता है परन्तु प्रतिष्ठा—मान—के लिए बहुत सी क्लमटें उठानी पड़ती हैं ? प्रतिष्ठा के लिए दुनिया न मात्रम कितने यत्न करती है। भारी गन्ध मिये जाते हैं, लोफदिग्वाचा किया जाता है, आकाश पाताल एक किया जाता है। किन्तु अन्त में परिणाम क्या आता है ? अम्ली मुख क बदले महान और घोर दुःख भुगतने पड़ते हैं। आज नये प्रतिशत दुःख अज्ञान के कारण और दम प्रतिशत व्यावहारिक कामों से हो रहा है।

मैं अभी मोहरे लुटाने लगूँ, भोजन का निमग्न दूँ और अच्छे अच्छे घन्न वितीण करूँ तो कितने मनुष्य इन्ट्रे होंगे ?

‘बहुत से’

अगर तत्त्वज्ञान सुनाऊँ तो ?

‘बहुत थोड़ा’

मेमा क्यों ? इमीलिए कि लोग अभी उन्हीं पदार्थों में सुख मान रहे हैं। तत्त्वज्ञान सुनना तो उन्हें भ्रष्ट मालूम होता है। पर यह स्मरण रखो कि सुख उन में नहीं है। गौर से देखो तो पता चलेगा कि धनी लोग अधिक दुःखी हैं। अनेक धनिकों की आँखें गहरी घुसी हुई, गाल पिचके हुए और चेहरे पर विषाद एक उदासीनता नजर आणी। पर मनु शरीर की स्थिति इससे उल्टी होगी। १०४ धनवान् महाजन कड़े-कठी पशुन कर पगल में चारों और मामने, कंधे पर लाठी लिये एक जाट को धरें तो ?

‘सब भाग टपड़ होंग’

यस, आगिर कड़े कठी को लनाया न ! इमीलिए कहना पडता है कि असली सुख चानी-मोने में नहा है।

एक मनुष्य एक पैर से लफड़ी व महारे चलता हो और दूसरा स्वतंत्रता के साथ बिना महारे चलता हो तो आपकी निगाह में कौन अच्छा जेंचेगा ?

‘बिना सहारे चलनेवाला’

ठीक है, क्योंकि स्वतंत्रता में जितना सुख है, परतंत्रता में नहीं है। लोग यंत्रियों और मोटरों पर चकर अपने सुख और तेज्य का प्रदर्शन करते हैं पर वास्तव में वह सुख, सुख नहीं है। गाड़ियों परतंत्रता में डालने वाली रेडियों, हैं।

निन लोगों के कारण मानव शक्ति का हान्य होता है, जिनकी वदोतत क्लेशों की वृद्धि होती है, उनके पजे मे मनुष्यों को छुडाना साधु का परम कर्त्तव्य है ।

ससार मे तीन प्रकार के दुःख हैं—(१) आधिभौतिक (२) आधिभैविक और (३) आध्यात्मिक । भूख लगने पर रोटी की इच्छा होना, प्यास लगने पर जल की चाँछा करना और सर्दी-भर्मी से बचने के लिए कपड़े—लत्ते की आकांक्षा होना आधिभौतिक दुःख कहलाता है । आधिभौतिक दुःख को दूर करने के लिए शरीर के भीतर जो हलचल होती है, शोक करना पड़ता है, चिन्ता करनी पड़ती है, वह आध्यात्मिक दुःख कहा गया है ।

दुःख का मूल कारण तृष्णा है । चिडटी से लगा कर चक्रवर्ती पर्यन्त सभी नीचे तृष्णा के पीछे पीछे नौड लगा रहे हैं । रोने की बात यह है कि उस नौड का कहीं अन्त नहीं है, कहीं निराम नहीं है । तृष्णा की मजिल कभी तय नहीं हो पाती । उसका तय होना, सम्भव भी नहीं है, न्यायि लक्ष्य स्थिर नहीं है । पहले निश्चित किये हुए लक्ष्य पर पहुँचने को हुए कि लक्ष्य घटल कर और आगे बढ़ जाता है । इस प्रकार समार में नौड धूप भची रहती है । मनुष्य पहले विवाह करके सुख की आकांक्षा करता है—विवाह कर लेना उसका लक्ष्य होता है । परन्तु विवाह होते ही सन्तान की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है । क्याचित् सन्तान हो गई तब भी तृष्णा का अन्त कहाँ ? यह और आगे घटती है—सन्तान के विवाह की इच्छा पैग करती है । इसके घाट मनुष्य को पौत्र चाहिए, प्रपौत्र चाहिए, और न जाने क्या-क्या चाहिए । इस 'चाहिए' के चगुल में फस कर मनुष्य घेतहाशा भाग-नौड लगा रहा है । कभी किसी क्षण शान्ति नहीं, सतोप नहीं और निरामुलता नहीं । भला इस ढौड-धूप मे सुख कैसे मिल



सम्ता है ? यही ससार की व्याकुलता का कारण है। इसी तृष्णा से दुःख शोक और सताप की उत्पत्ति होती है।

ज्ञानी जन तृष्णा के पीछे नहीं दौड़ता। उन्होंने समझ लिया है कि अगर कोई अपनी परछाई पकड़ सकता है तो तृष्णा की पूर्ति कर सकता है। मगर अपनी परछाई के पीछे कोई कितना ही दौड़े, वह आगे आगे दौड़ती रहगी, पकड़ में नहीं आ सकेगी। इसी प्रकार तृष्णा की पूर्ति के लिए कोई कितना ही उपाय करे मगर वह पूरी नहीं होगी। ज्या-ज्यों परछाई के पीछे दौड़ने का प्रयत्न किया जाता है, त्यों त्यों वह आगे बढ़ती जाती। मगर मनुष्य जब उमर में विमुक्त हो जाता है तब वह लौट कर उसका पीछा करने लगती है। इस प्रकार परछाई के पीछे दौड़ कर अपनी शक्ति का नाश करना व्यर्थ है और तृष्णा को पूर्ति करने के लिए भ्रमीवत उठाना भी बुरा है।

ज्ञानी पुरुष जानते हैं कि मुझे जो सुख प्राप्त है वह भी मेरा नहीं त तो दूसरी 'वस्तु' की आकांक्षा क्यों करूँ ? शास्त्रानुपुठ्य 'अज्ञानियों' की तरह चिन्ता में घुल घुल नहीं मरते। ज्ञानी जानते हैं कि मेरा विवाह हुआ है पर मरी स्त्री मुझ से भिन्न रही है, मैं इस के नष्ट होन पर चिन्ता नहीं करता और प्राप्त होन पर खुशी भी नहीं मनाता। ज्ञान अपने शरीर पर शासन कर सकता है।

यहाँ बैठे हुए कई भाग्यों के बाल सफेद हो गये हैं। वे उन्हें काले नहीं कर सकते। फाला करना उनके हाथ की बात नहीं है। यह वृद्ध शरीर के गुलाम बन हुए हैं। यह अपनी परतत्रता प्रकट करत परन्तु जो अपने शरीर को बश में कर लेता है; वह शरीर से मन चाहा फल कर सकता है। अमरिका की एक ८० वर्ष की वृद्धा यद्दिन के सिर पर एक भी बाल सफेद नहीं है, चेहरे पर झुर्रियों का

नाम नहीं। इसका क्या कारण है? उसका कारण है—आत्मसत्ता। जो ज्ञानी है वह भौतिक माथनों पर आज्ञा चला सकता है। मय काम उसकी आज्ञा के अनुसार ही होंगे। वह चाहे तब तब शरीर को टिका सकता है और चाहे तब शरीर छोड़ सकता है। तात्पर्य यह है कि अकाल-मृत्यु उसके समीप भी नहीं पटक सकती।

एक वृक्ष की छात्र पर एक पत्नी बैठा है। उसी वृक्ष की दूसरी डाल पर यन्त्र बैठा है। अगर वृक्ष की वह डालें या ममूचा वृक्ष उसड़ कर गिरने लगे तो दोनों में से किसे अधिक दुःख होगा।

‘वन्दर, को!’

क्योंकि पत्नी नड़ मरना है। उसे अपने पत्नों का बल है। वह मममता है मैं इस पेड़ पर आनन्द लेने के लिए बैठा हूँ। वह गिरे तो क्या और न गिरे तो क्या? पत्नी को उसके रहन या गिरने की चिन्ता नहीं होनी।

मित्रो! आप ससार के पत्नी बनना चाहते हैं या वन्दर बनना चाहते हैं? अगर आप पत्नी बनना चाहें तो परम में लगा दना चाहता हूँ। आप पक्ष लगा मसार-वृक्ष पर आनन्द लेने बैठेंगे और इसका नाश हो जायगा तो भी आपको कुछ कष्ट न होगा, क्योंकि आप स्वतंत्र बन जायेंगे। जो परम न लगवा कर वन्दर बन कर बैठेंगे उसे समाप्त रूपी वृक्ष के नाश होने पर घोर दुःख भोगना पड़गा।

जो अपने आपको दृष्टा और मसार को नाटक रूप दृश्यता है, मागी शक्तियाँ उसके चरणों की सेवा करने तैयार रहती हैं।

तीमरे प्रकार का दुःख आभिदैविक है। आंधी आना, अति वर्षा होना, अनाप्रति होना अर्थात् बिल्कुल पानी नहीं भरमना, इत्यादि

दुःख आधिभैविक दुःख गिने गये हैं । इन सब के कारण उपस्थित होने पर चिन्ता करना और हर्ष मानना वृथा है । दुःख से बचने का उपाय उदासीन वृत्ति है ।

समार सम्बन्धी लालसाओं को घटाना दुःख है और लालसाओं पर विजय प्राप्त करना सुख है ।

मैं हमेशा आपको दुःख काटने का उपदेश देता हूँ । वास्तव में दुःख कैसे कट सकता है ? आपने दुःख दूर करने के अनेक उपाय किये हैं, अब भी आप दुःखा को निवारण करने के लिए अनेक धधे कर रहे हैं, पर दुःख कन्त नहीं हैं । इससे यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि आपने दुःख काटने का ठीक ठीक उपाय नहीं मममा है । दुःखों क समूल नाश का उपाय शास्त्र बतलाता है ।

लश्या कहिए या चित्त की तरंग कहिए, एक ही घात है । जिन कामों में लश्या शुद्ध घनी रहे वही काम सुख देने बाल हैं । बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह अपन चित्त की तरंगों का—लेश्याओं का—निरीक्षण करता रहे और उनकी शुद्धता पर पूर्ण लक्ष्य रखने । लेश्याओं का स्वरूप समझन क लिये एक उपयोगी दृष्टान्त इस प्रकार है—

छ आदमी जंगल की और खाना हुए । रास्ते में उन्हें भूख लगी । उन्हें पीले-पील फलों से लगा हुआ एक आम का वृक्ष दिखाई दिया । व आम के पास पहुँचे । उनम स एक के पास कुल्हाड़ी थी । उनम कहा—मित्रो ! इस वृक्ष म बहुत म फल हैं । अभी इसे जड़ से काटकर गिराये देता हूँ । फिर आप लोग मन चाहे फल खाना और अपनी भूख मिटाना ।

दूसरा बोला—भाई, तूने जड़ सहित घृक्ष फाटन की घात कही मो मुझे अच्छी नहीं लगी । घृक्ष गिरा देने से कोई लाभ नहीं । मेरी राय तो यह है कि बड़ी बड़ी डालियाँ काट ली जाएँ । गेमा करने से हमें फल भी मिल जाएँगे और पड़ भी बना रहेगा । पेड़ का टूठ बना रहेगा तो उसमें से फिर डालियाँ फूट निकलेंगी । लोगों को छाया भी मिल सकेगी और फल भी मिल जाएँगे ।

भाइयो ! इन दो पुरुषों का चित्तवृत्ति पर विचार करो । दोनों की तुलना में दूसरे मनुष्य का कहना प्रशस्त है । पहले वृष्ण लेख्या की अपेक्षा नील लेख्या प्रशस्त है ।

तीसरा बोला—मित्र ! मुझे तुम्हारा कहना भी नहीं जँचता । क्या घृक्ष क डालियाँ फूटेंगी, क्या पत्ते आएँगे । इममें बहुत समय लगेगा । मोटी डालियाँ में तो फल हैं नहीं । फल टहनियों में लग हुए हैं । बेहतर हो सिर्फ टहनियाँ काट ली जाएँ । इममें घृक्ष की घुरी नशा न होगी और अपना भी काम बन जाएगा ।

चाँये ने कहा—तुम भी मूख नो । टहनियाँ तोड़ कर क्या पत्ते भी आओगे ? पत्ते तोड़ कर घृक्ष की सुन्दरता को नष्ट करने से क्या लाभ है ? इमसे तो छाया भी नहीं रहेगी । जो पत्ते तोड़ता है वह 'अपत' हा जाता है ।

'अपत' क दो अर्थ हैं—एक आवरू या इज्जनत और दूसरा पत्ता । क्या तुम भिसकी छाया में बैठे हो, उमको अपत (नइज्जनत) बनाओगे ? जो दूसरे की आवरू घटाता है उमकी आवरू भी नहीं रहती ।

क्या सठ को अपने मुनीम की, मुनीम को अपने सेठ की, पति को पत्नी की, पत्नी को पति की, गुरु को अपने चेले की, और चेले को

करनी चाहिए जिसमें चित्त में आनन्द रहे। व्यर्थ व्यय को बन्द करके आप दीन-दुरियों की मदद कर सकते हैं, भूखों मरते गरीबों को जीवन-दान दे सकते हैं। पेश और धर्म के उत्कर्ष में योग दे सकते हैं। -

मित्रो! दूमरे की मफायता में गर्च करना, दूमरे के दुःख को अपना दुःख मानना और दूमरे के सुख को अपना सुख समझना, मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य है। ईश्वर से प्रार्थना करो कि आपकी प्रकृति ऐसा बन जाय। आपके हृदय में ऐसी सहृदयता और सदानुभूति उत्पन्न हो जाय।

ऐसी मति हो जाय, दयामय ! ऐसी मति हो जाय ।

श्रीरों के दुःख को दुःख समझूँ, सुख का कर्हूँ उपाय ।

अपने दुःख सहुँ सहर्ष पर-दुःख न देखा जाय ॥दयामय॥

एक व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा, जब तक उसमें दूमरे के दुःख को अपना दुःख मानने की संवेदना जागृत न होगी, तब तक उसके जीवन का विश्वास नष्ट हो सकता है। उसके जीवन का घण्टल ऊँचा नहीं उठ सकता। अवनारा और तीर्थंकरों ने दूसरों के सुख को ही अपना सुख माना था। इसी कारण वे अपना चरम विश्वास करने में समर्थ हुए। जिसे गरीब मनुष्य की भावना में ऐसी विशालता आ जाती है वह राजा को भी डिगा सकता है। पर जो अपने ही सुख को सुख मानता है, वह चाहे राजा ही क्या न हो, शैतान या दुनिया का सत्यानाश करने वाला ही कहा जायगा।

जिमी समय में एक राजा राज्य करता था। उसके पास बहुत से विद्वान् आते रहते थे। वे लोग राजा में जो दुर्गुण देखते उन्हें दूर

करने का उपदेश राजा की दिया करते थे । पर राजा किसी का कुछ मानता नहा था । वह विद्वान् पण्डितों को अपने सुख म विघ्न डालन वाला समझता था । अगर कोई विद्वान् अधिक जोर देकर उपदेश देता तो राजा उसका अपमान करने में भी नहीं चूकता था । इस प्रकार किसी की बात पर कान न देने क कारण राजा क दुर्व्यसन बढ़ते गये ।

एक रोज राजा अपने साथियों क साथ, घोड़े पर,सवार होकर शिकार खेलन के लिए जंगल में गया । वहाँ अपना शिकार हाथ स जात देख उसने शिकार का पीछा किया । राजा बहुत दूर जा पहुँचा । साथी रिछुड़ गये । पर शिकार हाथ न आया ।

मनुष्य भले ही अपना कु-व्यसन न छोड़, मगर प्रकृति उसे चेतावनी जरूर देती रहती है । यही वान यहाँ हुआ । बहुत दूर चल जाने पर राजा रास्ता भूल गया । वह बुरी तरह थक गया । विश्राम के लिए किसी पेड़ के नीचे ठहरा । इतन म जबर्दस्त आँधी उठी और पानी की वर्षा हान लगी । थोड़ी ही देर में बिजली चमकने लगी, मेष घोर गर्जना करके मूमलधार पानी बरसान लगे और आँलों की बौठार होने लगी । राजा बड़ी विपदा म फँस गया । उसने इसी जंगल में न जान कितन निरपराध पशुआ को अपनी गोली का निशाना बनाया था, आज वह स्वय प्रकृति की गोलियों—आँलों—का निशाना बना हुआ था । राजा आँला से बचने क लिए वृन के तने में घुमा जाता था पर वृक्ष आँलो से उमकी रत्ता न कर सता । घोड़ा थका हुआ था ही । आँलों की मार से वह और हाँफ गया और अन्त में उसने भी राजा का साथ छोड़ दिया । अब राजा को एक भी सहायक नजर नहीं आता था । उसके महलों में सैकड़ों दास

विशुद्ध भाव से राजा की सेवा पर रही थी। सरल हृदया किसान पत्नी के हृदय में वही वास्तव्य था जो अपने घेरे के लिए होता है।

और किसान राजा के कपड़े हिला-हिला कर अग्नि के ताप से सुखाने में लग्न हुआ था।

जब राजा अँगड़ाई लेता हुआ उठ गया हुआ तब किसान, कहा—अरे अब तो तू अच्छा दिखाइ देता है। अब तेरा चेहरा भी पहले से अच्छा मालूम होता है। पर यह तो क्या, तू घर से क निकला था ?

राजा—सुप्रह।

किसान—तब तो तुम्हें भूल लगी होगी। अच्छा, (स्त्री की तरफ देगजर) अरी जा, इसके लिए रोटी और दूधरी पालर की तरकारी ले आ।

राजा मोटी रोटी जगली तरकारी के साथ खान बैठा। उसने अपने सुसज्जित म, बड़ी मनधार के साथ अच्छे अच्छे पकवान खाने शुरू किए। पर वहाँ वह पकवान और वहाँ आज की यह मोटी रोटी। उन पकवानों में बड़का माधुर्य था पर उस मोटी रोटी में किसान-दम्पति के हृदय की मजबूत मधुरता। उन पकवानों की भोगने वाला था राजा और इस रोटी की खाने वाला था साधारण मानवी। राजा इस भोजन में जो निस्वार्थ भाव भगा हुआ पाता था, वह उन पकवानों में कहीं।

रात बहुत हो गई थी। किसान दम्पति और उनके बाल-बच्चे सहित राजा उसी मौपडा में फिर सो गया। मगर राजा की नींद नहीं आ रही थी। मन ही मन वह किसान की सेवा पर लट्टू हो रह

या । पहिलों क उपदेश ने उसके हृदय पर जो प्रभाव नहीं डाला था, किसान की सेवा ने वह प्रभाव उसके हृदय पर डाला । एक ही रात में उसका सारा जीवन पलट गया । अब तक वह निरा राजा था, आज किसान ने उसे आदमी भी बना दिया ।

प्रातःकाल राजा ने अपने कपड़े पहने और किसान से जाने की आज्ञा माँगी । किसान को क्या पता था कि जिमरु नाम मात्र से बड़ों-बड़ा का फलेना कौंप उठता है, वह महाराजाधिराज यही हैं । उसकी निगाह में वह साधारण मनुष्य था । किसान ने यही समझते हुये कहा—‘अच्छा भाई, जा । यह कौंपड़ी तेरी ही है । फिर कभी आना ।’

इस आत्मीयता ने राजा के दिल में हलचल मचा दी । वह किमान के पैरों में गिर पडा । किमान को अपना गुरु मान वह वहाँ से चल दिया ।

राजा अपने महल में पहुँचा । राजा ने पहुँचते ही मुसाहबों से मनरा किया । रानियों ने आत्पर मत्फार कर कुशल चेम पूछी । पर राजा को यह सब शिष्टाचार फीका गालूम हुआ । राजा के दिल में किसान की सेवा पगयणता, किसान-पत्नी की सरलता और उन दोनों की सादगी एवं वत्मलता ने घर कर लिया था । वह उसे भूल नहा सका । धार-भाग बढी याद करके वह प्रफुल्लित हो जाता था ।

विद्वानों ने उस बहुतेरे उपदेश दिये थे, पर उनका कुछ भी असर नहीं हुआ था । किसान की सरल और निस्वार्थ सेवा ने राजा पर ऐसा जादू डाला कि उसका सारा जीवन-क्रम ही बदल गया । राज्य में जो नुटियाँ थीं उसने उन्हें दूर कर लिया और अपने तमाम दुर्ब्यसनों को तिलाजलि दे दी ।



होता है। कान पर हाथ फेरने वाला कहता है—हाथी सूप (छाजले) के समान होता है। पेट टंगेलन वाला कहता है—हाथी कोठी के समान होता है और पूछ पकड़ने वाला कहता है—हाथी रस्से के समान होता है।

इन सब का रहना एक-एक अंश में सत्य अंश है, पर अपनी अपनी धुन में जब वे एक दूसरे की धान काटने लगते हैं तब उन सब का कथन असत्य हो जाता है। हाथी का पैर पकड़ने वाले की दृष्टि में सूझ पकड़ने वाले का और सूझ पकड़ने वाले की दृष्टि में पैर पकड़ने वाले का कथन मिथ्या है। इन्हीं प्रकार प्रत्येक अर्धा दूसरे अर्धे को झूठा कहकर परस्पर में विवाद खड़ा करता है। लेकिन हाथी को पूर्ण रूप में दर्शन वाला सूझता आदमी जानता है कि उन्होंने सत्य के एक एक अंश को ही ग्रहण किया है और दूसरे अंशों का अपलाप कर लिया है। कदाचित् उन लोग आपन आपको सत्य समझते हुए दूसरे को भी सच्चा समझें तो उन्हें मिथ्या का शिकार नहीं होना पड़े। उनकी सचाइ, दूसरे की अपेक्षा को समझकर उस सच मानने में है और दूसरे को झूठ कहने से वे स्वयं झूठे या जात हैं। अगर सब अर्धे अपनी अपनी एकदशीय रूपना को एकत्र करके हाथी का स्वरूप समझें तो उन्हें हाथी का सधाङ्ग-सम्पूर्ण आवृत्ति का ज्ञान हो सकता है परन्तु अज्ञान के कारण वे आपस में एक-दूसरे को झूठा कह कर स्वयं झूठ के पात्र बनत हैं।

धर्मों के विषय में भी यही हाल है। सत्य एक है, अस्पष्ट है और व्यापक है। समार के विभिन्न पथ या सम्प्रदाय उस सत्य का प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु ज्ञान की अपूर्णता के कारण अस्पष्ट सत्य को न पाकर सत्य का एक अंश ही उन्हें उपलब्ध होता है। सत्य के एक अंश को ही सम्पूर्ण सत्य मान लेने, स धार्मिक

विवाद बढा हो जाता है। उदाहरण के लिए वस्तु की नित्यता और अनित्यता को लीजिए। वस्तु द्रव्य-रूप से नित्य है और पर्याय रूप से अनित्य है अर्थात् मूल वस्तु की अवस्थाओं में निरंतर परिवर्तन होता रहता है, परन्तु वह मूल वस्तु तमाम अवस्थाओं में ज्यों का त्यों बनी रहती है। मूल द्रव्य का कभी विनाश नहीं होता और पर्यायें बदले बिना नहीं रहती। इस प्रकार विश्व की प्रत्येक वस्तु द्रव्य की दृष्टि से नित्य है और पर्याय की दृष्टि से अनित्य है। परन्तु एक धर्म के अनुयायी वस्तु को एकान्त नित्य मानते हैं और दूसरे धर्म वाले उसे एकान्त अनित्य मानते हैं। दोनों मत्य के दो अशा में से एक-एक अश को छोड़ दत्त हैं और एक-एक अश को अगोकार करत हैं। अब यदि अनित्यवादी, नित्यवादी से कहे कि भाई, तुम्हारा कथन सत्य है मगर मेरे कथन को भी सत्य समझो। सभी प्रकार नित्यवादी अपने कथन की सत्यता के साथ अनित्यवादी के कथन को भी सत्य मान लें तो सत्य के दोनों अश मिलन से पूरा सत्य की प्रतिष्ठा हो जायगी। इससे विपरीत अगर ये एक-दूसरे को मिथ्या मानेंगे तो दोनों ही मिथ्या हो जाएंगे।

इस प्रकार विभिन्न धर्मों में सत्य का जो अश विद्यमान है उस ठीक तरह न समझने के कारण और अपूर्ण सत्य को पूर्ण सत्य के रूप में प्रकट करने के कारण परस्पर भगड़ होत हैं। सभी धर्म वाले अपनी अपनी धुन में मग्न हैं। वे एक दूसरे को भूठा ठहराते हैं, इसी कारण वे स्वयं भूटे ठहरते हैं। सब एकट्टे होकर, न्याय बुद्धि से, पक्षपान छोड़कर धर्म का निष्पक्ष कर्म तो सम्पूर्ण धर्म का सच्चा स्वरूप मालूम हो सकता है।

धर्म के विभिन्न रूप जनता के सामने रहने में जनता की श्रद्धा उगमगान लगती है और धर्म के प्रति अश्रद्धा पैदा होन लगती है।

तात्पर्य यह है कि एक ही मनुष्य भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से पितापन, पुत्रपन, मामापन, आदि अनेक गुण रहते हैं। ऐसी स्थिति में जो मनुष्य एक ही गुणों को लेकर जिद करने बैठ जाता है, वह दूसरों गुणों की अपेक्षा से झूठा पड़ जाता है। जो मनुष्य अपने आपको एकान्त रूप से पिता ही मममत्ता है वह अपने पिता की अपेक्षा भी पिता हो जायगा और जो एकान्त पुत्र बनता है वह अपने पुत्र का भी पुत्र कहलाने लगेगा। इस प्रकार एकान्त दृष्टि मिथ्या होती है।

एक उदाहरण और लीजिए। आप लोग मेरे सामने बैठे हुए हैं। मेरी अपेक्षा आप पूर्व दिशा में बैठे हैं और आपकी अपेक्षा मैं पश्चिम की तरफ बैठा हूँ। मगर जो मज्जन भरे पीछे बैठे हैं उनकी अपेक्षा में पूर्व में और आपसे पीछे बैठे हुए सज्जनों की अपेक्षा आप पश्चिम में बैठे हुए हैं। ऐसी स्थिति में आप से पूछा जाय कि आप किस दिशा में बैठे हैं ? तो आपका उत्तर अपेक्षा का ध्यान रख होना चाहिए। आप कहेंगे—'किमी अपेक्षा से हम पूर्व में बैठे हैं, किसी अपेक्षा से पश्चिम में बैठे हैं।' अगर आपने अपेक्षा का ध्यान रख कर उत्तर दिया तो आपका उत्तर सच्चा होगा। अगर आप हठ पकड़ कर बैठ जाएँगे और कहेंगे कि हम तो पूर्व में ही बैठे हैं तो तो आप का कथन मिथ्या हो जायगा। इस प्रकार मापेक्ष दृष्टि सत्य होती है और निरपेक्ष दृष्टि मिथ्या होती है। अपेक्षा का ध्यान रख कर कथन करना ही स्याद्वाद है।

स्याद्वाद सिद्धान्त में जीव अजीव, आस्रव, सवर सत्य, असत्य आदि सभी का वर्णन इसी प्रकार किया गया है। किसी भी वस्तु का सत्ता स्वरूप स्याद्वाद के बिना नहीं समझा जा सकता।

एक आत्मी कहता है—मैं ब्राह्मण हूँ, वह शूद्र है। पर क्या यह बात एकान्त सिद्ध है ?

‘नहीं।’

इसलिए कि मनुष्य के ऊपर न तो ब्राह्मणत्व की कोई छाप लगी है और शूद्रत्व की ही। जिस प्रकार ब्राह्मण अपने अग प्रत्यग स व्यावहारिक काम करता है उसी प्रकार शूद्र भी काम करता है। फिर दोनों में अन्तर क्या है ? दोनों में अगर कोई अन्तर हो सकता है तो यही कि ब्राह्मण में ब्राह्मण सम्बन्धी पठन-पाठन आदि लक्षण विद्यमान हैं और शूद्र में सेवा करना आदि शूद्र के लक्षण होते हैं। मगर कई एक ब्राह्मण सेवाधर्म अङ्गीकार किये हुए हैं और सेवा करना शूद्र का धर्म है। जब कोई ब्राह्मण, शूद्र का काम अपनाता है तो क्या वह कर्म की अपेक्षा से शूद्र नहीं कहलाएगा ? उसी प्रकार ब्राह्मणज्ञान आदि कोई ब्राह्मणोचित गुण किसी शूद्र में विद्यमान हो तो क्या वह उस अपेक्षा से ब्राह्मण नहीं कहलाएगा ?

अपेक्षा से ब्राह्मण और अपेक्षा से शूद्र की रूपांतरिता जाती है। इसके उदाहरण महाभारत में भी मिलते हैं। कौन मनुष्य किस जाति में गिना जाना जाहिए, इसका आधार गुण कर्म पर था। प्राचीन काल में आनकल का तरह सतीयता नहीं थी। गुण कर्म के अनुसार ही वर्णव्यवस्था की गई थी। उस समय न तो ब्राह्मणत्व का ठेका किसी के पास था और न शूद्रत्व का ही। जो ब्राह्मणोचित कर्म करता है वह ब्राह्मण कहलाता था और जो शूद्र-कर्म करता था वह शूद्र कहलाता था। गीता में स्पष्ट कहा है—

ईरान के बादशाह ने अपनी मना भेजकर बाघर की मदद की । बाघर फिर भारत पर चढ़ आया और उसने अपनी विजय का झंडा यहाँ फहरा दिया ।

तात्पर्य यह है कि गधे पर हाथी का बोझ लादना मूर्खता है ।

न हि वारणपर्याणं मोर्धुं शक्नो वनायुज ।

अर्थात् हाथी का पलान गधा नहीं सहार सकता ।

जैसे हाथी का बोझ गधे पर लादना मूर्खता है उसी प्रकार गधे का काम हाथी से लाना भी बेवकूफी है । जो काम जिसके योग्य हो वही काम उस को सौंपना चाहिए । 'योग्य योग्येन योजयेत् ।' चातुर्वर्ण्य की स्थापना में यही भावना थी । इसमें बाप, बेटे का और भैया बाप का लिहान नहीं करता था । आज वर्णव्यवस्था की गड़बड़ के कारण भारतवर्ष का बड़ी हानि हो रही है ।

चातुर्वर्ण्य समाज का विघाट रूप है । इसमें क्षमा और विवेक मागर ब्राह्मण मस्तक माने गये हैं । पराक्रमी वीर क्षत्रिय जाहु माने गये हैं । उदार दानी धैर्य पट मान गये हैं और सदा भक्ति करन वाले शूद्र पैर मान गये हैं ।

मित्रो ! शरीर में प्रत्येक अङ्ग अपने उचित स्थान पर ही शोभा पाता है । पैर का जगह पैर की शोभा है और मस्तक की 'जगह मस्तक की । अगर पैर हाथ बन जाय और हाथ पैर बन जाय अर्थात् पैरों का काम हाथों में और हाथों का काम पैरों में लिया जाय, इसी प्रकार मस्तक का काम मुनाआ स और मुनाआ का काम मस्तक से लिया जाय तो काम चल सकता है ? नहीं । अपने अपने

स्थान पर ही सब की शोभा है । फिर भी मनु अङ्गों के काम का ध्यान रखना चाहिए । मस्तक विचार का स्थान है । अगर वह अपना काम छाड़ दे तो शरीर निवृत्त बन जाता है । अगर हाथ यह कहें, कि मैं पट के लिये अन्न क्यों दूँ, तो नतीजा क्या होगा ? पट के साथ साथ हाथ की कमबस्ती आ जाएगी । इस प्रकार आप विचार कीजिए ता विदित होगा कि एक को दूसरे की अनिवार्य आवश्यकता है, अतएव सभी को सब का ध्यान रखना चाहिए । अगर आप पैर की परवाह नहीं करेंगे तो पगु कौन बनेगा ? आप स्वयं ही या और कोई ?

जो प्रातः शरीर के विषय में है वही समान के विषय में समझनी चाहिए । ब्राह्मण की जगह ब्राह्मण, क्षत्रिय की जगह क्षत्रिय, वैश्य की जगह वैश्य और शूद्र की जगह शूद्र रहें, यही उचित एवं शान्तिपूर्ण है ।

ब्राह्मणों का काम ममान को ज्ञान देना, क्षत्रियों का काम रक्षा करना, वैश्यों का काम धनसंग्रह करना और शूद्रों का काम सेवा बनाना था । पर आज उल्टी गद्दा बह रही है । आज बहुत-से ब्राह्मण शूद्रों का काम करते हैं । आज 'पीर बबर्ची भिरती खर' की कहावत चिरन्तन हो रही है । मठनी के घर पानी भरने वाला ब्राह्मण, गमोड़ बनाना वाला ब्राह्मण, और कहीं तक कहा जाय सब काम करने वाला ब्राह्मण ! हाय ! यह कैसी विपरीत दशा है !

प्राचीन काल के ब्राह्मण ब्रह्मचर्य पालने वाले, लोभ लालच को लात मार कर सन्तोषमय जीवन व्यतीत करने वाले और ससार को सद्बुद्धि का उपदेश देने वाले थे । इसलिए वे ससार के गुरु और पूजनीय माने जाते थे ।

इसी प्रकार पहले के क्षत्रिय रक्षा करते थे। देश की रक्षा के लिये प्राण नर्क निश्चय करके नही हिचकते थे। गरीबों की रक्षा करना अर्पना परम धर्म समझते थे तथा परनारी को मार्ताण्ड समाप्त पूजना—आगन्ध्य देवी समझना—अर्पना कर्त्तव्य समझते थे। पर वह मन्त्र तंत्र होता था जब क्षत्रिय इन्द्रिय दमन करके बाले, अपने धाय की रक्षा करने बाले हात थे। जो क्षत्रिय स्त्रियाँ का गुलाम बन जाता है, जो विषय भोग में मस्त रहता है वह कभी देश का रक्षा नहीं कर सकता। प्राचीन समय में क्षत्रिय-नारियाँ भी धीर हुआ करती थीं। वे विषय की गुलाम नही थीं। किसी अवसर पर अपने पति को पथ विचलित होत देख कर प्रत्येक उचित उपाय से उसे रास्त पर लाती थीं। इसके लिए उन्होंने अपने प्राणा का भी बलिदान किया है।

मैं एक पुस्तक में वनरान चावडा की कथा पढ़ी थी। वह गुजरात में बड़ा वीर हो गया है। उस दिन उसकी शूरवीरता की धाक थी। उसका शौर्य की यशोगाथा सर्वत्र सुन पड़ती थी। मारवाड़ के राजाओं पर वनरान चावडा की गहरी छाप थी। एक एक धार मारवाड़ वालों ने सोचा—‘हमारे मारवाड़ में भी एक वनरान चावडा होना चाहिए। उन्होंने मिल कर यह फैसला किया कि वनरान चावडा पैदा करने के लिए वनरान चावडा के ‘पिता’ की आराधना होगी। जब वे यहाँ आये तो किसी वीर क्षत्रियाणी के साथ उसका ‘या’ करने परान चावडा पैदा कर लिया जाय। फैसला तो हो गया, पर उह मारवाड़ में किस प्रकार लाया जाय यह समस्या खड़ी हुई। एक भाट ने कहा—‘आज्ञा हो, तो वनरान के पिता को मैं मारवाड़ में ले आऊँ।’

भाट की बात सभी ने स्वीकार की। भाट चला और वनराज क पिता के पास पहुँचा। वनराज के पिता कविता से बहुत शौकीन थे। भाट ने उन्हें बार रस का प्रवाह बहा देने वाली सुन्दर भाव-पूर्ण कविताएँ सुनाई। उन्होंने प्रसन्न होकर यद्यत् माँग लेने की आज्ञा दे दी। भाट ने हाथ जोड़ कर कहा—‘महाराज ! मैं आप ही को चाहता हूँ।’

राजा—मुझे ?

भाट—जी हाँ, अन्नदाता !

राजा उसी समसम मिहासन से उतर पडा। लोगों ने बहुतरा समझाया, पर वह न माना। सदा त्रिय वीर अपन वचन के प्राण देना मिलवाड समझते थे। व आप लोगों की तरह कह कर और हेमांतर करके मुकर जाने वाले नहीं थे। अत में वनराज का पिता और भाट घोड़ों पर सवार होकर चल गये। मार्ग में एक जगल आया। वहाँ एकान्त देख कर वनराज क पिता ने पूछा—‘भाई, मैं चल रहा हूँ मगर मुझे लेजा कर करोगे क्या ? अगर कोई आपत्ति न हो तो यताओ।’

भाट ने कहा—अन्नदाता ! मारवाड में एक वनराज की आवश्यकता है। आप वनराज के जनक हैं। आप ही इस आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से आपको यद्यत् दे रहा हूँ।

राजा—बात तो तुम्हारी ठीक है, पर अकेला मैं क्या करूँगा ? वनराज पैदा करने के लिए वनराज की माँ माँ तो चाहिए।

भाट—महाराज, वहाँ किसी वीर क्षत्रियाणी से आपका विवाह कर देंगे।



राजा—मगर वनराज पैदा करने के लिए ऐसी-वैसी माता से काम नहीं चलेगा। उसके लिए वैसी माता चाहिए, जो मैं बताता हूँ। यह वनराज की माता की कहानी है। एक बार मैं रानी के महल में गया। उस समय वनराज एक छ महीने का बच्चा था। मैं रानी के साथ कुछ विनोद करने लगा। रानी ने मना करत कहा—आप इस समय ऐसा न कीजिए। मैं पर पुरुषों के सामने अपनी आवश्यक खराब नहीं कराना चाहती।

मैंने रानी से पूछा—यहाँ मरे सिखाय और कौन पुरुष है ?

रानी ने पालने की ओर इशारा करके कहा—यह सो रहा है न ?

मैंने कहा—‘बाहरी सती ! एक छ महीने के बच्चे का इतना खयाल करती है ?’ और मैंने उसके कंधों के ऊपर अपने हाथ रख दिये।

वनराज ने उसी समय अपना मुँह फेर लिया। रानी ने कहा—देखा आपने ? आप जिसे अशोध बालक समझते हैं, उमने मुँह फेर लिया। हाय ! पुरुष के आगे मरी इज्जत चली गई ! आपन उस पुरुष नहीं, मांस का पिंड समझा और मुझे बचावरू कर दिया !

दूसरे दिन वनराज की माता ने विष पान करके प्राण त्याग दिये।

तुम्हारे यहाँ मारवाड़ में ऐसी कोई वीरादना मिल सकती ?

भाट ने कहा—यह तो मुश्किल है महाराज !

राजा—तो बतलाओ, वनराज कैसे पैदा होगा ?

अन्न म निराशा के साथ माट १ महाराज को वापस लौट जाने की प्रार्थना की । वनराज के पिता गुजरात लौट गये ।

मित्रो ! हम कथा का आशय यह है कि वीर क्षत्रियाणियों म ही वीर क्षत्रिय पुत्र पैदा हो सकते हैं और उन्हीं पर ममार का उद्धार निर्भर है । ससार का उद्धार करने वाले महान पुण्य क्षत्रिय वरा म पैदा हुए थे । ममस्त तीर्थंकर और राम, कृष्ण आदि अवतार मान जाने वाले महात्मा भी इसी वश में उत्पन्न हुए थे । वीर क्षत्रिय फौलाद का बना हृथा पुतला है । उसे अपने मकल्प म ढिगाने का क्रिमी म क्षमता नहीं है । हम हरे मकल्य पुरुष ही मसार म बद्ध कर गुजरते हैं । कष्ट महिष्णुता जैसी क्षत्रियों म होनी है, पैसा और किमा में नहीं ।

अषाढरथ के लिए कर्ण को लीजिए । कण धाम्निव में कुन्ती का पुत्र था किन्तु मयोगवश वह नामरथी का पुत्र कहलाया । वीर पाण्डव और कण द्रोणाचार्य स शस्त्र विद्या सीखत थे । द्रोणाचार्य पाण्डवों को मन लगा कर म्मिगाते, पर कण को नहीं । कर्ण को यह जान बहुत घुरी लगी । आगिर कण से न रना गया और उमन आचार्य से इस पक्षपात का कारण पूछा । द्रोणाचार्य ने कहा—'हसा का भोजन कौबों का नहीं दिया जाता ।

कर्ण तेजस्वी पुरुष था । उसने यह उत्तर सुना तो उसके मोघ का ठिकाना न रहा । वह अपना अपमान न सह सकने क कारण यहाँ से चल गिया । उसन मन ही मन प्रतिज्ञा की—'देखें, शस्त्र विद्या में अर्जुन बढ़कर निजलता है या मैं ?'

कौपत्नी थी। भारत उनपर अभिमान करना था। प्रजा उन्हें अपना रक्षक मानती थी और यड़े-यड़े घोर उनक आदेश की प्रताप करते थे।

जिनके पृथक् न अपन देश की रक्षा की, व आन अपन प्राणों की रक्षा के लिए दूसरा का मुँह ताकत हैं। जिनके पूर्वज अपनी नावन भगिनी ललवार के बल पर निर्भय मित्र का भौति विचरने थे वे आज अपना अनिया के लिए दुनिया में अपना नाम ले रहे हैं। जिनके पूज्य आचार्य और अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए हँसते हँसते मिर बटवा देते थे, व आन अपनी निन्द्या गुजारने के लिए आचार्य और अत्याचार के आग मार्था टेकने में लज्जित नहीं होते। जिनके पूज्य किसी समय देश के आधार थे, वही आन अगर भार बन रहे हों ता जिन परित्याप का शान है।

मित्रो ! अथ को ही अपन जीवत की तुद्र सीमा मत बनाओ। अर्थ के घर में शान निकलो आरम्भ, तुम्हारा इतिहास कितना उज्ज्वल है, कितना तनस्वा है कितना वीरता-पूण है। इतिहास तुम्हारे पूर्वजों की वशागाथाओं में भरा पडा है। अमका प्रत्यक १४ उनके वदाम शौर्य का माना है। तुम साधारण पुरुष नहीं हो। तुम्हारी रंग रंग में क्षत्रिय स्मिर चक्र काट रहा है। तुम में कोई गठार, कोई सीमोदिया और कोई चौकान है। कायगता की मनोवृत्ति त्यागो। अपनी शक्ति को समझो। निर्भय बनो।

तुम अम परम पुरुष के समार हो जिसके 'महावीर' नाम में ही शूरवीरता भरा हुआ है और प्रसिद्ध पराक्रम का प्रतीक 'सिंह' जिनका निशान था। तुम उम 'जैन-धर्म' के आराधक हो जिसके नाम में हा विनय का-नीत का-सदेश सुनाइ दे रहा है। जिसका आराध्य

मिह स अङ्कित महावीर-है, जिमका धर्म विजयिनी शक्ति का स्रोत है, उम कायरता शोभा नहीं देती । उसे वीर होना चाहिए ।

सयम धारण करक काम, क्रोध आदि आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना भी वीरता का ही कार्य है, परन्तु ममय का विचार अवश्य कर लेना चाहिए । जिस समय सामाजिक जिम्मेवारी आ पड़े उसी समय वैराग्य उत्पन्न हो तो समझना चाहिए कि यह स्रोटा वैराग्य है । जिस समय महाभारत युद्ध की तैयारी हो रही थी उम समय अर्जुन को वैराग्य चढा । तत्र कृष्ण ने अर्जुन को फटकारा—

कृतस्त्वा करमद्वमिद् विषये समुपस्थितम् ।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमजुन ! ॥

ऐ अर्जुन ! ऐमे विषय समय में नीच पुरुषों द्वारा अभिनन्दित, स्वर्ग प्राप्ति को रोकने वाला और अपकीर्ति फैलाने वाला यह अज्ञान तुम्हें कहाँ से आगया ? इम समय का वैराग्य नरक में डालने वाला है ।

भाइयो ! इस प्रकार की क्षत्रियों को शोभा देने वाली वीरता पैग करने के लिए आत्मा में पवित्रता होनी चाहिए जिस क्षत्रिय क हृदय में दुर्बलियों न अड्डा बना लिया हो उममें ऐमी वीरता नहीं आ सकती, वह महाकायर होता है । जो स्वय विषया का दास है वह ससार पर शामन कैसे करेगा ?

जिसमें किसी प्रकार का व्यसन लगा हुआ है वह स्त्री-लपट हुए बिना नहीं रह सकता । जो स्त्री-लपट होगा वह अपने वीर्य की रक्षा नहीं कर सकता और जो वीर्यहीन होगा उसमें बल कहाँ ? बल के बिना मसार में वह अपना प्रभाव कैसे जमा सकता है ?

भगवान् ऋषभदेव ने वीर्य की रक्षा की थी, तभी तो वे ममार के पूजनीय हुए। आज न केवल जैन बल्कि वैष्णव लोग भी उनको अपना देव मानते और पूजते हैं। ममार वीरशालियों की पूजा करता है। आप अपने पूजार्थ क समान वीरशाली बनो और अपने धर्म को सम्भालो।

यही धान मुझ वैश्य भाइयों से ऊँचो है। वैश्य देश के 'पेट' के समान हैं। पेट आहार को स्नान अवश्य देता है परन्तु उस आहार का उपभोग समस्त शरीर करता है। वह सिर्फ अपने ही लिए आहार जमा नहीं करता। वैश्य देश की आर्थिक दशा का क्षेत्र है। देश की आर्थिक स्थिति को सुधारना उमका कर्तव्य है। वैश्यों को आनन्द आशक का आर्श अपने सामने रखना चाहिए और स्वाधमय वृत्ति का त्याग कर जन-कल्याण की भावना को हृदय में स्थान देना चाहिए।

शूद्रों की दशा आपन बदतर बना दी है। इसी कारण देश आज पशु बन गया है। अगर आप अपनी और अपने देश की सर्वाङ्गीण समुन्नति चाहते हैं तो उ ह ऊँचा उठाइय। उन सवकों की प्रेम की दृष्टि म देखिए। उ ह अपने मनुष्यत्व का मान होन दीजिए। उ हें समर्थ बनाय।

इस प्रकार जैसे वर्ण व्यवस्था गुण-धर्म की अपेक्षा म है, उसी प्रकार ममार की समस्त उगुणें अपेक्षा पर ही स्थित हैं। इस मापेक्षवाद को अनेकान्तवाद या स्याद्वाद कहते हैं।

धार्मिक कलह आर क्लेश का मूल अज्ञान्तवाद है। जहाँ एक धर्म के अनुयायी न दूसर धर्म क दृष्टि ऋण का समझन का प्रयत्न न किया और उममें रहन वालो आशिक मचाई को अस्वीकार किया कि कलह का आरम्भ हो जाता है। इस कलह का अन्त करने का

अमोघ उपाय स्याद्वाद् है । दाशानिज जगत् म शान्ति स्थापना का मने अन्धा और कारगर उपाय दूसरा नहीं है । अतएव स्याद्वाद् का अपनाथा । उस अपने जीवन का मूलमत्र बनाओ । कदाग्रह को त्याग कर उदार मात्र से वीतराग द्वारा प्ररूपित मंगल मार्ग का अनुसरण करो । इसी में आपका कल्याण है इसी में देश का कल्याण है और यही विश्व कल्याण का राजमार्ग है ।

भानामर }  
८-६-२७ }





## विवेक



मकान की मजदूरी के लिए नींव की मजदूरी आवश्यक है। जिस मकान की नींव मजदूर नहीं होगी वह टिकाऊ नहीं होती। पहले नींव डाली जाती है फिर उसके ऊपर मकान चुना जाता है। धर्म रूपा महल को टिकाऊ बनाने के लिए भी नींव का जगरत है—वह नींव है अधिकाारी का निर्णय। वास्तविक अधिकाारी के बिना धर्म वास्तविक लाभ नहीं पहुँचाता। मकान कितना हा सुन्दर क्यों न हो, नींव के बिना उसके सिमी भी जग बह जाने की सम्भावना रहती है।

धर्म का अधिकाारी कौन है ? यों तो जीव मात्र धर्म के अधिकाारी हैं, पर किम प्रकृति बाल का कैसे धर्म की शिक्षा लेनी चाहिए, इस बात का चतुर उपदेशक को अवश्य निर्णय कर लेना चाहिए।

संसार—यत्रहार से योग्यता की परीक्षा की जाती है। जिम मनुष्य की वैसी योग्यता है वैसा ही काम उसे सौंपा जाता है। इससे

न तो काम विगडता है और न उस मनुष्य की अमफलता होती है । तो जिसके योग्य नहीं है उसे वह कार्य सौंपा जाय तो काम सिद्ध नहीं होगा और वह मनुष्य कोई भीन से चला जाता है । अयोग्य काम में उस सफलता नहीं मिलती और योग्य काम उसे सौंपा नहीं गया । इस तरह वह न उधर का रहता है, न उधर का रहता है । यका कारण है कि लोक व्यवहार में प्रायः वही काम उसे सौंपा जाता है जिसके योग्य वह होता है । अब व्यवहार में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है तब धर्म में कमी नहीं रखा जाना चाहिए ?

आज हर एक सम्प्रदाय वाला अपना—अपना मत बताने की चेष्टा करता है पर इस बात का विचार नहीं किया जाना कि कौन किस धर्म के पानने में समर्थ है और कौन नहीं ?

धर्म के अधिनारी या शास्त्र में नाम है—मागानुसारी । जैसे विदेशयात्रा पर जाने से पहले मध्य प्रकार की तैयारी की जाती है, इसी प्रकार मोक्ष पथ पर चलने के लिए मार्गानुसारी पहले बनना चाहिए ।

मागानुसारी के वक्तव्यों का शास्त्र में विस्तृत वर्णन है । किन्तु यहाँ मत्सेप में ही आप लोगों को कुछ बातें समझाना चाहता हूँ । सर्वप्रथम मागानुसारी में प्रियत्न की आवश्यकता है । प्रत्यक्षरण की मानसिक शक्ति को प्रियत्न कहते हैं । जैसे कुशल स्वर्णकार सोने में मिले हुए अन्य पदार्थों को अलग और सोने को अलग कर देता है, उसी प्रकार धमाधिकारी को हर एक वस्तु का प्रत्यक्षरण करना चाहिए । प्रत्यक्षरण करने से पता लग जायगा कि कौन-सी वस्तु प्रियत्न और कौन-सी अप्रियत्न है ? मान लीजिए आपने नित्यानित्य के



विषय में प्रयत्न करना चाहा तो आप को प्रित्तित हा जायगा कि समार में जो अगणित पदार्थराशि विद्यमान हैं मम नाशवान कौन सा और अत्रिन्श्वर कौन सी है ? अत्रिन्श्वर क साथ मन्ध रचना उस पर विश्वास रचना सुयत्ता है और नाशवान से नाता जोड़ना दु सगर्ह है । कहा है—

अथ लगी आत्म-तस्व चिन्त्यो नहीं त्यां लगी साधना सर्व भूठी ।

जय तक जड-चेतन का विवेक नहीं होता तब तक फोड फाय सिद्ध नहीं हो सकता । जड-चेतन का विवेक हो जाना 'मम्यगृहि है । भगवती सूत्र में कहा है—

'निस मनुष्य को जड-चेतन का ज्ञान नहीं हुआ, फिर भी कहता है कि मैं त्यागी हूँ मममना चाहिए उमना खयाल गलत है । विवेक के बिना सब क्रियाएँ निष्फल-सी हैं । भौरि के द्वारा लकडा पर 'क' अक्षर खु भी गया तो उमे उससे क्या लाभ है ? अगर कुछ लाभ है तो 'क' अक्षर जानने वाले को । भौरि क लिए तो वह व्यर्थ ही है ।'

विवेक के प्रिना की गई क्रिया कगचित् अन्दी वन जाय ता भी उसे अज्ञानी ही ममभना चाहिए ।

मागानुमारी म विवेक क साथ वैराग्य की मात्रा भी होनी चाहिए । यह लोक क पनार्था स—स्त्री, पुत्र, धन, मकान तथा स्वर्ग के सुखों की लालसा से चित्त को हटा लेना वैराग्य कहलाता है ।

कुछ भाइयों का खयाल है कि वैराग्य साधु को ही हो सगता है । हम गृहस्थ लोग वैरागी कैसे हो सगते हैं ? पर वास्तव में यात

पत्नी नहीं है। प्रत्येक प्राणी वैरागी बन सकता है। वैरागी का अर्थ वस्तुओं का परित्याग कर देना ही नहीं है। मान लीजिए किसी साधु ने सामारिक वस्तुओं का त्याग नहीं किया, परन्तु अन्तःकरण में उन वस्तुओं का प्रतिशब्द भाव लालसा नहीं हुई है जो कि उस वैरागी कहना चाहिए? नहीं, उसने विपरीत चाहे स्त्री पास रहे, धन रहे, पुत्र रहे फिर भी अन्तर में तल्लीनता नहीं है तो वह वैराग्य है। कमल जल में रहता है फिर भी जल से अलिप्त रहता है। पत्नी ज्ञान जब ध्यान अर्थात् नश्वर-अनश्वर का विभक्त होने पर उदित होता है।

विमने शरीर को नाशवान् और आत्मा को अविनाशी समझ लिया, क्या शरीर के नाश होने पर उस दुःख हो सकता है? आत्म तत्त्व का परिज्ञान हो जाने पर शरीर के टुकड़े टुकड़े हो जाएँ तो भी दुःख का स्पर्श नहीं होता।

शरीर नाशवान् है, इसलिए विवेकी उसकी रक्षा करता है। जो वस्तु नाशवान् समझी जाती है उसीकी रक्षा की जाती है। अविनाशी वस्तु की रक्षा की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह स्वयं रक्षित है। आग लगने पर घास के भाँपड़े का रक्षा करने की फिर होती है न कि पत्थर के मकान की।

कामदेव बड़ा श्रावण था। उसके पास अठारह करोड़ गीतार और माठ हजार गौएँ थीं। इन्हींमें उसके वैभव का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु क्या वह देवता की तलवार में भयभीत हुआ था? शरीर के टुकड़े टुकड़े करने पर भी उसे चिन्ता हुई थी?

मित्रो! आप ने वैभव में उसका वैभव अधिक ही था फिर भी जब उसे मृत्यु का भय नहीं था तब फिर आप मौत के नाम से क्यों

डरते हैं ? इस अन्तर का कारण यही है कि वह शरीर को नाशमान मानता था और भोगविलासों में विरक्त था। पर आप इसमें जग समझे हुए हैं।

यान् रसिण, शुद्ध विषय के बिना आप क्या-क्या-मार्ग पर आगे नहा सकते हैं। विषय कल्याण प्राप्ति की पहला शर्त है।

आपन पत्नी का पाणिप्रहरण धर्म पालन के लिए किया है। इस प्रकार स्त्री न भी आपका। जा नर या नारी इस अर्थ को भूल कर गान पान और भाग विलास में हा आपन कर्तव्य की इतिहास समझते हैं वे धर्म के पति पत्नी नहीं बरन पाप के पति पत्नी हैं।

आन ऐस शर्मक नाह बहुत कम नरन आन हैं। आन बल ना यह अशा है कि जो ज्याना गहने पहनाता है रहा अन्धा पति माना जाता है। विपत्ति आन पर जो पति, अपनी पत्नी में गहने मांग लता है, उसे उमरा पत्नी राक्षस-मा समझते लगती है। इसका अर्थ यही न निकला कि पति, पति नहीं विन्तु नवर पति है ?

मैं जेव गहम्य-अररया में था, तब का बात है। मेरे गाँव में एक बूढ़े ने विवाह करना चाहा। एक विधवा याइ का एक लडकी थी। बूढ़े न बूढ़ा के नामने विवाह का प्रस्ताव स्वीकृत किया मगर उसने और उसका लज्जा दोनों ने उसे अस्वीकार कर दिया। कुछ दिनों बाद उस बूढ़े का गिरतार हो गया उस याइ के पास आया और उस बूढ़ा-मा जेवर गिरलान कहा—तुम्हारा लडकी का विवाह कर माथ हा जायगा ना जेवना जेवर पहनने को मिलेगा। लालच में आकर विधवा ने अपनी लडकी का विवाह उस बूढ़े के साथ कर दिया।

मेवाड की भी एक जमीनी ही घटना है। एक धनी वृद्ध के साथ एक कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ। समान-सुधारका ने लड़की की माता को ऐसा न करने के लिए समझाया। लड़की की माता ने कहा पति मर जायगा तो क्या हुआ, मेरी लड़का गहने तो खूब पहनेगी।

मित्रो ! आप ही बतलाएँ, एक दोनों विवाह किसके साथ हुए ?

‘धन के साथ !’

‘पति के साथ तो नहीं ?’

‘नहीं !’

धन ही इन कन्याओं का पति बना !

भाइयो ! आपको मेरा कहना शायद अप्रिय लगेगा पर समान का कथनीय और भयानक तथा दम कर मरे इन्ध में आग धधक रही है। इसलिए कह देता हूँ कि समान का मत्यानाश करने वाली रतिया को आप तुरत त्याग दीजिए। आप अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए विधवा बहिनों को सोना पहनाना अपना कर्तव्य समझते हैं, पर यह बहुत बुरी चाल है। यह चाल विधवा धर्म से विरुद्ध है। मानव की प्रतिष्ठा फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उसके मद्गुणों पर अवलम्बित रहनी चाहिए। वही वास्तविक प्रतिष्ठा है। धन से प्रतिष्ठा का सिद्धावा करना मानव मद्गुणों के प्रियालियेपन की घोषणा करने के समान है। आप कहते हैं—बिना आभूषणों के विधवा अन्दा नहीं लगती, इसलिए आभूषण पहनाते हैं। मैं समझता हूँ, जन्मा सोचने में विलासमय वृत्ति से काम लिया जाता है। विधवा

बहिन के मुग्न मण्डल पर जब ब्रह्मचर्य का तेज प्रिरानमान होगा तो उसके सामने आभूषणों की आभा र्फकी पड़ जाणगी। चेहरे की मौन्यता यत्नान् उसर प्रति आर का भाव उत्पन्न किये प्रिना न रहेगी। उसके तप, त्याग और सयम से उसके प्रति अमीम श्रद्धा का मात्र प्रकट होगा। इनमें क्या प्रतिष्ठा नहीं है? सच समझो तो यही उत्तम गुण उनका मधी प्रतिष्ठा के कारण होंगे। ऐसी अरस्था म कृत्रिम प्रतिष्ठा के लिए न्मे वैधव्य धम के प्रिद्व आवश्यकता नहीं रहेगी। इसलिए अन्दी न लगने का मोह और भय छोडो और निर्भय होकर जैसे धर्म की रक्षा हो वैसा प्रयत्न करो।

निधया बहिनों से भी मेरा यनी कहना है कि अत्र परमेश्वर से नाता जोने। धर्म को अपना सारी जनाओ। सयम से जीवन व्यतीत करो। समार र राग-रगों को और आभूषणों को अपने धर्म पालन में निनकारी समझ कर उनका त्याग कर दो। इमीमें आपकी प्रतिष्ठा है, इमीमें आपकी महिमा है। आप समार की आदर्श त्यागशाला नेत्रियाँ हैं। आपको गृहणी के णेमे प्रपचा से दूर रहना चाहिए, निनसे आपने धर्म पालन म वाया पहुँचती है।

आन भारत का दुर्भाग्य है कि छाटा छोटी बातों के लिए भी अपदेश देना पडता है। साधुआ को पति पत्नी के भगड में पडने की क्या आवश्यकता है? सामान्य धर्म का नाश होते देर कर के भी विशेष धर्म के पालन का अपदेश देना थोथा धमान्तर है। सामान्य धर्म का भर्त्सामोनि पालन हान पर ही विशेष धम का पालन हो सकता है। सामान्य धर्म के अभाव म विशेष धर्म का पालन होना समभव नहीं है।

प्रध्यासिद्धजी साद्व ' आन जनता में भयकर रोग घुसे हुए हैं।

आप श्रीमान्तर नरेश के मन्त्री हैं, अतएव आपसे यह कह देना पड़ता है कि आप लोगों पर इन रोगों की चिन्किता का बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। अगर लोग धर्म के कानून को न मानें तो आप लोगों को चाहिए कि राजकीय कानून बना कर इन रोगों का मुंह बन्द करा दें। बालविवाह और वृद्धविवाह इन रोगों में प्रधान हैं। इन रोगों की वृत्तिलत अन्य बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें आपसी प्रजा का घोर पतन हो रहा है। आपके राज्य की शोभा धीरे धीरे प्रजा से है, न कि निर्याल प्रजा से।

महाराज हरिश्चन्द्र का धर्म-मर्यादा का पालन कौन नहीं जानता? निम्न समय राजा हरिश्चन्द्र, महारानी तारा और कुमार राहुनाथ राज्य त्याग कर जाते हैं, उस समय समस्त नर-नारियों आँसू बहानी हैं। बहियों रानी से कहती हैं—महारानीजी, आप कहीं पलायनी हैं? आप हमारे घर में टिकिये। यह आप ही का घर है।

महारानी उत्तर देती हैं—'बहिनो! आपसे आँसू, आँसू नहीं, परन्तु मेरे धर्म का सन्कार है। यह आँसू मेरे पतिप्राय धर्म का अभिप्रेत है। अगर मैं राजभी ठाठ के साथ राजमङ्गल में बिरानी रहती तो मेरे साथ आपकी इतनी महानुभूति न होती। बहिनो! यदि आप हर प्रति सच्ची महानुभूति रखती हैं तो आप भी अपने घरमें सच्चे धर्म का स्थापना कीजिए।'

मित्रो! आपने महारानी तारा के वचन सुने? यह धर्म की रक्षा के लिए सितन हृदय के साथ राजपाट त्याग कर रही है? इसे

\* श्रीमान्तर राज्य में बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विरुद्ध राजकीय कानून बन गया है। पुरुषश्री के सदुपदेश को इसका श्रेय प्राप्त है।

बहुत हैं वैराग्य ! लारों कपड़ों व आभूषण पहनन वाली महारानी तारा ने ठीकरी की तरह उन्हें उतार कर फेंक दिया और मनमें तनिक भी मलीनता न आने ली । आप सामायिक करत समय पगडी तो उतारते हैं पर कभी दो घडी क लिए अभिमान भी उतारते हैं ? अगर नहीं, तो आप वैराग्य का अर्थ कैसे समझ सकत हैं ?

हरिश्चन्द्र की समस्त प्रजा विश्वामित्र को कोम रही थी । हरिश्चन्द्र चाहते तो अपने एक ही इशार मे कुछ का कुछ धर मरते थे । मगर नहीं । उन्होंने प्रजा को आश्वासन दिया कि—घथराओ नहीं । धर्म का फल कटुक कभी नहीं हो सकता ।

मित्रो ! आप लोग अपना 'पोजीशन' घनाया रम्यन के लिए भूठ, कपट, दगा, फाटका आदि करत हो मगर हरिश्चन्द्र की तरफ देखो । सने पीछे तमाम प्रजा की शक्ति है, फिर भी धर्म का आदर्श रगडा करने के लिए उसे राजपाट त्यागन में तनिक-सा भी हिचकिचा हट नहीं है । लोग दमड़ी-मड़ी क लिए भूठ थोलने के लिए तैयार रहते हैं । उनमे ऐसी आस्तिकता कहाँ ?

राजा हरिश्चन्द्र हट आस्तिकता के कारण ही हजारों वर्ष बीत जाने पर भी आज हम लोगो के मनोमन्दिर में जावित हैं । उनकी पवित्र कथा हमें धर्म की ओर इगित कर रही है, प्रेरित कर रही है ।

प्रध्वीसिंहनी साहज ! यदि आपने नगर में महाराज हरिश्चन्द्र आवें तो आप उह क्या भेट चढ़ाएंगे ?

प्रध्वीसिंहनी—'सभी कुछ महाराज !'

आप सभी कुछ चढ़ान क लिए क्यों तैयार हैं ? उनके मत्व

को देख कर। क्या इन सत्य धर्म प्रजा में प्रतिष्ठा नहीं होनी चाहिए? मनु के लिए धीरता की आवश्यकता है और धीरता धीर्य रक्षा से आती है। आन प्रजा का धीर्य नष्ट हो रहा है। इसे रोक कर क्या आप प्रजा का रक्षा का श्रेय प्राप्त न करेंगे ?

‘प्यारे मित्रो ! यदि आप इन रोग-राक्षसों को पहचान गये हों तो इन्हें—बालविवाह और वृद्धविवाह को—तिलांजलि मीनिए और अपने दूसरे भाइयों समझाइए। अगर ये न समझें तो मत्स्याग्रह काटिए। उनमें माफ शान्तों में यह क्षीण—अथ हम ऐसे अत्याचार हर्षित न होने देंगे।

धर्म के खातिर राजा हरिश्चन्द्र ने राज-पाट ही नहीं छोड़ा, पर विश्वामित्र को क्षीण चुकाने के लिए आप अपनी पत्नी महित दिक गय। धर्म की रक्षा त्याग से होती है, तलवार से नहीं।

रामचन्द्रजीने भी त्याग क द्वारा ही अपने धर्म की रक्षा की थी। वे चाहते तो स्वयं राज्य के म्यामी बन सकते थे। सभी लोग उनके पक्ष में थे, मध्य भरत भी यही चाहते थे। पर रामचन्द्र राज्य के भूरे नहीं थे। वे ममार को जलान वाली पाप का अग्नि बुझाना चाहते थे। उन्हें मालूम हुआ कि मेरे ही घर म एमा द्वैत फैल गया है। एक ही राजा क पुत्रों में भी ऐसी भिन्नता समझी जाने लगी तब यह आग मसार म जिननी न फैल रही होगी ? उसे शान्त करन के लिए राम न राज्य का परित्याग किया। राम के इस त्याग से मसार सुधर गया। अरुन्धी कैकेयी का सुधरी, समग्र भारत रूपी कैकेयी का सुधार होगया।

तलवार का शक्ति राक्षसों के लिए काम म आती है। देवी प्रकृति वाली प्रजा में प्रेम ही अपूर्व प्रभाय टाल देता है।





मनुष्यत्वं



प्रार्थना



जय-जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक ने तूं घणी ।  
अब तैसों गाढ़ी बनी, प्रभु धारा पूरो हम तणी ॥

आत्मा की उन्नति क लि० विवेक की आवश्यकता है । विरक्त  
क बिना आत्मा की उन्नति नहा हो सकनी । यह बात कल भी मैं  
बतलाइ थी, पर तु शायद ही उम पर आपने फिर मनन किया होगा ।  
जा मनुष्य उत्तम विषयों को बार बार मनन किया करता है उमरी  
आत्मा में अच्छी जागृति हो जाती है ।

मित्रो ! जिन मनुष्य में विषक नहीं होता, वह पशु सभी खराब है। मैं आपका एक विवेक की बात कहता हूँ। उससे आप सहज में समझ जायेंगे कि विवेक किसे कहा जाता है ?

कल्पना कीजिए आप एक जंगल में खड़े हैं। वहाँ कई जानवर अपने से निर्धन पशुओं को चोर फाड़ कर खा रहे हैं। कई कई अपने विपैले स्वभाव से दूसरे प्राणियों का शिकार बन रहे हैं। बतलाएँ, आप इन प्राणियों के समान हैं या जुदे हैं ?

‘जुदे हैं।’

मित्रो ! इसी को अर्थात् धम्तु की विवचना करने की शक्ति को विवेक कहते हैं। आगे उक्त प्रकृति वाले जानवरों की क्रिया को देख कर विवेचना कर ली कि—‘मैं चीरफाड़ कर मांस खाने वाला सिंह, चीता आदि नहीं हूँ।’ मैं विषमय दर्शन करने वाला सर्प आदि नहीं हूँ। मैं पशु जगत में दूसरे जगत का प्राणी—मनुष्य हूँ।’ इस प्रकार आपने अपनी भिन्नता बतला दी, पर आपन यह भिन्नता नाम में बतलाएँ हैं या काम से ?

जो सूरत शक्त से मनुष्य हों पर लक्षणों में—कार्यों में पशु से भी गये धीत हों, उन्हें क्या कहना चाहिए ? पशुओं से मनुष्य में क्या विशेषता होनी चाहिए, जिससे वह मनुष्य कहलाने का दावा रख सके ?

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।

धर्मो हि तेषामधिको विशयो धर्मेण हान पशुभि समानः ॥

अर्थात्—आहार करना, नींद लाना, भयभीत होना, मैथुन सेवन करना, यह सब बातें तो मनुष्यों और पशुओं में समान रूप से पाई

पेसी स्थिति में स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य मक्खी से बड़ा कैसे है ? इस प्रश्न पर गौर से विचार करना चाहिए । मक्खी यह कारीगरी आज से नहीं बरन् न जाने कब से कर रही है । फिर भी उसने अपने कार्य में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया । वह जैसा पहले करती थी वैसा ही आज भी कर रही है । उसका यह विज्ञान जड़ विज्ञान है । इससे विपरीत मनुष्य अपने विज्ञान को बढ़ा सकता है । वह नित्य नवीनता ला सकता है । मनुष्य मधुमक्खी के ही नहीं, बरन् सारी सृष्टि के विज्ञान को अपने मस्तिष्क में भर सकता है । मस्तिष्क शक्ति की विशिष्टता के कारण मनुष्य मधुमक्खी से बड़ा है ।

मनुष्य के विज्ञान ने घड़ी, रेल, बिजली, वायुयान, चतार का तार आदि अनेक अविष्कार किये हैं । मानवीय विज्ञान की बढ़ती, अमरिका प्रेमीडे के अमरिका में होने वाले भाषण को आप घर बैठे अनायाम ही सुन सकते हैं । यहाँ की प्रधान अभिनेत्री के नृत्य कला के हावभाव आप घर बैठ देख सकते हैं । इस विज्ञानशाला ने कड़ियों की ओरें खोल दी हैं । पहले अग्नि भोजन बनाने के काम आती थी और पानी का प्रायः पीने में प्रधान उपयोग होता था । पर अब उसकी महायता से ऐसे ऐसे काम किए जाते हैं कि उन्हें देखकर और सुन कर आश्चर्य का पार नहीं रहता । पानी से बिजली निकाली जाती है और वह आपके घरों को जगमग जगमग कर देती है । साथ ही और भी सैकड़ों काम आती है ।

मनुष्य ने किन्ती बड़ी उन्नति कर ली ? मनुष्य के सिवाय दूसरा कोई प्राणी ऐसा कर सकता है ? क्या मनुष्येतर प्राणी में विज्ञान के इस चमत्कार को समझना भी शक्ति है ? नहीं । ?

पर हमें इस मानवीय उत्कर्ष पर सूक्ष्म विचार करना चाहिए। यह मानवशक्ति देवी शक्ति नहीं है। यह मात्रिक शक्ति भी नहीं है। यह यात्रिक शक्ति है। इस शक्ति से मनुष्य के सुख में वृद्धि हुई या दुःख में ? इसकी यत्नित मनुष्य स्वतंत्र बना है या परतंत्र ?

मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ। बत्ताइए, बिजली बढ़ी है या आपके घर का दीपक बढ़ा है ?

मित्रो ! इस बिजली ने तुम्हारे घर का दीपक हटाकर घर की मगत महिमा का हरण कर लिया है। बिजली के प्रताप ने तुम्हारी आँसुओं का तेज हर लिया है। इसकी यत्नित मनुष्य को इतनी अधिक शक्ति पहुँची है कि उसकी पूर्ति होना बहुत कठिन है। बिजली तथा इसी प्रकार की अन्य जड़ वस्तुओं से आपको बहुत हानि पहुँची है। इन वस्तुओं ने आपके सुख को सुलभ नष्ट बनाया।

आधुनिक विज्ञान की आलाचना करने का समय नहीं फिर भी इनका तो कहना ही पड़गा कि विज्ञान के राजसी यंत्रों ने विकराल विध्वंस की सृष्टि की है। विज्ञान की कृपा में ही आज समाज त्रस्त है। जगत् म हाय हाय की गगन को गुंजित करने वाली ध्वनि सुनाई पड़ रही है दुःखियों का जो कर्मण चित्कार कर्णगोचर हो रहा है, सुखमयों का जो रोदन सुनाई दे रहा है, यह मथ विज्ञान को विन्दावला का श्रमण है। जिनके ज्ञान हैं वे इस विज्ञानवादी को सुनें और विज्ञान की वास्तविकता पर विचार करें।

कहने का आशय यह है कि मनुष्य की वैज्ञानिक प्रगति उसके मलिनिक की महिमा को भले ही प्रशंसा करती हो, पर उससे मनुष्य की मनुष्यता जरा भी विकसित नहीं हुई। जो विज्ञान मनुष्य का मनुष्यता नहीं बढ़ाता, बल्कि उसे घटाता है और पशुता की वृद्धि

मित्रो ! यात माधारण है, छोटी सी जान पड़ती है । पर इसके रहस्य का विचार कीजिए । यथाइए उन चिड़ियों के मरने में दोष किसका है ? मृत्यु क लिए पुत्ता जिम्मेवर है या वे स्वयमेव ?

ये स्वयमेव !

क्या ! उन चिड़ियों न ऐसा कौन-सा काम किया, जिम्मेवार उहें दुःख भोगना पडा ? मित्रो ! प्रकृति का नियम निराला है । उम नियम को कोई तोड नहीं सकता ।

विचार कीजिए, क्या उन चिड़ियों का घर घाँटना था ? क्या उहें धन सौजन्य का घँटवारा करना था ? अमास आकारा में स्वच्छन्द विचरण करन वाली चिड़िया, कुत्ते की क्या विसान, क्या शेर के भी हाथ आ मकती है ? फिर वह शानों कुत्ते क द्वारा कैसे मारी गई ! क्रोध के कारण । क्रोध न उनका नाश कर डाला । अगर वे क्रोध में पागल होकर अपना आपा न भूल गई होतीं तो कुत्ते की क्या मजाल कि वह उनकी परछाई भी पा सक ।

भाइयो और बहिनो ! आपन चिड़ियों क मरने का कारण समझ लिया । आप उहें य उपदेश देने क लिए भी तैयार हो गय कि क्रोध कभी नहीं करना चाडिए । पर आप इस उपदेश पर स्वय भी अमल करत हैं ? मैं बहिनो म पूछता हूँ—बहिनो ! तुम तो कभी ऐसा क्रोध नहीं करती ?

आपनी तरफ से कोई उत्तर नहीं मिल रहा है । पर मुझे मालूम है कि अगर आप क्रोध न करती तो माम बहू, नन्द मौजाई एव देवरानी निठानी में कभी लडाई न होती । घर घर कलह के अडे न बने होते और आपका पारिवारिक जीवन कुद्ध का कुद्ध होता ।

बहिनो ! इस कचाल को छोड़ो । यह कुशल तुम्हारे विवेकरूपी पत्र को तोड़ डालेगी । जिस प्रकार पत्तों के बिना पत्तियों का सुख पूर्ण स्वच्छन्द विहार नहीं हो सकता, उसी प्रकार विवेक क नष्ट होने पर तुम्हारा मोक्ष रूप आकाश में ढींढा करना अमम्भव हो जायगा । क्रोध महा भयकर पिशाच है । इस से सदा दूर रहा करो ।

भाइयो और बहिनो ! यह बात मैंने अपने मन से बनाकर नहीं कही है । इसका विचार शास्त्र में आया है । गीता में भी इसकी अच्छी विवचना की गई है ।

स महान् शत्रु के प्रताप से जीवों को अनक बार चौकड़ी मरनी पड़ती है । तीर्थंकर क्रोध तथा इसके भाई वन्द अन्य दुर्गुणों का समूल उन्मूलन करते हैं । इसी कारण वे 'इश्वर' कहलाते हैं । आपकी आत्मा अनन्त गुणों की राशि है । उसमें अपरिमित गुण रज भर पड़े हैं । फिर भी आप उन गुणों को उपलब्ध नहीं कर पाते । इतना ही नहीं आप उन गुणों को पूरी तरह पहचान भी नहीं पाते हैं । अपनी चीज, अपने भीतर विद्यमान है, अपने द्वारा ही उसरी उपलब्धि होती है फिर भी उसे आप नहीं जान पाते । यह कितनी दयनीय दशा है ? जानते हो मका कारण क्या है ? इसका एकमात्र कारण क्रोध आदि विकार हैं । विशारों ने आत्मा के स्वाभाविक गुणों का इस प्रकार आच्छादित कर रक्खा है कि आपकी दृष्टि वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाती । जिस दिन आपकी दृष्टि ऐसी तीक्ष्ण बन जायगी कि आप विकारजन्य आच्छादन को उग डालेंगे, उसी दिन आपको अपना स्वतन्त्र नर आन लगेगा । यह खजाना इतना माइक, आकर्षक एवं अद्भुत होगा कि फिर उमरु आग तीनों लोकों की समस्त सम्पदा आपकी नगण्य जान पड़ेगी ।

भाइयों, घर का अमृत छोड़ कर बाहर विप पीने क्यों दौड़ते हो ? देखो, इन विकारों न तुम्हें किसी विपन्न दशा में पटक रक्खा है । यह विकार भाइ को भाई में लड़ात हैं, माम बहू का झगड़ा करवाते हैं, पिता पुत्र में बैर भाव उत्पन्न करते हैं । धर्म धर्म में मित्र पुत्रौवल करवाते हैं, एक दूसरे के प्रति विपयमन कराते हैं । यह विकार आपकी शिव नहीं बनन दत । ऐस महान् शत्रुओं का नाश करना, आपका सभ से पहला क्तव्य है ।

मित्रो ! तुमने मनुष्य नाम पाया है । स्मरण रकरो, यह जन्म सरलना स नहीं मिलना । न जाने कितने मव धारण करने के बाद कौन कौन सी भयंकर यातनाएँ भुगतने के पश्चात् कौनसे प्रबल पुण्य कर्त्तव्य से यह जन्म तुम्हें मिल पाया है । अगर यह यों ही व्यतीत हो गया—विकारों में घमन रहकर इसे कृथा बर्बाद कर लिया, तो कौन जाने फिर क्या ठिकाना लगेगा ?

अगर आपके पास धन है तो उस परीपकार में लगाओ । यह धन आपके साथ जान वाला नहीं है । इस धन क मोर् में मत पड़ो । यदि इसके मोर् में पड गय तो आपका मोक्ष प्राप्त नहा हो सकेगा ।

ईशु के पास एक आत्मी आया । उसने कहा—आपने स्वर्ग का द्वार खोल दिया है । मैं स्वर्ग में जाना चाहता हूँ । मुझे वहाँ भेज दीजिए ।

ईशु—तुम स्वर्ग में जाना चाहते हो ?

आगन्तुक—जी हाँ ।

ईशु—जाना चाहते हो ?

आग०—जी ।

ईशु—चरा सोच लो । जाना चाहते हो ?

आग०—खूब सोच लिया । मैं स्वर्ग जाना चाहता हूँ ।

ईशु—अच्छा, सोच लिया है तो अपने घर की तिजोरियों की चाबी मुझे दे दो ।

आग०—ऐसा तो नहीं कर सकता ।

ईशु—तो जाओ, तुम स्वर्ग नहीं जा सकते ।

सु० क छेद में से ऊँच का निकल जाना कदापि न सम्भव हो, पर कजूस धनवानों का स्वर्ग में प्रवेश जाना नितान्त असम्भव है ।

मित्रो ! मनुष्य होकर मनुष्यता मीसो । धन का मोह छोड़ो । काम-क्रोध से नाता तोड़ो । अपने जीवन को परंपकार में लगाओ । तभी आप महावीर क मन्त्रे शिष्य कहलाओगे और कल्याण के भागी बनाओगे ।

भीनासर }  
 { —६—२७ }





जन्मूस्वामा न अपनी गृहस्थावस्था में, विवाह का प्रस्ताव उपस्थित होने पर अपनी स्थिति स्पष्ट करती थी। उन्होंने कन्याओं को और उनके पिताओं को स्पष्ट रूप में बतला दिया था कि मैं गृहस्थावस्था में रहना नहीं चाहता। मुझे दूसरे दिन ही चैतन्यी गीता धारण कर लेनी है। यह सब बुद्ध जानते-बूझते कन्याओं को जन्मूकुमार के साथ विवाह मयध स्वीकार किया था। अतएव मैं उन पर जो कुछ कहा है, जन्मू-चरित से उसमें कुछ भी थापा उपस्थित नहीं होती। जन्मूकुमार ने किसी को धोखा नहीं दिया, किसी को भुलावे में नहीं रक्खा, उन्होंने पहले ही बात साफ कर ली थी।

यान यह है कि धर्म की नींव नीति है। नीति के बिना धर्म की प्रतिष्ठा नही हो सकती। जो पुरुष या स्त्री नीति को भंग करेगा वह धर्म को दीप्त नहीं कर सकता। अतएव निम्न क्रिया से नैतिक भ्रष्टाचार का उल्लंघन होता है वह क्रिया धर्म मगत कैसे माना जा सकती है ?

अथ यह विचार करना है कि सम्यक्दृष्टि पुरुष का किस वस्तु को नष्ट नही करनी चाहिए? सम्यक् धारण करने वाले का बतलाया जाता है कि स्वधर्म के देव, गुरु के मित्राद्य अन्य धर्म के देव और गुरु की आज्ञा नहीं करनी चाहिए। जो किसी का आज्ञा करता है उस पर लगता है।

प्रश्न उठता है—स्वधर्म क्या? अपने-अपने धर्म की हरे एक बतलाइ करता है। सब कहते हैं—हमारे धर्म को मानो, हमारे गुरुओं को बतलाना करो और किसी दूसरे को मत मानो। गीता में भी कहा है—

‘स्वधर्मो विधनो योग्यः परधर्मो भयावहः ।’

अर्थात्—स्वधर्म में रहते हुए मृत्यु का आलिंगन करना श्रेयस्कर है, मगर परधर्म मयस्कर है ।

जब तक स्वधर्म और परधर्म का ठीक-ठीक निर्णय न हो जाय तब तक वस्तु-नस्व ममता में नहीं आ सकता । अतएव सर्व प्रथम वही निश्चिन्त करना चाहिए कि वास्तव में स्वधर्म से क्या अभिप्राय है और परधर्म का क्या आशय है ?

धर्म के दो भेद हैं—एक धर्म और दूसरा आमिज धर्म । अगर धर्म के इस प्रकार भेद न किये जाते और धर्म का वर्गीकरण करके उससे स्वरूप को न समझा जाता तो अनपक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता ।

जैसा कि अभी कहा गया है, गीता का अर्थ है कि यदि अपने धर्म में कुछ कठिनाइयों हों और दूसरे के धर्म में सरलता मिललाई देनी हो तो भा परधर्म को न अपना कर अपने धर्म के लिए प्राण दे देना चाहिए । क्या इसका मतलब यह है कि एक शराबी शराब पीना अपना धर्म समझता है, शराब के बिना उसका काम नहीं चलता, तो इसका प्राण उसे मर जाना चाहिए ? क्या इसका अर्थ यह समझा जाय कि अगर किसी पुरुष ने पर त्री के साथ मौन-सद्भा गढ़ाने में धर्म समझ लिया हो, उसके बिना उसे जीव न पड़ती हा, तब कोई इस दुष्कर्म में छुड़ाने की कोशिश करे तो उसका मर जाना चाहिए ? नहीं, इसका यह अर्थ नहीं है । राजा प्रदेशी को, जिसके हाथ सदा मृत से रंगे रहते थे और निम्ने जीव हिंसा करना ही अपना धर्म मान लिया था, क्या मुनि के उपदेश में हिंसा का त्याग नहीं करना चाहिए था ? तब स्वधर्म के लिए प्राण तब न्यौधायर कर देने का आशय क्या है ?

मैंने जहाँ तक इस श्लोक पर विचार किया है तथा अन्य विद्वानों के विचार सुने हैं, उसमें यही प्रतीत हुआ है कि यहाँ धर्म शब्द का मन्त्र घणाश्रम धर्म के साथ है। अपने वर्णधर्म पर हटे रहने का यहाँ प्रतिपादन किया गया है।

मित्रो ! वर्णाश्रमधर्म के विषय में यदि ऐसा बड़ा उपदेश न दिया जाता तो ममार की व्यवस्था ठीक न रहती। ब्राह्मण को ब्राह्मणधर्म पर, क्षत्रिय को क्षत्रियधर्म पर, वैश्य को वैश्यधर्म पर और शूद्र को शूद्रधर्म पर कायम रहना चाहिए। इस कथन में यह आशय नहीं निगलना चाहिए कि ब्राह्मण का धर्म विद्याध्ययन करना है, इसलिए क्षत्रिय को विद्यायन से बच कर अशिक्षित ही रहना चाहिए। तथा क्षत्रिय का धर्म वीरता धारण करना है अतएव ब्राह्मण को निरलस कायम रहना चाहिए। वैश्य का धर्म व्यापार करना है और शूद्र का सेवा करना। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वैश्य की स्त्री को कोई अपहरण कर ल जाय तो वह वारता के अभाव में मुह ताकता मडा रहे या शूद्र विद्या के सर्वथा अभाव के कारण यथोचित सेवाधर्म का पालन ही न कर पाय।

मित्रो ! यात्र रक्मो, प्रत्येक मनुष्य में चारों गुणों का होना अत्यावश्यक है। उनके बिना जीवन का यथोचित निराह नहीं हो सकता। अब यह शक्य होनी है कि अगर प्रत्येक वर्ण वाले में चारों गुण वालों के गुण विद्यमान होना आवश्यक है तो घणाश्रम धर्म किस प्रकार निभेगा ? उसका समाधान यह है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक काम में प्रमाण नहीं होता। वह किसी एक कार्य में ही विशिष्ट योग्यता और सफलता प्राप्त कर सकता है। इसी आधार पर घण का निर्माण किया गया है।

चारों वर्णों विराट पुरुष का स्वरूप है। अर्थात् समस्त मानव प्रजा चार वर्णों में विभक्त है फिर भी सामान्य की अपेक्षा मनुष्य जाति एक ही है।

मनुष्यजातिरक्षेत्र आतिकर्मोद्भवा ।

अर्थात्-जाति नाम कर्म के उद्भव से मनुष्य जाति एक अलग है।

[जब तक भारतवर्ष में वर्ण व्यवस्था ठीक रही तब तक उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं भोगना पड़ा। पर जब से एक मन्त्र में कइ मन्त्र हुए, हाथों में से कई हाथ निकल पड़े अर्थात् ब्राह्मणों में कएक -पनातियों खनी हो गई, क्षत्रियों में अनेक शाखाएँ और प्रजाशाखाएँ बन गई, वैश्यों में विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई और शूद्र वर्ण विविध रिश्तों में विभक्त हो गया, तभी से वर्ण की हीन अवस्था आरम्भ हुई और धर्म के कर्म नष्टभ्रष्ट हो गये। 'स्वधर्मो निधन श्रेय परमार्थ भवानह' इसी अर्थवन्त्या को सुश्रवण के लिए कहा गया था। इसी गड़बड़ का मिटाने के लिए आचार्य विनमोने ने राजाओं को मनाहनी थी कि अगर कोई वर्ण वाला अपने वर्तमान धर्म को अनिश्चय करके अन्य धर्म का आचरण करे तो राजा को उसे रोकना चाहिए, अन्यथा वर्णमकरता फैल जायगी।

गीता का स्वयं सन्धी कथा आन्ध्र धर्म के लिए लागू नहीं हो सकता, क्योंकि नीच से नीच चाण्डाल तक के लिए आत्मधर्म की आगमना का और भात का प्रदाना सदा मुला रहता है।

भाइयो! मैं कांगा के त्रिपय में कह रहा था। फिर उसी पर आ जाइए। मान लीनिए एक क्षत्रिय युद्ध में लाने गया। वहाँ उसने कुछ बठिनाइयाँ देखी तो धनिया बन जान का काता करता है।

विचारता है—'वनिया वन जाऊँगा तो मौत की आजीबिका से उब मरूँगा और आराम से जीवन रिता, मरूँगा। इस प्रकार की काफ़ी नीच काफ़ी है। ऐसी काफ़ी कभा नहीं करना चाहिए।' उसे गीता के विधान का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्य पर, अपने धर्म पर हँसते हँसते, प्राण न्यौंदावर कर देने चाहिए।

निस समय वीर अर्जुन को रण में लड़ने के समय त्यागी ब्राह्मण बनने की काफ़ी हुई, तब श्रीकृष्ण ने कहा—

क्लेश्यं मास्म गम पार्थ । नैतत्

सुतु हृदयदौर्बल्य, स्वस्वोत्थित परन्तप ।

हे पार्थ ! इस क्लीमता—नपुमरता को हटाओ। तुम मरीखे बहादुर क्षत्रिय के लिए यह शोभा नहीं देती। हृदय की तुम दुर्बलता का त्याग करके तैयार हो जाओ।

मित्रो ! वर्णाश्रम धर्म की गड़बड़ी से ही आज भारत दीन, निपत्र और गुलाम बन गया है। जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सब को सभ्यता सिगाने वाला था, आज वह इतना दीन हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विश्वा का पुस्तकें जमनी से सँगाता है, बुद्ध-मामात्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक बनता है, नीति और धर्म की पुस्तकों के लिए इंग्लैण्ड के मामने हाथ पसारता है। और तो और, मुँ जैमी तुच्छ चात्र के लिए भी वह निदेशियों का मुँ तानता है। इमका क्या कारण है ?

कहाँ भाई सोचत होगे कि महाराज शास्त्र की बातें छोड़ कर ममार की चचा क्यों करत हैं ? मित्रो ! मैं इस प्रकार की आशका का स्पीकरण कई बार कर चुका हूँ। आप लोग गृहस्थ हैं।

गृहस्थ-धर्म की शिक्षा देना माधु का कर्तव्य है। आप अभी साधु बनने के लिए तो मेरे पास आये नहीं हैं, तब क्या आपको आपका धर्म बतलाना अनुचित होगा ?

मैं प्रधान मन्त्री में पृथक्ता हूँ—क्या प्रधान मंत्री ( सर मनुभाई महता) मेरे पास सन्यास ग्रहण करने की शिक्षा के लिए आये हैं ?

( प्रधान मंत्री ने गर्दन हिलाते हुए सूचित किया—नहीं ! )

आपके धर्म के अनुसार तो आपकी उम्र मन्यास धारण करने की हो गई है। फिर क्या बात है ?

यही कि आप सन्यास ग्रहण करने की इच्छा नहीं रखते। आप गृहस्थ रहना चाहते हैं। तो मुझे यह बतलाना ही चाहिए कि गृहस्थ धर्म क्या है ? गृहस्थ का कर्तव्य न जानोगे तो आगे कर्म धरना भी कठिन हो जायगा। यह बात भूल नहीं जाना चाहिए कि प्रत्येक काम में धर्म रहा हुआ है, अगर उसे उपयोग के साथ—यतनापूर्वक किया जाय।

एक घायली बली की ओर आ निकले। जगल का मामला था। बाघानी को भूख और प्यास मता रही थी। ऊपर से मूरत अपनी कठोर निरर्णों पैक रहा था। पर विश्रान्ति के लिए न कहीं कोई वृक्ष था। निराश्रित निया और न पानी पीने के लिए जलागय ही नजर आया। बाघानी हॉफत—हॉफते कुछ और आगे बने। थोडा दूर पर, रेतील गीर्ला पर तसुम्बे के फल की बेल तिराई गी। बाघानी पहल कभा इस आर आये नहीं थे। इस कारण इसके गुणों और गेयों से अनभिज्ञ थे। बाघानी इन बेलों के पास आये और पीले पाल सुन्दर फल देखे तो बहुत प्रमन्न हुए। उन्होंने मोचा—अब इनमें मैं अपनी भूख मिटाऊँगा।

‘आमोनी ने एक फल तोड़ा और मह म डाला। जीभ से स्पर्श होते ही उनका मुह जहर सा कड़ुवा हो गया। उन्हें थड़ा आश्चर्य हुआ। नेत्रों में जो फल इतना सुन्दर है, उसमें इतना कड़ुवापन ! मगर वह घुन क पक्के थे। उन्होंने सोचा—देखना चाहिए, फल म कड़ुवा ता वहाँ से आई है ? कड़ुवता की परीक्षा करने के लिए याथानी ने पत्ता चत्वा वह भी कड़ुक निकला। फिर भी तंतु का आम्यान्त्र किया तो वह भी कड़ुक ! अन्त में जड़ ग्याड़ कर उसे जीभ पर रखवा मो वह भी कड़ुक निकली। याथानी ने मन में कहा—निमकी जड़ ही कड़ुक है उमका फल मीठा कैसे हो सकता है ? फल मीठा चाहिए ता मूल को सुधारना होगा।

‘मित्रो ! आज भारत के बालक आपको नेत्रों में, उपर से भले ही खूब-सूरत दिखलाई न हों, पर उनके भीतर कड़ुवता भरी पड़ी है। प्रश्न होता है—बालकों में यह कड़ुवता कहाँ से आई ? परीक्षा करके देखेंगे तो ज्ञान होगा कि बालक रूपी फलों में माता रूपी मूल में मे कड़ुवता आती है। अतएव मूल को सुगन्ध की आवश्यकता है। जब आप मूल को सुगन्ध लेंगे तो फल आप ही आप सुधर जाएंगे। जड़ को सुगन्ध का भार मैं किसके सिपुर्ण करूँ ? मुझे ता इस समय याथानी की जगह नीवान साहब नजर आ रहे हैं। यहाँ की भाषा म याथानी का श्रय है—जुजुर्ग। लोग अपने पिता या पितामह आदि को याथानी कहते हैं। दावान साहब प्रजा के मरुत्तकों में म हैं—प्रधान हैं, अतएव इन्हें याथानी की पत्थी देना अनुचित भी न होगा।

‘नीवान साहब तथा अन्य साहबो ! जब आप बाजार में निकरें उस समय आपको मिठाई की दुकानें दिखाई दें या लोगों के शरीर पर

आमूख्य और कीमती कपड़ गिराई में, तो हमसे आप यह न समझ लीजिए कि हमारा देश सुग्री है। यह तो उपर का भभका है। देश में कराई आदमी भूगों मरते हैं और नगे रह कर जीवन बिताते हैं। शहरियों की भी दगा ठीक नहीं है। अमान इतना फैला हुआ है कि यह देश दुनिया के लगभग सभी देशों में पिछड़ा हुआ है। निम देश में शिक्षा की इतनी कमी हो गई है यदि परतन्त्र बन जाय तो हममें आश्चर्य की कौन-सी बात है ?

‘भारतवर्ष की दशा अभी बहुत तस्म्ये की खेल के समान है। हमक फल मय बहुत हैं। अत मातारूपी जड़ को मीठा बनाने का प्रयत्न कीजिए। अर्थात् निम प्रकार तस्म्ये की जगह गीठे मतीरे (तरबूत) की खेलें बन सकती हैं, इसी प्रकार इन माताओं को मारे मतारे की जड़ बनोइए, निममें देश में सुख-शान्ति का मचार हो सक।-

माता रूपी मूल को सुगारने का एक मात्र उपाय है—उन्हें सुरोदिता बनाना। यह काम, मरा गयान है, पुरणों की बनिस्पत मियों में बहुत शाघ्र हो सकता है। पदेन का अमर मियों पर कितनी चोनी होता है, कितना पुरणों पर नहीं होता। इस तथ्य का पचना कल भा हो चुकी है। एक म्यानीय बहिन ने चोनी में लेकर एनी तर मफद्, ग्यादी के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्त्रों का धारण करने का प्राग किया है और साथ ही यह प्रतिज्ञा भी ली है कि एक अमृत के सिवाय और कोई जैवर न पतोगा।

मित्रो ! मारवाड प्रान्त में और विशाल बाजार के बातामण में हम प्रकार की प्रतिज्ञा धारण करना कितना बठिन है, पर हम बहिन न हिम्मत करके यह काम कर लिया है। पुरणों में अभी एक



भी ऐसा पुरुष नजर नहीं आता जिम्ने जड़ी से चोटी तरु खादी के सिवाय और कोई भी धनुष न पहनने की प्रतिज्ञा ग्रहण की हो। क्या यह काम स्त्री-हृदय की क्षोभलता परन्तु धीरता का नहीं है? इसीलिए मैं कह सकता हूँ कि स्त्रियों को सुधारने वाला कोई हो तो वे बहुत शीघ्र सुधर सकती हैं।

पुरुषों का अपेक्षा स्त्रियों में त्याग की मात्रा अधिक दिखाई देती है। पुरुष चालीस वर्ष की अवस्था में विधुर हो जाय तो समाज के हितचिन्तकों के मना करने पर भी, जानि म तड़ डालन की परवाह न कर के दूसरा विवाह करन से नहीं चूकता। दूसरी तरफ उन विधवा बहिनों की ओर देखिण जो धागह-पन्हा धप की उम्र में ही विधवा हो गई हैं। वे कितना त्याग करके आजीवन प्रदलचर्य का पालन करती हैं! क्या यह त्याग पुरुषों के त्याग से बढ़ कर नह। है?

पुरुष वर्ग में त्याग की तो कतनी मात्रा भी नहीं कि यह कम से कम वृद्धावस्था में क या म विवाह न करे। कहते लज्जा आती है कि धनवान् वृद्ध पुरुष अपन घर क नरी में इतने अन्धे हो जात हैं कि उन्हें अपन हितहित का तनिक भान नहीं रहता और वे ऐस काम कर बैठते हैं, जिन्हें सुनते ही घृणा उत्पन्न होता है।

स्त्रियो! अब ठो। अपन जीवन को सुधारो और अपन दु खों को दूर करन के लिए स्त्रियों की शिक्षा का प्रयत्न करो।

स्त्रीशिक्षा का तात्पर्य कीरा पुस्तकज्ञान नहीं ह। पुस्तक पढ़ना मिथ्या दिया और खुशी पाइ, असम काम नहीं चलगा। याद रखनी, कीर अक्षर ज्ञान स बुद्ध भी नह। होन का। अक्षर ज्ञान क साथ व्यावहारिक ज्ञान—कर्त्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जायगी तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।

मैंने एक दिन आपके सामने द्रापदी का जिक्र किया था । मैंने बतलाया था कि द्रौपदी को चार प्रकार की शिक्षा मिली थी । एक शालिका शिक्षा, दूसरी बधूशिक्षा, तीसरी मातृशिक्षा और चौथी बदाचित्त-कर्मयोग से वैधव्य भोगना पड़े तो विधवा शिक्षा । तात्पर्य यह है कि स्त्री को जिन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है, उन अवस्थाओं में सफलता के साथ निर्वाह करने की उमे शिक्षा मिली थी । यही शिक्षा समूची शिक्षा कही जा सकती है । स्त्रियों को जीवन को सर्वाङ्ग उपयोगी शिक्षा मिलनी चाहिए ।

। स्त्रीशिक्षा के पक्ष में कानूनी शील देने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है । शिक्षा देने के विषय में अब पहले नितना विरोध भी दिखलाई नहा देता । पहले इतना अधिक बहम घुमा हुआ था कि लोग एक घर में दो कलम चलना अनिष्टजनक समझते थे । पर अब भी कुछ भाई स्त्रीशिक्षा का विरोध करने हैं । उन्हें समझ लेना चाहिए कि यह परम्परागत कुनस्फारा का परिणाम है । स्त्रियों को शिक्षा देना अगर हानिकारक होता तो भगवान् ऋषभदेव अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामकी पुत्रिया को क्यों शिक्षा देत ? आज पुण्य स्त्रीशिक्षा का निषेध भले ही करें मगर उन्हें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि रामणोरज ब्राह्मी न पुरुषों को साक्षर बनाया है । उमरी स्मृति में लिपि का नाम आज भी ब्राह्मी लिपि प्रचलित है । जो पुरुष जिसके प्रताप से साक्षर हुए उमी क वर्ग (स्त्रीवर्ग) को अक्षरहीन रखना घृण्य प्रथा नहीं है ? अद्य समाज में ब्राह्मी का 'भारती' नाम भी प्रचलित है । 'भारती' और 'मरस्वती' शब्द ही अर्थ के द्योतक हैं । सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी बतलाई जाती है । विशालाम क लिए लोग मरस्वती अरे स्त्री की पूजा करते हैं, फिर कहते हैं कि स्त्री शिक्षा निषिद्ध है । स्मरण रखिए, जब से पुरुषों ने स्त्रीशिक्षा क विरुद्ध आवाज उठाई है

तभी मे उसका पतन प्रारम्भ हुआ है और आज भी उस विरोध का कटुक फल सुगतने पड़ रहे हैं। "

मित्रो ! क्या अब भी श्रीशिक्षा के सम्बन्ध में आपको मन्दिह है ?

'नहीं' महाराज !

भाइयो ! आप लोग आस्तिक हैं, अद्धाशील हैं। इस अद्धाशीलता के कारण आप 'जी और तथ्यवचन' कह देते हैं और मेरा कथन अंगीकार कर लते हैं। पर उस कथन को जीवन में कहीं उतारते हैं ? अक्षी में अन्धी औपधि सेवन किये बिना फलप्रद नहीं होता और सुन्दर से सुन्दर मित्र भी जीवन में परिणत किये बिना लाभदायक नहीं हो सकता। मेरे उपदेश की और आपने श्रवण को सार्थकता इसीमें है कि उसे आप, जीवन में व्यवहन करें।

आप यूरोप निवासियों को नास्तिक कहते हैं पर वे वचन के पके हाते हैं। वे निम कार्य के लिए हो'भर नेत हैं, उमे निम शिवा नहीं रहते। ऐसा हालत में उन्हें आम्निर करना चाहिये या नास्तिक ? और इस दृष्टि से आप किम पंक्ति में चल जाँगे यह भी मोचनीय। एक आदमी कहता था कि रोनी गाने से भूय मित जानी है, पर वह गाना नहीं। उसका कहना है—रोनी गान से भूय नान मितता पर वह समय पर रोनी गानेता है। अब आप शान्त, किसकी भूय मितेगी ?

राने बाल की "

ता यही बात आप अपने विषय में सोच लें । आप मरे उपदेश का मुग्न स लाभदायक भले ही कहें, परन्तु यदि उसे काम में नहां लाएंगे तो वह लाभदायक कैसे हो सकता ?

मित्रो ! बीच में मैं आपको एक बात कहना हूँ । चांदा नाम का एक मुसलमान था । उसने अपनी बीवी से कहा—मैं एक भैंस लाऊंगा ।

बीवी बोली—बड़ी खुरी की बात है । मैं अपने गायक (पीहर) वालों को भी छात्र भेजा करूंगी ।

यह सुनना था कि मियाँ का पारा तेज हो गया । वे बड़बडात हुए उठे और बीवी को लतियाने लगे ।

बीवी बेचारी हैरान थी । उसकी समझ में ही न आया कि मियाँ साहब क्यों खपता हो उठे हैं ? उसने पूछा—मियाँ आखिर बात क्या है ? क्या नाइक मुझ पर दूट पड़े हो ?

मियाँ गुम्मे से पागल हो गये । बोले—गँड कहीं की, भैंस तो लाऊंगा मैं आर छात्र भवगी गायकें वालों को ?

इसके बाद फिर तड़गतड़, फिर तड़गतड़ ।

लोग इकट्ठे हुए । उन्हें मियाँ के कोप का कारण मालूम हुआ तो उन्हें भी ज्वल न रहा । उन्होंने मियाँ को मारना आरम्भ किया । तमाचे पर तमाचे पड़ने लगे ।

अब मियाँ की अकल ठिकाने आई । चिल्ला कर कहने लगे—खुदा के वास्ते माफ़ करो भाई, आखिर तुम लोग मरे उपर क्यों पिल पड़े हो ।

भाप्यो और धकिनो आजकल आपकी विलासिता बहुत बढ़ गई है। आपकी विलासिता के कारण आप भारत में छह करोड़ मनुष्य भूखों मर रहे हैं। आप पर जरा दया करो। इन्हें भूखा मरने से बचाओ। आपकी विलासिता के कारण यह कैसे भूखों मर रहे हैं, यह आपको मालूम नहीं पड़ता। यदि रणिवण, निम रसर्च को आप तुच्छ समझकर कर रहे हैं, वही उनके भूखों मरने और दुःख उठाने का कारण बन जाता है।

मैंने बहुत दिनों पहले कौशलेश्वर और काशीनरेश की बात कही थी। कौशलेश्वर ने काशीनरेश को बहुत कुछ सुझा दिया था। एक दिन वह था जब वे गरीब प्रजा के भक्तकथ, वही प्रचारक बन गये। काशीनरेश की रानी का नाम वरुणा था। एक दिन उम वरुणा नदी में स्नान करने की इच्छा हुई। उसने महाराज से स्नान के लिए जाने की आज्ञा मांगी। महाराज स्त्रियों को कोठरी में बन्द रखने के पक्ष में नहीं थे। वह चाहुत थे कि स्त्रियाँ भासूरपूर्वक प्राकृतिक छत्र अथलोकन करें और प्रकृति की पाठशाला से कुछ सीखें। अतएव उन्होंने बिना किसी आनाजानी के महारानी की आज्ञा दे दी।

महारानी अपनी मौदाभियों के साथ, रथ पर सवार होकर नदी पर पहुँची। वरुणा के तट पर गरीबों की भौंपड़ियाँ बनी हुई थीं। उनमें कुछ मस्त फकीर भी रहते थे। रानी ने तट निवासियों को कहला भेजा—महारानी स्नान करना चाहती हैं, इसलिए थोड़ी देर के लिए सब लोग अपनी अपनी भौंपड़ी छोड़कर बाहर चले जाएँ। सब लोग गेसा ही किया। महारानी अपनी सखियों के साथ वरुणा में किलोल करने लगी। उमन यथष्ट जलक्रीड़ा की। महारानी जल स्नान करके बाहर निकली तो उमने ठड लगा लगी। उसने

चम्पकवती-नामकटासी में कहा—जाओ, सामने के पेड़ों पर से लकड़ियों ले आओ । उन्हें जलाओ । मैं तापूगी ।

चम्पकवती लकड़ियाँ लेने गई किंतु कोमलता के कारण लकड़ियों न ताड़ सकी वह वापस लौट आई और अपनी कमजोरी प्रकट करके क्षमायाचना करने लगी । महारानी बोली—रौं, जाने ना, मगर तापना चरु है । सामन बहुत मी भौंपडियाँ खड़ी हैं । इन में किसी एक को आग लगा दो । अपना मतलब डल हो जायगा ।

चम्पकवती समझदार दामी थी । उसने कहा—महारानीजी, आपकी आज्ञा मिर माथे, परन्तु आप इस विचार को त्याग दीजिए । यह अच्छी बात नहीं है । गरीबों का सत्यानाश हो जायगा । वे गर्मी-सर्दी के मारे मर जाएंगे । उनकी रक्षा करने वाली यह भौंपडियाँ ही हैं ।

महारानी की तौरियों चट गई । बोली—बड़ी दयावती आई है कहीं की । अगर इतनी दया थी तो लकड़ियाँ क्यों न ले आई ? अच्छा मदना, तू जा और किसी भी एक भौंपड़ी में लगा दे ।

मदन दामी गई और उसने महारानी की आज्ञा का पालन किया । भौंपड़ी धौंय धौंय धधकने लगी । महारानी कुछ दूरी पर बैठकर तापने लगी । उसकी ठण्ड दूर हुई । शरीर में गर्मी आई । चित्त में शांति हुई । फिर महारानी रथ में बैठ कर राजमहल के हो गई ।

महारानी ने एक भौंपड़ी जलाने की आज्ञा दी थी । मगर पास-पास होने के कारण हवा के प्रताप से एक की आग दूसरी तक और इस प्रकार तमाम भौंपडियाँ जल कर राख का ढेर बन

महारानी—आप इस वक्त क्यों ?

चम्पकवती—मैंने जो कहा था, आगिर बढी हुआ ।

महागता—तू क्या कहा था और क्या हुआ ?

चम्पकवती—मैंन नती नट की मौपडियो न जलाने के लिए प्रार्थना की थी । आप न मानी । 7माम भौपडियाँ भग्म हो गई । अब लोगों 7 अन्नदाता के सामने क्ररिया की है ।

महारानी—तो क्या मुझे बुलाया है ?

चम्पकवती—जी हाँ ।

महारानी—प्रजा के सामने, मुझे ।

चम्पकवती—जी हाँ ।

महारानी—महाराज नशे में तो नहीं है । प्रजा के सामने मेरा फैमला होगा ?

चम्पक०—मैं तो अन्नदाता की आक्षा पालने आइ हूँ ।

आगिर महारानी महाराज के सामने उपस्थित हुई । महाराज ने पूछा—रानीजी, यह लोग जो प्ररियाद कर रहे हैं मो क्या सच है ?

महारानी—महाराज, बात तो सच है ।

महागज—तो इसका दण्ड ?

महारानी—मैं महारानी हूँ । मुझे दण्ड ?

महाराज—न्याय किमी का व्यक्तित्व नहीं देखता महारानी, वह राजा और प्रजा के लिए समान है। न्याय अगर लिहाज करेगा तो ब्रह्माण्ड उलट जायगा।

महारानी—अगर ऐसा है तो अपने स्वर्च से इनकी भौंपडियाँ बनवा दी जाएँ।

महाराज—भगर प्ररत तो धन का है। भौंपडियाँ खड़ी करने के लिए धन कहां से आणगा ?

महारानी चकित थी। उसने कहा—महाराज, रूपयों की क्या कमी है ?

महाराज—रूपये क्या मेरे मून से या तुम्हारे खून से पैदा हुए हैं ? मचाने का रुपया भी तो इन्हीं का है। इनके मून की कमाई स हा बह भरा गया है। जुल्म करें हम लोग और दण्ड भरा जाय इनके पैसों म ? यह तो दूसरा जुल्म हो जायगा।

महारानी ममक गई। बोली—अन्नदाता, अब मेरी समझ में आ गया। आप चाहें वही दण्ड दीजिए। मैं सब तरह तैयार हूँ।

राजा ने गम्भीर होकर कहा—अच्छा, अपने हाथों से मजदूरी करो। उमी से अपना पेट पालो। जो कुछ बचत कर सको उसस भौंपडियाँ बनवा दो। जब भौंपडियाँ तैयार हा जाएँ तब महल में पाँव धरना।

महाराज का न्याय मुन कर प्रना सन्न रह गई। उसने इस पैमले की कल्पना भा नहीं की थी। लोगों ने चिन्ना कर, कक्षा—



अन्नदाता, हमारा न्याय हो चुका। अब हमारा कोई काम नहीं है। कृपा कर महारानीजी की इतना कड़ा दण्ड न दीजिए।

महारानी थोली—महारान आप लोगों की बातों में न आइए। आपका न्याय अमर हो। आपका न्याय उचित है। अब हम न लौटाइए। मैं प्रमत्त हूँ।

प्रजा—नहीं महाराज, हम अपना महारानीजी को ऐसा दंड नहीं दिलवाना चाहते। अब हम कुछ भी नहीं चाहते। हमारी प्रियाद वापस लौटा दीजिए।

महाराज—प्रजा जनो! तुम्हारा भक्ति की मैं कद्र करता हूँ, पर न्याय के समक्ष मैं विवश हूँ। महारानी भी यही चाहती हैं।

महारानी—अन्नदाता आज का दिन बड़े सौभाग्य का दिन है। आज मैं अपने पति पर गर्व कर सकती हूँ। आपने न्याय की रक्षा की है। अब मुझे आज्ञा लेजिए। मैं जाता हूँ।

महारानी ने अपने बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र उतार दिये। साधारण पोशाक पहन कर वह महल में विदा होन लगी।

राजघरने की स्त्रियों और प्रजा की स्त्रियों उ हें रोकर लगीं। पर रानी ने किसी की न सुनी। रानी न फटा—उन्नि, मुझे रोको मत। अगर तुम्हारी मेरे साथ मरानुभूति है तो तुम भी मजदूरी करो। मेरी महायता करो। मैंने भीषण अत्याचार किया है। उसका फल से मुह मोड़ना अच्छा नहीं है। यह अक्षम्य अपराध है।

स्त्रियाँ ने कहा—मगर आपका कष्ट हमसे नही देखा जाता।

महारानी—कष्ट? कष्ट कैसा? क्या सीता और द्रौपदी ने कष्ट

नहीं भेजे ? और उनका नाम स्मरण आते ही श्रद्धा-भक्ति में मस्नक-  
क्यों मुक जाता है ? अगर धर्म और न्याय के लिए उठाने कष्ट न  
उठये होते और राजमहल में रह कर भोगविलास का जीवन बिताया  
गोता तो कौन उन्हें याद करता ? मैं चक्की चलाऊंगी, चर्खा कानूगी,  
और अपन अपराध का प्रायश्चिन करूंगी ।

भाइयो और बहनो ! आपन महारानी करुणा की बात मुनी ।  
उसके चरों से विलास की बदलन लोगों को कितना कष्ट हुआ ?

आप कलकत्ता जाते हैं और मोना खरीद लाते हैं । यहाँ  
उनकी बेंगडियो धनवा कर पहनाती और अभिमान करती हैं । पर  
कभी न्याय यह भी सोचा है कि यह बेंगडियो कितने गरीबों क  
संयानाश से घन कर तैयार हुई हैं ? हाय हाय ! और तो क्या कहें,  
आपन जो रुपड़े पन्ने हैं इन्हें देगो । इनमें चर्खा लगी है । न जाने  
कितने पशुओं की पील कर, उनका भूरता पूवक बन्ल करके बह  
चर्खा निकाली गई होगी । क्या आपका हृदय इतना कठोर है कि  
गरीबों और मूक पशुओं की इस दुर्दशा को देखकर भी नहीं पिघलता ।

भारत की फगाली का, उमकी दीनता हीनता और दुर्दशा का  
प्रधान कारण विलासिता की वृद्धि है । अगर आप देश की लाज  
रखना चाहत हैं, देश को सुग्री बनाना चाहत हैं, तो गरीबों को  
चूमना छोड़ो और चर्खा लग हुए बच्चों में मुंह मोड़ो ।

रानी शुद्ध बख है । इमेंमें चर्खों का उपयोग नहीं होता । इसीस  
काम चलाना नुरा नहीं है यहीं गरीबों की रक्षक है ।

हेमचन्द्राचार्य जब मार गये तब उन्हें धन्ना नामक सेठ की स्त्री  
न हाथ की कती और हाथ की बुनी खादी भेट की । वह बहुत प्रसन्न

दुष्ट और उसे पहना। जब राजा कुमारपाल, जो आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था, दर्शन करने आया तब उसने आचार्य को स्वामी पहने देसकर—महाराज, आप हमारे गुरु हैं। आपको यह मोटी और खुरदरी स्वामी पहने देसकर मुझे लज्जा आती है। हेमचार्य बोले—'भाइ, तुम्हें खादी पहने देसकर लज्जा नहीं आनी चाहिये। लज्जा, तो भूख के मारे मरने वाले गरीब भाइयों को देस कर आनी चाहिये।'

हेमचन्द्राचार्य के इन शब्दों ने राजा कुमारपाल पर अद्भुत प्रभाव डाला, वह स्वयं खादी भक्त बन गया। उसने चौदह वर्ष तक, प्रति वर्ष एक करोड़ रुपया गरीबों की स्थिति सुधारने में व्यय किया।

- मित्रो! मोचिये, खादी ने क्या कर दिखाया। कितना गरीबों की रक्षा की? आप खादी से क्यों डरते हैं? क्या राज की तरफ से आप को रोक टोक है? दीवान साहब! क्या खादी पहनना आपके राज्य में निषिद्ध है?

मित्रो! दीवाने सार्थक कहते हैं—खादी पहनना निषिद्ध नहीं, आप खादी से भयभीत क्यों होते हैं?

खादी के अतिरिक्त अन्य विलामवर्धन वस्त्रों को पहनना या अन्य कार्य में लाना गरीबों की भौंपड़िया में आग लगाने के समान है। आपने गरीबों की भौंपड़िया में बहुत आग लगाई है, अब कहणा करके, रानी की तरह मजूर बनाकर प्रायश्चित्त कर डालिए।

मजूर बनने में कुछ कष्ट तो जरूर है, पर कष्ट मेलान में ही मर्दानगी है। आज आप लोग सीता और राम को क्या याद करते हैं? कष्ट भोगने के कारण ही। अगर वे राजमहलों में बैठ कर

आनन्द भोगने तो उन्हें कौन पूछना ? इम धरातल पर न जाने कितने गाना, महागाना मध्याद् आदि हो चुके हैं। पर आन लोग उनका नाम भी नहीं जानते।

इम प्रकार आप अपने मूल को सुधारन का प्रयत्न कीजिए। मूल का सुधार होने पर तना, शाखाएँ, फल आदि स्वयं सुधर जायेंगे। मूल को सुधारने का सर्वश्रेष्ठ उपाय शिक्षा का प्रचार है। श्रीशिक्षा क मन्वध म मृके बहुव-सी पाते कहनी थीं, पर अद्यसमय हो चुका है। आप दीवान मादव क मरस्वती कुल को दक्षिए। इनके घर में नौ महिलाएँ प्रेज्युप्ट हैं। याद रखना, जहाँ सरस्वती होती है वही मगाज, वही दश और वही कुल-मुख और शान्ति का कन्द्र बनता है।

मानासर  
२६-६-२७ }





## ११. उदार अहिंसा

श्री जिन अजित नमो जयकारी, तू देवन को देवजी ।  
जिनशत्रु राजा न विजया, राणा को, शातमजात स्वमेव जी ।  
श्रीजिन अजित नमो जयकारी ॥

निरारम्भ और निष्परिग्रह रहना साधु का धर्म है, अल्पारम्भी और अल्पपरिग्रही बनना श्रावक—गृहस्थ—का धर्म है तथा महाारम्भी और महापरिग्रही बनना मिथ्यात्वी का काम है ।

यहाँ यह विचार करना आवश्यक है कि गृहस्थ अल्पारम्भी अल्पपरिग्रही किस प्रकार बन सकता है ?

श्रावक स्थूल प्राणातिपात का त्यागी होता है । अतएव यह

विचार कर लेना उपयोगी होगा कि यहाँ 'स्थूल' का क्या अर्थ है ? स्थूल शब्द सूक्ष्म की अपेक्षा रम्यता है, और 'सूक्ष्म' स्थूल की अपेक्षा रम्यता है। यदि 'सूक्ष्म' न होता तो स्थूल का होना सम्भव नहीं था। तो यहाँ स्थूल शब्द से क्या प्रदूषण किया गया है ?

यहाँ स्थूल शब्द का प्रयोग द्विन्द्रिय से लेकर चितने जीव आशाल-वृद्ध सभी को सरलता में आँसुओं द्वारा दिखाई देते हैं, उनके लिए किया गया है। ऐसे जीवों से भिन्न आँसुओं में न दिखाई देने वाले जीव, चाहे वे द्विन्द्रिय आदि ही क्यों न हों, यहाँ सूक्ष्म कहलाएँगे।

मोटी बुद्धि वालों को यह बात एक-एक समझना कठिन होगा, पर विचारशील व्यक्ति इसे जल्दी समझ सकेंगे।

शास्त्रकार ने एकेन्द्रिय जीव की हिंसा को हिंसा माना है पर उमका पाप पञ्चेन्द्रिय जीव की हिंसा के बराबर नहीं माना।

जैन समाज में आज हिंसा-अहिंसा के विषय में बहुत भ्रम फैला हुआ है। बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने 'न्या करो' का अर्थ समझ रखा है—सिर्फ छोटे-छोटे जीवों की दया करो। उन्होंने मानवदया प्रार्थना मुला दी है। एक धलाय ऐसा राडी ही गई है जिसकी समझ में चिउटी की और मनुष्य की हिंसों का पाप एक ही समान है। शायद उन्होंने ककर चुराने वाले को और जवाहरात चुराने वाले को भी समान ही समझ रखा होगा।

जैन समाज ने एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा के लिए जब से मनुष्य न्या मुलाई है, तभी से इसका प्रवृत्त आरंभ हुआ है।

हिन्दू शास्त्र भी हिंसा जान करे न मारने का विधान करता है, परन्तु इन शास्त्रों में हमका बहुत अच्छा, स्पष्ट और यारीय नियेचन किया गया है। इन शास्त्रों में हिंसा के दो भेद किये हैं—एक मरुत्यना हिंसा और दूसरी आरम्भना हिंसा।

“मरुत्याजाता मरुत्यजा । मनसः । सङ्कल्पाद् । द्वीन्द्रियादिप्राणिनः  
मांसास्थिवर्मैर्नश्वदन्ताद्यर्थं व्यापादयता भवति ।

अर्थात्—माम, हड्डी, चमड़ा, नागून, दांत आदि के लिए जान-भूम पर द्वीन्द्रिय आदि जानों का मारना मरुत्यना हिंसा कहलाती है।

आरम्भाजाता आरम्भजा । तत्रारम्भा इच्छदन्त्याद्यखननस्मात् ।  
तरिमन् शङ्खपिपीलिकाधाम्य गृहकारिकादि सत्सहनपरिताप  
द्रावक्षणेति ।

अर्थात्—हल जोतने से तथा गतुली आदि उपकरणों से और घर आदि बनाने में जो सूक्ष्म चीजों की हिंसा होती है वह आरम्भजा हिंसा है।

तत्र धमणोपासक सङ्कल्पतो यावज्जीवया अपि प्रत्याक्याति, न तु  
यावज्जीवयैव नियमतः, इति नारम्भजमिति तस्यावरयकता आरम्भसदुभावा-  
दिति ।

आजक जीवन पर्यन्त के लिए भी सकल्पना हिंसा का त्यागी हो सकता है परन्तु गृह निर्माण आदि कार्यों में लग रहने से आरम्भजा हिंसा का सर्वथा—नियम से त्यागी नहीं हो सकता। आरम्भ करने के कारण—आवश्यकता पड़ने पर हिंसा हो ही जाती है।

आन अहिमा का धारत्रिय रहस्य न समझने के कारण अपने आपसे श्रावक मानने वाले कई भाइ एमे फाम कर बैठते हैं, कि अन्यधर्मावलम्बी उनसे वार्यों को देखकर उनका हँसी उडाते हैं। कभी-कभी तो इतनी नाममभी प्रकट होती है कि उनके कारण धर्म की अप्रतिष्ठा होती है। वहाँ तो जैन धर्म की अहिमा की विशालता और वहाँ इन भोले भाइयों की अहिमा के पीछे हिमा का बडा भाग।

आन अनेक भाई आरम्भना हिमा मे वचने की पूरी कोशिश करते हैं पर सकल्पजा हिमा मे वचने के लिए कुद भी प्रयत्न करते नउर नहीं आन। हिमा-अहिमा का सधा रहस्य न जानने के कारण ही कई श्रावक चिउटी मर जाने पर नितना अपमोस प्रकट करते हैं, मनुष्य पर अत्याचार करने में उतना घृणा नहीं करत।

मित्रो ! जैनधर्म की अहिमा णसी नहीं है जैसी कि आपने भूल मे उसे समझ लिया है। अवसर आने पर सधा जैनधर्मी युद्धभूमि में जाने से नहीं हिचकता। हाँ, वह इस बात का पूरा ध्यान रखता है कि मुक्त से कहीं निरपराय प्राणी की सकल्पजा हिमा न होन पाये।

प्राचीन काल मे वय वीइ राजा दूसरे राजा पर आक्रमण करता था तो वह आक्रमण करने से पहले उसे सूचना देता था। सूचना के साथ ही वह अपना माँग भी उसके सामने उपस्थित कर देता था। चाहे महाभारत के युद्ध का इतिहास पढ़िए, चाहे राम रावण के समाम का। सबत्र आप देख सकेंगे कि आक्रमण से पहले, निम पर आक्रमण किया जाता था उसके सामने आक्रमणकारी ने अपनी माँग पेश की। प्राचीन भारतवप में यह नियम इतना व्यापक और अनुल्लघनीय बन गया था कि आज भी इसकी परम्परा प्राय निर्याई देती है। इस समय भी अपने दुर्तों के द्वारा माँग पेश का जाती है।



क्या आप बता सकते हैं कि इस नियम का क्या कारण था ? पहले से युद्ध की सूचना देकर अपने शत्रु को तैयार होने का अवसर क्यों दिया जाता था ? राजा लोग अचानक आक्रमण क्यों नही कर देते थे ?

मित्रो ! इस परम्परा मे एक रहस्य है । जिस शत्रु को पूरा करने के लिए राजा आक्रमण करता है, उसे कर्त्तव्य यह राजा, जिस पर आक्रमण करना है, बिना युद्ध किये ही स्वीकार कर ले । ऐसी अवस्था में वह युद्ध निरपराधी सैनिकों की हिंसा का कारण होगा और अनावश्यक भी होगा । इस प्रकार निरपराध जीवों की हिंसा मे बचने के लिए ही युद्ध से पहले दूसरे राजा के सामने माँग पेश कर ली जाती थी । दूसरा राजा जब आक्रमणकारी की माँग स्वीकार नहीं करता था तो उसे अपराधी समझ कर वह आक्रमण कर देता था ।

इससे यह निम्ति हो जाता है कि श्रावक अपराधी-जीवों की हिंसा का एकान्तत त्याग नहीं होता ।

अहिंसा कायर बनाती है या कायरों का शत्रु है, यह बात वही कह सकता है जिसने अहिंसा का स्वरूप और सामर्थ्य नहीं समझ पाया है । इससे निपरीत मत्स्य तो यह है कि अहिंसा का अर्थ वीरशिरोमणि ही धारण कर सकते हैं । जो कायर है वह अहिंसा को लज्जावेगा । वह अहिंसक बन नहीं सकता । कायर अपनी कायरता को छिपाने के लिए अहिंसक होने का ढोंग रच सकता है, वह अपने आपको अहिंसक कहे तो कौन उमकी जीभ पकड़ सकता है, पर वास्तव में वह सच्चा अहिंसक नहीं है । यों तो सच्चा अहिंसावादी एक चिउंटी के भी व्यर्थ प्राण हरण करने में थरा उठगा, क्योंकि वह सकल्पनाहिंसा है । यह इसे महान्

पातक समझता है। पर जब नीति या धर्म गतरे में हागा, न्याय का तहाना होगा, और समाज में कृष्णा अनिष्टाय हो जायगा तब बह हजारों मनुष्यों के सिर उतार लेने में भी किंचिन्मात्र खे प्रकट न करेगा। हाँ, बह इस बात का अवश्य पूर्ण ध्यान रक्खेगा कि समाज मेरी ओर से सकलरूप न हो, धरन आरम्भ रूप हो।

सकल्पजा हिंसा करने वाले को पातकी के नाम से पुकारा जाता है, पर आरम्भना हिंसा करने वाला श्रावक इस नाम म नहीं पुकारा जाता।

मित्रो ! इस मनिप्र विवचन म आप समझ गये होंगे कि जैनों का अहिंसा इतनी मकुचिन नहा है कि बह समाज के कार्य में बाधक हो और सामारिक कार्य करने वालों को उमका परित्याग करना पड। बह इतनी व्यापक और विगाल है कि बडे-बडे सम्राटों, राजाओं और महाराजाओं ने से धारण किया है, पालन किया है और आज भी ये उसना धारण पालन कर सकते हैं। उनक लोक-यवहार में किसी प्रकार का सजावट गना नहीं होती। नैन अहिंसा अगर राजधान म बाधक होनी तो प्राचीन काल क राजा महाराजा उमका पालन किम प्रकार करत ?

एक पादरी की लिखी हुई पुस्तक में मैंने पना था कि हिन्दू लोगों की अपेक्षा हम पादरी लोग अधिक अहिंसक हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार गेहूँ आदि पदार्थों म जीव हैं। हिन्दू लोग गेहूँ आदि को पीस कर खाते हैं। ऐसा करने में कितनी हिंसा होती है ? एक बात और भी है। जब गेहूँ आदि की खेती की जाती है तब भी पानी क, पृथ्वी के और न जान कौन-कौन से हजारों जीवों की हत्या होती है।

वे इतनी अधिक हिंसा करने क पश्चात् पेट भरने में समर्थ हो पाते हैं। फिर भी हिन्दू लोग अपने आपको अहिंसक मानते हैं।

हम पाटरी लोग मिर्क एक बकरे को मारते हैं और उमीसे अनेक आत्मियों का पेट भर जाता है। इसमें हम बहुत कम हिंसा करते हैं ?

मित्रा ! यह पाटरी भोले भाले लोगों की आँसु में धूल मँकने का प्रयास कर रहा है। यह इन युक्ति से हिन्दुओं क प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करवाना चाहता है। यह ममता है, यह तर्क सुनकर बहुत से लोग इशु की शरण में आजाँगे। मगर यह पाटरी भाई भारी भ्रम में है। उसे समझ लेना होगा कि यह जो दलील पेश करता है, मधे अहिंसावादी के सामने पल भर भा नहीं ठहर सकती।

जरा विचार कीजिए, उरु का आसमान से टपक पड़ा है ? उसका जन्म निमी बकरी के गर्भ में हुआ है। उस बकरी ने कितना धान खाया होगा और कितना पानी पिया होगा, निमसे गर्भ का पोषण हुआ ? तथा जन्म लेने के बाद बकरी ने कितना धान खाया और कितना पानी पिया है, निमसे उसका शरीर पुष्ट हुआ है ? इसका हिंसा लगाना अत्यावश्यक है। बकरे की हिंसा और धान पैदा करने की हिंसा की एक आधार पर तुलना की जाय, तो मालूम होगा कि हिंसा किसमें ज्यादा है ?

इस मध्य में एक बड़ी बात और भी है। क्या धान खाँटि द्वारा पेट भरने वाला इतना मूठ स्वभाव का हो सकता है कितना बकरे का मांस खाने वाला हो सकता है ? यदि नहीं तो मांस खाने वाले के

गुणों और धान्य खाने वाले के अङ्गुणों के गीत क्यों गाये जाते हैं ?

ऊपर ऊपर के विचार से तो हमन पादरी को दोपी ठहरा लिया और यह भी कह दिया कि वह अपनी भूठी सफाई देकर लोगों को बोसा देता है। परन्तु आपने कभी अपने मक्ख में भी सोचा है ? मित्रो ! आप लोग भी ऊपर ऊपर से विचार करते हैं और गहरे पैठ कर विचार करने की चमत्ता प्राप्त नहीं करत। आप विचार कीजिए, एक चमार को, जो मरे हुए घरों की चमड़ी उतार कर जूता, चरस, पगल आदि धनाता है, आप नीच समझते हैं और उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। पर आप ही कई मेठ कहलान वाले भाई अपने मिलों में उपयोग करने के लिए मैकड़ों नहीं, हजारों भी नहीं, धरन् लाखों मन चर्या काम में लाते हैं। यह कितने परिताप की बात है ? जब बेचारा चमार आपकी दुकान पर आता है तो आप लाल-लाल आँखें निरा कर उसे डाट फटकार निरलाते हैं पर जब चर्या वाले सेठनी आते हैं तो उच्च आसन पर बैठने के लिए आग्रह करते हैं। यह सब क्या है ? क्या यह आपका मन्ना इमाफ है ? नहीं मित्रो ! यह घोर पतनपात है और महापाप के बंध का कारण है ?

मैं पहले कह चुका हूँ कि आवेन सकल्पना हिंसा का त्यागी हो सकता है किन्तु आरम्भना हिंसा का नहीं। सकल्पना हिंसा से पहले आरम्भना हिंसा, के त्याग करने का प्रयत्न करना मूर्खता है, क्योंकि उमना इस प्रकार त्याग होना संभव नहीं है। क्रस से काम होना श्रेयस्कर होता है।

कई बहिनें चक्की चलाने का त्याग करती हैं पर आपस में लड़ने

मगड़ने और गान्धी-गलौज करने में तनिक भी नहीं हिचकती। वे न इधर की रहती हैं, न उधरकी रहती हैं। वे स्वयं नहीं पीमती, दूसरों में पिसघाती हैं। जो अहिन अपन हाथ से काम करती हैं वह यदि विवक वाली है तो 'जयणा' रख सकती हैं, पर जा दूसरे के भरोसे रहती हैं वह वहाँ तक बच सकता है, यह आप स्वयं विचार देखिए।

मित्रो ! अहिंसा को ठीक तरह मम्मन के लिए मोटी-सी घात पर ध्यान दीजिए। अहिंसा के तीन भेद कीजिए—(१) सात्विकी (२) राजसी और (३) तामसी। सात्विकी अहिंसा प्रीतरण पुरुष ही पाल सकते हैं। राजसी अहिंसा यह है निममें अत्याय के प्रति कार के लिए आरम्भना हिंसा करनी पड़े। जैसे राम और रावण का उठाहरण लीजिए। रावण सीता को हरण कर ल गया। राम ने सीता को भाँगा, पर रावण लौटाने को तैयार न हुआ। तब लाचार होकर राम ने रावण के विरुद्ध शस्त्र उठाया और उसके नाश किया। यह हिंसा तो अवश्य है, पर उसे राजसी अहिंसा ही कहा जाता है। रावण ने शस्त्र उठाया—तो सकरपना हिंसा थी और राम की हिंसा आरम्भना। दोनों में यह अन्तर है। राजसी अहिंसा सात्विकी अहिंसा से भिन्न श्रेणा की है पर तामसी अहिंसा से उध कोटि की है। तामसी अहिंसा कायरता से उत्पन्न होती है। अपनी स्त्री पर अत्याचार होते देख कर, जो क्षति पहुँचने या अपने मर जाने के डर से चुप्पी साध कर बैठ जाता है, अत्याय और अत्याचार का प्रतीकार नहीं करता, लोगों के टोकने पर जो अपने आपको दयालु प्रकट करता है, ऐसा नपसन्न तामसी अहिंसा वाला है। यह निरृष्ट अहिंसा है। इस अहिंसा की आड लेने वाला व्यक्ति समार के लिए भार स्वरूप है। वह कायर है और धर्म का, जाति का तथा संस्कृति का घानक है।

मित्रो ! विवेक के साथ अहिंसा का स्वरूप समझो । क्रमशः अहिंसा का पालन करते हुए अन्त में पूर्ण अहिंसक बनो । ऐसा कोई व्यवहार मत करो जिससे तुम्हारे कारण धर्म की अप्रतिष्ठा हो । हमी में तुम्हारे और जगत् का कल्याण है ।

भीनासर

३०—६—२७





## नारी-सम्मान

---

धर्म का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। आत्मा के परम निश्चयम् के लिए धर्म की उपासना की जाती है। धर्म की धारण करने में धर्म पालने वाले की रुचि प्रधान है। उच्च लोभ, लालच या धर्मकी के लिए कोई स्थान नहीं है। आपत्त धर्म-व्यवृत्तन करने के लिए धर्मात्मा लोग अनेक प्रकार की लुच्चाई और गुडापन से काम लेते हैं जिसमें सचाइ नाम मात्र को नहीं होती। पर धर्म लुच्चाई का नहीं, सचाई का है। जिसे अपने धर्म की सचाइ पर विश्वास है वह अपने धर्म की सचाइ तो दूसरों को समझाएगा पर अपने धर्म में स्नान के लिए लुच्चाइ का प्रयोग दर्गिज न करेगा। पसा करने वाल वही हो सकते हैं जिन्होंने अपने मत की सचाई का अनुभव नहा किया है और मजहब की मदिरा पीकर नेमान हो रहे हैं।

सर्पाई के धर्म में किसी की लोभ देकर या दया कर अपन धर्म में घसीटने की आवश्यकता ही नहीं होती । यहाँ योग्यता पर ही ध्यान दिया जाता है । जैनधर्म ने योग्यता पर ही ध्यान दिया है । जो यह योग्यता प्राप्त कर लता है उमा को जैन धर्म प्राप्त हो जाता है ।

धर्म धारण करने की योग्यता क्या है, इस अर्घ्य म शास्त्र में कहा गया है कि भावक वही है जो सम्यक्त्वधारी हो। सम्यक्त्व-समकित—के अभाव में अणुग्रन्थों का ठीक-ठीक पालन नहीं हो सकता । पाँच अणुग्रन्थ और तीन गुणग्रन्थ भावक को ज्ञान पर्यन्त पालन योग्य हैं । सामायिक, दशावकाशिक ग्रन्थ, तथा पौषपोष्याम और अनिधिसविभाग, यह चार शिक्षाग्रन्थ नियत समय पर अनुष्ठान किये जाने हैं । इन चार ग्रन्थों की आवश्यकता कहा जाना है ।

अब प्रश्न होता है कि आवश्यकधर्म का मूल क्या है ? मूल क दिना किसी भी वस्तु की स्थिति रहना कठिन है । वृक्ष म और फोड़ भाग १ हो तो हानि नहीं, पर मूल अवरय हाना चाहिए । मूल (जड़) होगा तो दूसरे भाग अपने आप उत्पन्न हो जायेंगे । इसमें विपरीत मूल क अभाव में दूसरे भाग अगर होंगे तो भी ब टिक नहीं सकेंगे—उनका नाश होना अवरयभावी है ।

भाइयो ! जैसे अन्य वस्तुओं क मूल पर ध्यान रक्खा जाता है उमी प्रकार धर्म क मूल पर भी ध्यान रक्खना नितान्त आवश्यक है । अज्ञा, तो धर्म का मूल क्या है ? सम्यक्त्व । कहा है—

द्वार मूलं प्रतिष्ठानमाधारी भाजनं निधि ।

द्विपदकृत्यास्य धर्मस्य सम्यक्त्व परिकीर्तितम् ॥



विद्या और विनय अर्थात् ज्ञान और सदाचार में युक्त ब्राह्मण हो या गाय हो, हाथी हो या बुत्ता हो अथवा चाण्डाल हो, जो इन मंत्र में समभाव रखने वाला हो वही समदर्शी परिदृष्ट है।

अगर साधु का वप धारण करना वाले किसी व्यक्ति में समदर्शीपन न हो तो उसे कोई साधु कहेगा? वाकानर-नरेश अपने राज्य में ब्राह्मण या चाण्डाल में समान न्याय का आचरण न करे तो उन्हें काइ आदर्श राजा कहेगा?

‘नहीं।’

और भी देखिए। डाक्टर का काम चिकित्सा करना है। किसी की भयंकर बीमारी में अगर मल-मूत्र की परीक्षा करना आवश्यक न हो और वह घृणा लाये तो क्या वह डाक्टर कहलाने योग्य है?

‘नहीं।’

आप लोगों ने मंत्र प्रश्नों का सही उत्तर दे दिया। अब यह बतलाइए कि जो पुरुष या स्त्री-समाज में साधु समभाव का व्यवहार न करे उसे क्या कहना चाहिए?

आप जिस समाज में रहते हैं उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ समभाव का व्यवहार नही करत तो उस समाज के प्रति अत्याचार करते हैं। इस लिए इस प्रश्न का उत्तर देने में भी हिचकिचाते हैं।

मित्रो! स्त्री, पुरुष का आधा अंग है। क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अंग बलिष्ठ और आधा अंग निर्बल हो? जिसका आधा अंग निर्बल होगा उसका पूरा अंग निर्बल होगा। ऐसी स्थिति में आप पुरुष समाज की उन्नति के लिए चिन्तने उद्योग करते हैं वे सध असफल ही रहेंगे, अगर पहले आपने महिला समूह की स्थिति

सुधारने का प्रयत्न किया। आप अंग्रेज सरकार से स्वराज्य की माँग करते हैं किन्तु पहले अपने घर में तो स्वराज्य स्थापित कर स्त्रियों के साथ समता और उदारता का व्यवहार करो। आप स्त्रियों के प्रति समभाव न रख कर, उन्हें गुलाम बनाकर स्वराज्य की माँग किस मुह से करते हैं ?

यह स्त्रियों जग जन्ती का अवतार हैं। इन्हीं की कृपे से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष समाज पर स्त्री-समाज का बड़ा भारी उपकार है। उस उपकार को भूल जाना, उनके प्रति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है।

मैं समभाव का व्यवहार करने के लिए कहता हूँ। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियों को पुरुषों के अधिकार दे दिये जाएँ। मेरा आशय यह है कि स्त्रियों को स्त्रियों के अधिकार देने में कृपणता न की जाय। नर और नारी में प्रकृति में जो विभेद कर दिया है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। अतएव उनके कर्तव्यों में भी भेद रहेगा ही। कर्त्तव्य के अनुसार अधिकारों में भी भेद होने ही रहे मगर जिस कर्त्तव्य के साथ जिस अधिकार की आवश्यकता है वह उन्हें सौंपे बिना वे अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह निर्वाह नहीं कर सकतीं।

यहाँ एक बात यद्दिनों में भी कह देना आवश्यक है। पुरुष आपको आपके अधिकार दे देंगे तो जिना शिक्षा पाये आप उन्हें निभान सकेगी। अतएव आपका शिक्षित होना जरूरी है। ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मीदेवी ने ही भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार किया था। आपको इस बात का अभिमान होना चाहिए कि हमारी ही यद्दिन ने भारत को शिक्षित बनाया था। उस देवी के नाम से भारतीय लिपि अब भी ब्राह्मी लिपि कहलाती है। ब्राह्मी का नाम सरस्वती है और

अन्य ग्रन्थों में उसे ब्रह्मा की पुत्री बतलाया है। ऋषभदेव ब्रह्मा थे और उनकी पुत्री ब्राह्मीकुमारी थी। इस प्रकार दोनों कथनों से एक की बात फलित होती है। जैन ग्रन्थों में पता चलता है कि ऋषभदेव की दूसरी पुत्री 'सुन्दरी' ने गणित विद्या का आविष्कार एवं प्रचार किया था।

पुरुषो ! स्त्री जाति न तुम्हें हानवान् और विवेकी बनाया है, फिर किस बूत पर तुम इतना अभिमान करते हो ? जिस अभिमान में तुम उन्हें पैर की जूती समझते हो ? बिना किसी कारण के एक उपनारिणा जाति का असह्य अपमान करना उसका तिरस्कार करना घृत्तता और नीचता है। आपकी इन करतूतों से आपका समाज आज रसानल की तरफ जा रहा है। प्रकृति का नियम को याद रखिए, बिना स्त्री जाति के उद्धार के आपका उद्धार होना अत्यन्त कठिन है।

कभी कभी विचार आता है—घन्य है स्त्री जाति। जिस काम को पुरुष घृणित समझता है और एक बार करने में भी हाथ तोड़ा मचान लग जाता है, उससे कई गुणा अधिक कष्टकर-कार्य स्त्री-जाति हर्ष पूर्वक करती है। वह कभी नाक नहीं सिकोड़ती। मुँह में कभी 'सफ्' तक नहीं करती। वह चुपचाप, अपना कर्तव्य समझ कर, अपने काम में जुटी रहती है। ऐसी महिमा है स्त्री जाति की।

हे मातृ जाति ! नू जिनका एक बार हाथ पकड़ लेती है जन्म-भर के लिए उसी की हो जाती है। मृत्यु पश्चात् उसका माथ देती है फिर भी निष्ठुर पुरुषों ने तुम्हें नरक का द्वार बतला कर अपने वैराग्य की घोषणा की है। अनेक ग्रन्थकार पुरुषों ने तुम्हें नीचा दिखाया है। पुरुष का वैराग्य में स्त्री अगर बाधक है तो स्त्री के

रैराज्य में पुरुष यात्रक नहीं है ? फिर क्यों एक की कड़ी से कड़ी भर्त्सना की जाता है और दूसरे को दूध का घुला घताया जाता है ? उस प्रकार की घातें पक्षपान के अतिरिक्त और क्या हैं ?

भाइयो ! ममार में स्त्री और पुरुष का जोड़ा बना गया है । चाहा वह है जिममें ममानता विद्यमान हो । पुरुष पत्नी लिप्या शिक्षित हो और स्त्री मूर्खा, तो उस जोड़ा नहीं कह सकते । आप स्वयं विचार कीजिए क्या वह वास्तविक और आदर्श जोड़ा है ?

‘नहीं !’

तो फिर आप उसे अशिक्षित क्यों रखत हैं ? क्या आप यह समझते हैं—स्त्री को शिक्षित बना देंगे तो हमारी स्वच्छन्दता में बाधा पड़ेगी ? अमर स्त्रियों को शास्त्रीय ज्ञान हो जायगा तो वे हमारी दुष्टियों को पहचान जायेंगी ? कितनी भीरुता ! कितनी कायरता ! कितना डरपोकपन !

भाइयो ! स्वराज्य-स्वराज्य चिह्नाने से पहले अपने घर में स्वराज्य स्थापित करो । स्त्रियों को गसना की बेड़ी में मुक्त करो । जब तक तुम स्त्री जाति को हीन दृष्टि से देखोगे, उनके कष्टों पर ध्यान न दोगे तब तक स्वराज्य स्वप्नवत् ही समझना चाहिए । तब तक तुम इन्हीं योग्य रहोगे कि राजा तुम्हें गुलाम बना कर रखे और तुम्हारे कान मरोड़ मरोड़ कर तुमसे इच्छानुसार काम लेता रहे ।

स्त्री को ममानता देने में इतनी हिचकिचाहट क्यों है ? अब तुम्हारा विवाह हुआ था तब पत्नी को कहीं लेकर बैठे थे ?

बोलिए, घबराते क्यों हैं ? क्या उस समय थरामरी ना आसन देकर नहीं बैठे थे ?

'बैठे थे ।'

तो अब क्यों पीछे फिरते हो ? क्या आपना उद्देश्य पूर्ण होगया सीलिण ?

आज तो आपन विवाह सम्बन्ध में भी थडी गड़बड़ी पैदा कर दी है । जैन शास्त्र दम्पति क लिण 'सरिमवया' विशेषण लगा कर पति पत्नी को उन्न सम्बन्धी योग्यता ना उल्लेख करता है । पर देखते हैं कि आज साठ वर्ष का बूटा डोकरा धारह वर्ष की लडकी का पाणिग्रहण करत नहीं लजाना । आप अपन अत करण में पूछिए- क्या यह जोडा है ? आपके दिल की 'याय परायणता और करुणा कहाँ चली गई है ? किस शास्त्र क आशर पर आप ऐसे कृत्य करत हैं ? आपने शास्त्र में 'असरिमवया ( बिमटश उन्न वाल ) ना पाठ आया होगा ।

प्रधानमन्त्रीजी ! क्या पुरुष समाज क यह कृत्य शोभाजनक हैं ?

प्रधानमन्त्री ( सर मनु भाइ मेहता )—जी नहीं ।

प्रधानमन्त्रीजी ! लोग न मरो धान मानते हैं और न शास्त्र की धान पर ध्यान दत हैं । इसका उपाय अब आप ही कर सकत हैं ।

भाइयो ! आपक प्रति मरे हृदय में लेश मात्र भी द्वेष नहीं है । द्वेष होता तो आपके दिन की बात ही क्यों करता । इसके विरुद्ध समाज की अवस्था देखकर मुझे कहणा आती है । उम्मी से प्रेरित होकर मैं आपकी बात दीवान साहब से कहता हूँ ।

श्रावक—आपन महान उपकार किया !

आपरी आँख न थोड़ी-सी गूरायी हो जाती है तो आप डाक्टर का बुलाते हैं। उस फीस भी देते हैं और उमरा उपकार भी मानते हैं। पर आप मूल को भूल जाते हैं। थोड़ा सा उपकार करने वाले का आप इतना मान सम्मान करें और मूल वस्तु बनाने वाली प्रकृति को कुछ भी पर्वा न करें, यह कितनी बुरी बात है? अगर आप प्रकृति के नियमों को मानपूर्वक पालन करेंगे तो आपको किसी प्रकार का कष्ट न होगा और सर्वत्र शान्ति का मन्थार होगा।

मित्रो ! मैंने आपसे स्त्री शिना और स्त्री स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में कहा है, इसका मतलब आप कुशिला या स्वच्छन्दता न समझें जिमसे जातीय जीवन नष्ट भ्रष्ट और कलंकित होता है। आप उन्हें प्राकृतिक नियम के अनुसार शिक्षित बनाकर स्वतन्त्र बनावें। अगर आप ऐसा न करेंगे तो समझ लीजिए कि आप प्रकृति के नियमों का अवहेलना करते हैं। प्रकृति को अवहेलना करने वालों का गौरवपूर्ण अस्तित्व रहना बहुत कठिन है।

बहुत से भाई प्राकृतिक नियमों से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वे परम्परागत रूढ़ि को ही प्राकृतिक नियम मान रहे हैं जैसे घूघट। घूघट कोई प्राकृतिक नियम नहीं है और न अनादि काल से चली आई प्रथा है। भारतवर्ष में एक समय ऐसा आया था जब स्त्रियों के लिए घूघट निकालना अनिवार्य हो गया था। इस प्रकार विशेष परिस्थिति उत्पन्न होकर घघट उपाय था, पर अब उसकी आवश्यकता नहीं है। घघट अब निरूपयोगी और स्वास्थ्य को हानिकर है। शास्त्रों में ऐस अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ घघट नहीं निकालती थीं।

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता का प्रतिपादन मैं कर चुका हूँ। पर यह समझ लेना चाहिए कि वह शिक्षा कैसी हो? शिक्षा लाभदायक भी हो सकती है और हानिकारक भी हो सकती है। बुद्धिमान पुरुषों का ऐसा शिक्षा प्रणाली कायम करनी चाहिए जिसमें दोषों से बचाव हो सके और लाभ ही लाभ उठाया जा सके। एक कवि ने अयोक्ति में कहा है —

तटिनि ! चिराय विचारय, विध्यभुवस्तव पवित्रायाः ।

शुभ्यन्त्या अपि युक्त, किं खलु रष्योदकाऽऽदानम् ॥ -

अधान्-हे नदी ! जरा विचार करो कि विध्याचल से तुम्हारा निफास हुआ है। तुम बड़ी पवित्र हो। ऐसी अवस्था में सूख जाने की नौजब आने पर भी क्या गली-कूचों का गँदला पानी ग्रहण करना तुम्हारे लिए योग्य है? नहीं।

कवि का आशय यह है कि नदी मूख भले ही जाय पर उसे गँदला पानी ग्रहण करना उचित नहीं है। इसी प्रकार कुशिक्षा या कुज्ञान से अशिक्षा या अज्ञान भला है।

स्त्री सम्मान में दुष्टाओं के गंदे विचारों का प्रवाह कितना भयंकर दरय उपस्थित कर देता है, इस सत्य की कल्पना आप कैसी क समय का स्मरण करके कर सकते हैं।

कैकेयी के माथ उमने पीहर से मथरा नाम की एक दासी आई थी। उमने मन्ल की अगरी पर चढ़कर रामचन्द्र के राजतिलक की नागर में होने वाली तैयारी देखी। उमके दिमाग में कुछ विचित्र भाव उभित हुए। वह दौड़ती दौड़ती कैकेयी के पास आई। बोली—अरी अभागिनी ! तेर सर्वनाश का समय आ पहुँचा है और तुम्हें

किसी धान का होना ही नहीं है । तू इतनी निश्चिन्त ब्रैठी है । तुझे नहीं मालूम, अयोध्या में आज यह उन्मत्त किम लिए हो रहा है ? सम्पूर्ण अयोध्या आज ध्वजा पताकाओं में क्यों सुशाभित हो रही है ? सुन, कल प्रातः काल राजा दशरथ राम को रात्रिभिहासन पर बिठला देंगे ।

मरल-हृदय्या कैकेयी पर इस वचन का कुछ भी असर न होता इस मन्थरा फिर विष उगलन लगी—मेरे लिए तो राम और भरत दोनों समान हैं । पर तू अपने पैर पर कुल्हाड़ा मार रही है । तू अपना भविष्य अधकारमय बना रही है ।

मन्थरा के चेहर पर क्रोध और विरक्ति के चिह्न देख कर पहलवा मरल हृदय्या कैकेयी कुछ न समझी और पूछन लगी—आज तो तुझे प्रसन्न होना चाहिए, पर देखती हूँ कि तू बड़ी चिन्तित हो रही है । तारी धातें मरा समझ म ही नहीं आ रही हैं । मुझे राम, भरत की तरह हाँ प्यारे हैं । काशान्या बहिन की भाँति ही यह मेरी संथा करते हैं । राम की ओर से मुझे किस धान का डर है ?

दुष्टमना मन्थरा ने उत्तर दिया—राजा तेरे मुह पर तेरा आदर करते हैं पर हृदय में वे कौशलया के प्रेमी हैं । तुझे मालूम है कि राम के राक्ष्याभियेक का समाचार भरत को क्यों नहीं दिया गया ? अरी भोली ! तू राजा के जाल को नहीं समझ सकती । धाम्तर में वे तुझे तनिक भी नहीं चाहते । अगर ऐसा न होना तो शतना छल-कपट क्यों करते ?

दुष्टों के संमर्ग में क्या-क्या अनर्थ नहीं होते ? कैकेयी के हृदय पर मन्थरा के वचन का असर हो गया ।



मंत्रियों की आवश्यक सूचना देकर जिस समय राजा दशरथ सर्व प्रथम वैश्या की महल में गए, सत्सा वैश्या का विकराल रूप देखकर सहम उठे। जो रानी मरे लिये मदा सिंगार किये करती थी महल के द्वार पर पैर धरते ही सुरप्राती हुई सामने आनाती थी और हाथ पकड़ कर मुझे भीतर ल जाती थी आज उमन यह विकराल रूप क्यों धारण किया है ? आप वह अँध उठाकर भी भरी ओर नहीं देखता। केश बिखरे हुए हैं। कपड़े सैन कुचैने और और अस्तव्यस्त हैं। मुह उतरा हुआ, लोठों पर पपड़ी जमी हुई और नाक से दीर्घश्वाम। यह सब क्या मामला है ?

राजा ने डरते डरते उमने शरीर को हाथ जगा कर पूछा—  
प्रिय ! आप तुम नाराज क्यों हो ? तुम्हारी यह हालत क्या है ? मैं राम की शपथ पूर्वक कहता हूँ—‘जा तुम चाहोगी, वही होगा।’

अब तक वैश्या चुप थी। ‘राम’ शब्द राजा के मुह से सुनते ही मरिणी सी फुफर कर बोली—‘मैं और कुछन ही चाहती। आपन पहले दो वचन माँगन की कहे थे, आप उन्हें पूरा कर लीजिए।’

दशरथ—अवश्य, बोलो क्या चाहती हो ?

वैश्या—पहले अच्छी तरह मोच लीजिए, फिर हॉ भरिये।

दशरथ—प्रिये ! सोच लिया है। माँगो।

वैश्या—फिर नहीं तो न का जायगी ?

दशरथ—वचन दकर मुफर जाना रघुकुल की मर्यादा के विरुद्ध है। तुम निर्भय होकर माँगो।

कैकेयी—अच्छा तो सुनिये । कल प्रातः काल होते ही राम को  
 दश वर्ष के वनवास के लिए भेज दीजिए और भरत को राज  
 हासन पर आरूढ़ कीजिए ।

कैकेयी के हृदयवेधक शब्द सुनते ही दशरथ मूर्छित हो गये ।

माडयो ! बहिनो ! जो कैकेयी दशरथ को प्राणों से अधिक  
 प्यार करती थी और राम को भरत से ज्यादा चाहती थी, उसीने  
 आज दुष्ट शिक्षा के कारण कैसा भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया !

प्रातः काल, अरुणोदय के समय, राम माता कैकेयी के महल में  
 शान करने जाते हैं । वहाँ कुङ्कराम मचा हुआ देग नम्रतापूर्वक पूछते  
 —माताजी ! आज आप उदाम क्या दीख पड़ती हैं ? पिताजी  
 भान-से क्यों पड़े हुए हैं ?

कैकेयी चुपचाप बैठी रही । उसके मुँह में कुछ नहीं निकला ।

रामचन्द्र फिर बोले—माताजी बोलिए । आज तो आप  
 बोलती भी नहीं ।

कैकेयी—राम, तुम बड़े मीठे हो । जान पड़ता है, थाप पट न  
 क हा शाला में शिक्षा पाइ है । पर तुम्हारी गणपलूमी की बातों में  
 समय मैं नहीं आने की ।

राम—माताजी, क्षमा कीजिए । मेरी समझ में कुछ नहीं आया ।  
 क्षमा कर मुझे साफ साफ सुनाइए ।

कैकेयी—ममके नहीं ? ममकना यही है कि तुम राजाजी के  
 प्यार हो और भरत नहीं । कौशल्या राजाजी की रानी हैं, मैं नहीं । मैं तो  
 रामी के सदृश हूँ । अगर भेदभाव न होता तो मरे भरत का राज्य

क्यों नहीं मिलता ? मैं तुम्हारे पिताजी से भग्न के लिए राज्य माँगा, वस वे नागञ्ज हो गये ।

राम—विशाल हृदय राम—कैरेयो की कठोर बात सुन कर कहते हैं—भाताजी ! आप ठीक कहती हैं । भरत को अवश्य राज्य मिलना चाहिए । हम में घुरा क्या कहा ? मैं आपका अनुमोदन करता हूँ । भरत मरा भाई है । आपने जिम्मा पराये के लिये थोड़ा ही राज्य माँगा है ।

राम वनवास के लिए तैयार हो गये । उन्होंने राज्य तिनक की तरह त्याग दिया । उसी निष्प्रणता के कारण शान्ति के दूत राम को लोग पुहंपोत्तम और इश्वर कहते हैं । मत्र है, प्रकृति का विजय करने वाला ही महापुरुष कहलाता है ।

राम के वनवास की खबर जब सीता को हुई तो वह पुलकित हो उठी । उसने सोचा—मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ । मुझे सेवा करने का कैसा अच्छा अवसर मिला है । गृहवास में दाम—दासियों की भीड़ के कारण पतिमत्रा का पूरा सौभाग्य प्राप्त न होता था, वनवास करने से यह सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ।

बढ़ियो ! सीता के त्याग की नरक ध्यान दीजिए । वह आज की नारी नहीं थी कि सुर्य म गनी गजी बोले और विपत्रा पड़ने पर मुह मोड़ ले । इसीलिए कहते हैं—राम से जो शक्ति थी वह सीता की शक्ति थी ।

भगवती सीता ने कभी कष्ट का अनुभव न किया था । वह चाहती तो अपने मायके चली जा सकती थी या अयोध्या में ही रह सकती थी । उसके लिए कहीं भी किसी वस्तु की कमी नहीं थी । पर

नहीं, माता को त्याग का आदर्श गड्डा धरना था, निम्कें महारे स्त्री समान त्यागभाव वा और पतिपरायणता का पाठ सीख सक।

राम और सीता को वन जाते देख वीर लक्ष्मण भी तैयार हो गये। उनकी माता सुमित्रा ने उसे उपदेश देते हुए कहा—चाओ रथ, राम को दशरथ के समान समझना, जानकी को मरी जगह मानना, वन को वन नहा अयोध्या मानना, चाओ पुत्र। तुम्हारा कल्याण हो।

अहा! इन रानियों की तारीफ किस प्रकार की जाय। आन की माताएँ अपने पुत्रों को कैसी नीच शिक्षा देती हैं। बहिनो! इन रानियों क बदर चरित का अनुकरण करो, तुम्हारा घर स्वर्ग बन जायगा।

राम, लक्ष्मण और सीता ने वन की ओर प्रस्थान कर दिया। दशरथ का दहान्त हो गया। जब भगत की फटकार मिली तब कैफया की बुद्धि ठिगान आइ। बढ पढ़ता लगी—हाय! मैंने यह क्या कर डाला। मैंने अपना मात की अयोध्या का शमशानभूमि बना लिया और प्यारे राम को वनवास दिया। आइ! कितना गजब हो गया। हाय! मैं राम को कैसे मुह दिखला सकूंगा। आ मरे राम, क्या तुम मुझे जमा करोगे? मैं किम् मुह म राम को मरे राम कह सकती हूँ? जिसे पराया मानकर मैंने वनवास के लिए भेज दिया, उसे अपना मानन का मुझे क्या अधिकार रहा? राम! राम! ओ राम! क्या तुम इस दुर्घटना को भूल सोगे? क्या तुम फिर मुझे माता कह कर पुकारोगे? हाय! मैं दुष्टा हूँ। मैं पापिनी हूँ। मैं पति और पुत्र की द्रोहिणी हूँ। मैंने निष्कलक सूर्यवश को कलकित किया। मेरे प्यारे राम! इस अभागिनी माता की निष्ठुरता को भूल जाना।

भरत भी मुझे 'माँ' नहीं रहता तो राम मुझे कैसे माता मानेगा ? मैंने उसके लिये क्या कर्म छोड़ी है ? फिर भी राम मरा विधित पेटा है । वह अपनी माता को माफ कर देगा ।

इस प्रकार अपने आपको निश्कार कर कैकेयी ने भरत से कहा— 'मुझे रामचन्द्र से मिला दो । मैं भूली हुई थी । मैंने धार पाप किया है । मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगई थी । राम को ऐसे पिता मरा जावन रहित हो जायगा । अगर तुमने राम से मुझे न मिलाया तो मैं प्राण त्याग दूंगी ।

पहल तो भरत ने साफ इन्कार कर दिया, पर बाद में यह जान कर कि माता का अहंकार चूर चूर हो गया है और वह सच्चे हृदय से प्रश्नात्ताप कर रही हैं, रामचन्द्र के पास लेजाना स्वीकार किया ।

भरत चित्रकूट पहुँच । कैकेयी मारे लज्जा के राम के सामने न जा सकी । वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ी हो गई । उसकी लोंगों आँगों में आँसुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी । वह मन ही मन मोचन लगा—बेटा राम ! क्या अब मेरा अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता ? क्या तुम मेरा मुँह भी दफना पस न करोगे ? मैं तुम से मिलने आई हूँ, पर सामने आन का साहस नहीं होता । राम ! क्या इस अपराधिनी माता को क्षमा न दोगे ? मैं जानती हूँ, किहाय ! मैंने अपना लाडली बहू जानकी को अपने हाथ में छाल के बन्ध पहना कर धन की आर खाना किया है । इससे उत्कर निठुरता और कर्म क्या कर सकता है ?

रामचन्द्र माता कैकेयी का विलाप सुन कर घूमते घूमते उसके पास जा खड़े हुए और 'बड़े मातरम्' कह उसने पैरों में गिर पड़े ।

कैकेयी चौक उठी । दुःख पश्चात्ताप और लज्जा के त्रिविध भावों में उमका हृदय जलने लगा । प्रेम के आँसू बहाती हुई कैकेयी ने कहा—

मैं नहीं जानती थी तुम को, तुम प्ये हो तुम इतने हो ।  
 उसका पासग भी नहीं हूँ मैं गर्भार कि तुम जितने हो ॥  
 कौशल्या, तेरा राम नहीं, यह राम तो भरा घेटा है ।  
 मेरा यह घन है जीवन है मेरा यह प्राण कलेजा है ॥  
 मथरा राँट की सगति स हा ! मैं क्या उलगात किया ।  
 अपने ही हाथों अपने घेटे पर बनाघात किया ॥  
 अथ दुनिया की बहिनो सोखो, नीचों को मुँह न खगाना तुम ।  
 अथ यह बेदियो ! ऐसों की, सगति में मत फँस जाभा तुम ॥  
 जा दुष्ट दासी हूँ वे स्वाग नित नया भरती हूँ ।  
 बरबाद घरों को बहुओं को नाना प्रकार से करती हूँ ॥  
 हो मुझसे घृणा तुम्हें तो मेरे जीवन से रिषा ला तुम ।  
 दुष्ट अनुचरी सहचरी को, घर में भी मत घुमने दो तुम ॥

राम रूपी प्रचण्ड सूर्य के तेज से कैकेयी के हृदय में आये हुए दुष्ट विचार रूपी गन्धला जल मूरग गया । कैकेयी का कुलपित हृदय पिघल कर आँसुओं के रास्त बह गया । कैकेयी के आँसुआ ने उमके अन्त करण की कालिमा धोकर माफ कर दी । कैकेयी के पश्चात्ताप की आग में उमकी मलीनता भस्म हो गई । कैकेयी अब मोन के समान निर्मल बन गई ।

अनेक भाई विपत्ति को अनिष्ट मानते हैं और उनमें बचन के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं । पर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जय तो बात ऐसी नहीं है । विपत्ति आत्मा का बल बढ़ाने वाली सम्पत्ति है ।

विपत्ति के साथ सघर्ष करके पुरुष महापुरुष बनता है। विपत्ति मोई हृद मानवीय शक्तियों को जगती है। विपत्ति मनुष्य के अंज की, पुरुषार्थ का, धैर्य की और माहम की कमौरी है। विपत्ति मफलता का सगी है। जो महाप्राण पुरुष विपत्ति का सहप अङ्गीकार करता है, उसी को मफलता प्राप्त हाती है। जब तक मनुष्य विपत्ति का भोग नहा बनता तब तक उसका व्यक्तित्व पूरणरूपेण पुष्ट नहीं होता। कहां तक कहें, इतिहास बतलाता है कि मनुष्य की सम्पूर्ण महिमा का भेय विपत्ति का है। रामचन्द्र बनबाम की विपत्ति न भोगत और राव महलों में निबाम करत हुए सम्पत्ति की गोद में छोडा फगत रहते तो कौन उनकी रामायण बनाने बैठता ?

कैकेयी न रामचन्द्र से कहा—वत्स, अयोध्या लौट चला और राज्यभार अपने मिर पर ल लो।

राम—माताजी, इस समय अयोध्या लौटना, अयोध्या से त्याग के आदर्श का देश निकाला देग होगा। जहाँ त्याग का आदर्श न होगा वहाँ शांति नहीं रह सकती।

कैकेयी और राम में बहुत देर तक इसी प्रकार की बातें होती रहीं। राम अपने संकल्प पर दृढ थे और कैकेयी उन्हें मनाने में व्यस्त थी। एक ओर माता की नाराजो और दूसरी ओर आदर्श का हनन। तिस पर मुसीबत यह थी कि भग्न राज्य स्वीकार न करते थे। जटिल समस्या थी। वह कैम हल हो ?

इतने में सीता को युक्ति सूझी। राम से कहा—नाथ, भरत राज्य स्वीकार न करेंगे तो अराजकता फैलना अवश्यभावी है। इस अनिष्ट को टालने के लिए अगर आप अपने मिर पर राज्यभार लेकर फिर भरत को मौप दें तो क्या हानि है ? आपका दिया हुआ राज्य

भरत समाल लेंगे। इसमें आपका प्रण भी भंग न होगा और अराजकता भी न फैलेगी।

मित्रो ! भरत जैसे भाई अभी कहीं दिखलाई पड़त हैं ? आज हाथ भर जमीन के टुकड़े के लिए एक भाई दूसरे भाई पर हाथ मार करने में व्यस्त दिखाई देता है। मड़ी सड़ी धानों पर मुकद्दमाजी होती है। लाखों रुपये कचहरियों में भले ही नष्ट हो जाएँ पर भाई के पल्ले पैसा भी न पड़े। यह है आज की मातृभावना।

दीवान साहब के कुटुम्ब की यहाँ उपस्थित यह शिक्षित बहनों अगर बीरानेर प्रान्त की बहिनों को अपने समान बनाने का प्रयत्न करें तो बहुत बड़ा काम सहज ही हो सकता है।

हमें मधरा के समान शिक्षिकाओं की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा में दोषों का प्रवेश न होना चाहिए, इस बात का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। निर्दोष स्त्रीशिक्षा का सूर्य उदय होना पर समाज का अधकार नष्ट हो जायगा और समाज सुख शान्ति का अधिकारी बनगा।

भीनामर  
६-११-०७







## सूक्तमह



सकडालपुत्र न भगवान् महावीर का धर्म अंगीकार कर लिया है, यह सुनकर उमका पूर्वगुरु गोशालक अपने धर्म पर पुनः आरुढ़ करने के लिए उमके पास आया ।

मित्रो ! यह कह देना आवश्यक है कि निम्की धम पर पूरी आस्था हो जानी है उमे फिर कोई टिगा नहीं मरगा । महावीर के धर्म में और गोशालक के धर्म में एक बड़ा अन्तर यह था कि महावीर आत्मा को कर्त्ता मानत थे और समार में इमी गिद्धान्त का प्रचार कर रह थे, जब कि गोशालक इस भिद्धान्त से विलकुल अनभिज्ञ था । यह नियतिवादी था । उमका कहना था कि जो कुछ होना है यह होनहार अर्थात् भवितव्यता से ही होता है । सकडाल भी पहले इमी मत को मानने वाला था परन्तु अब उसे इस पर विश्वास नहीं रहा था ।

अब वह दृढतापूर्वक यह मानने लगा था कि जो कुछ होता है वह आत्मा के कर्म का ही फल है।

आत्मा को कर्ता मानने वाले भारत में और भी बहुत से धर्म नायक हो गये हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऐसा ही उपदेश दिया था—

उद्धरेदात्मनात्मान, नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मीवात्मनो बभ्रुरात्मैव रिपुरात्मन ॥

अर्थान्—हे अर्जुन! अपने आत्माक द्वारा ही आत्मा का उद्धार करा। आत्मा ही अपना शत्रु और आत्मा ही अपना रिपु है।

गीता के इस उद्धरण से आप लोग समझ गये होंगे कि महावीर प्रभु के उपदेश में और श्रीकृष्ण के उपदेश में कितनी समानता है। 'अप्पा कत्ता विकत्ता य' का उपदेश 'उद्धरेदात्मनात्मान' से मिलतुल मिलता-जुलता है।

इस भिन्नान्त के विरुद्ध होनहार को कर्ता मानने पर हमारे सामने ऐसे प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं, जिनका निराकरण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, कल्पना की निम्न एक लडका स्कूल में पढ़ने जाता है। प्रश्न यह है कि उस पढ़ाने लिखाने, प्रश्नोत्तर करने आदि की क्या आवश्यकता है? भवितव्यता का मत मान लेने पर इस मायापर्षी की कुछ भी उपयोगिता नहीं रह जाती। अगर लडका विद्वान होना है तो वह भवितव्यता के अनुसार स्वयं विद्वान हो जायगा। पर लोकव्यवहार में हमें इससे सर्वथा विपरीत देखते हैं। शिक्षक लडके को पढाता है और लडका स्वयं पुरुषार्थ करता है

तय यह प्रह लिय कर विद्वान् धनता है । अगर शिक और शिष्य दोनों ञ्योग करना छोड़ दें और होनहार के भरोसे बैठे रहें तो परिणाम का आयगा, यह समझन में कठिनाई नहीं हो सकती । इससे यही परिणाम निरलता है कि कत्ता के पिना कम होना शक्य नहीं है । मिट्टी में घना बन जाने का शक्ति अवश्य है, पर कभार के पिना घड़ा बन नहीं सकता । भवितव्यता पर निर्भर रह कर अगर वहिनें चूल्हे के पास आटा रख दें तो रोटी बन सकती है ? में समझना हूँ, भवितव्यता के भरोसे बैठ कर मारा ममार यदि चार दिन के लिए अपना अपना उगाग छोड़ दे तो ससार का क्मी तुर्गति हो कि जिसका ठिकाना न रहे । ममार में घोर हाहाकार मच जायगा । इस प्रकार भवितव्यता का सिद्धान्त अपन आपमें पोच ही नहीं है वरन् वह मानवसमान की उद्योगशीलता में घड़ा रोधा है और लोगों को निक्कामा एव आलसी बनाने वाला है । यही सय मोच कर मकडाल ने भगवान् महावीर का सिद्धान्त भक्तिपवक स्वीकार कर लिया ।

ज्यों ही गोशालक मकडाल के पास पहुँचा, मकडाल ने समझ लिया कि मेरे यह पूर्वगुरु फिर अपना सिद्धान्त मनवाने आये हैं । मकडाल ने गोशालक की तरफ से मह पूरे लिया । उसके ललाट पर सल पड गये । गोशालक मूर्ख ता था नहीं । वह बड़ा बुद्धिमान् और विचक्षण था । वह मकडाल का अभिप्राय ताड गया ।

मित्रो ! यह विचारणीय है कि गोशालक मकडाल का पूर्वगुरु था । फिर उसने अपने पुराने गुरु क प्रति ऐसा व्यवहार क्यों किया ? इसका कारण यह है कि मकडाल को विश्वास हो गया था कि गोशालक का सिद्धान्त मेरे लिए और जगत् के लिए अकल्याणकारी है । ऐसे सिद्धान्तवादी के प्रति विनय भक्ति प्रदर्शित करना उसके सिद्धान्त

को मान देना है। हमसे बड़े अनर्थ की समावना रहती है। गोशालक के प्रति मकडाल के इस व्यवहार का यही कारण था। इसी का नाम असहयोग है।

निस प्रकार धर्म मिद्धान्त के लिए अनुग्रह को असहयोग करना आवश्यक है, उसी प्रकार लौकिक नीतिमय व्यवहारों में अगर राज्य शासन की ओर से अन्याय मिलता हो तो ऐसी दशा में राज्यभक्तियुक्त सवितय असहकार—असहयोग—करना प्रजा का मुख्य धर्म है। वह प्रजा नपुंसक है जो चुपचाप अन्याय को सहन कर लेती है और उसके विरुद्ध कुछ नहीं करती। गेभी प्रजा अपना ही नाश नहीं करनी परन्तु उस राजा के नाश का भी हतु बन जाती है, निस की वह प्रजा है। निस प्रजा में अन्याय के पूर्ण प्रतीकार या सामर्थ्य नहीं है उस कम से कम इतना तो प्रकट कर ही देना चाहिए कि अमुक कानून या कार्य हमारे लिए हितकर नहीं है और हम उसे नापसन्द करते हैं।

प्रजा को विगाडना राजनीति नहीं है। राजा वही कहलाना है जो प्रजा की सुव्यवस्था करे। जो राजा प्रजा की सुव्यवस्था नहीं करता और प्रजा को कुत्र्यसनों में डालता है, जो अपनी आमदनी घटाने के लिए आषकारी जैसे प्रजा के स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले विभाग स्थापित करता है, फिर भी प्रजा अगर चुपचाप बैठी रहती है तो समझना चाहिए वह प्रजा चायर है।

प्रजा के हित का नाश करने वाली घातें कानून के द्वारा न रोकने वाला राजा, राजा कहलाने योग्य नहीं है। -

राजा के भय में अपकारक कानून को शिरोधार्य करना धर्म का

और देश को इतनी भीषण क्षति पहुँची कि सदियों व्यतीत होजाने पर भी यह संभल न सके।

कौन-सा कार्य न्यायसंगत है और कौन सा अन्याययुक्त है, जिस कानून से प्रजा के कल्याण की संभारना है और जिससे अकल्याण की, यह बात प्रत्येक मनुष्य नहीं समझ सकता। समझदारों को चाहिए कि वे प्रजा को इस बात का ज्ञान कराएँ। जो व्यक्ति समय-समय पर प्रजा को अपनी भलाई-बुराई का ज्ञान कराते रहते हैं, और बुराई से हटकर भलाई की ओर ले जाते हैं, जो जनता का पथ प्रदर्शन करते हुए स्वयं आगे आगे इस पथ पर चलते हैं, उन्हें जनता अपना पूज्य नेता मानती है और उन्हें श्रेष्ठ पुरुष मान कर उनके पीछे-पीछे चलती है। गीता में कहा है—

यद्यश्चरति धेष्टस्तत्तद्वेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

मित्रो ! सफटाल, जानि का कुमार होने पर भी श्रेष्ठ पुरुषों में गिना जाता था। अगर वह गोशालक के मिद्धान्तों से असहयोग न करता तो दूसरे भोले लोग इस मिद्धान्त के आग सिर मुका देते और अक्रमण्य बन जाते।

आप स्वयं विचार कीजिए कि कर्त्ता को भूल जाने से क्या काम चल सकता है ? सिर्फ होनहार के भरोसे बैठे रहने से कोई काम बन सकता है ? मैं अभी यह चुफा हूँ कि होनहार के भरोसे रोटी बनाने का काम तो चार रोच के लिए भी अगर यह बहिनें स्थगित कर दें तो वैसी स्थिति उत्पन्न हो जाय ? होनहार पर निर्भर रहकर अगर पुरुष एक दिन भी बख धारण न करें तो कैसी शीते ? नगा रहने के

लिए किसे षड किया जा सकता है ? जय होनहार को ही स्वीकार कर लिया तो किसी भी अपराध का फर्ता कोई मनुष्य नहीं ठहरता ।

नियतिवादी के मामले कोई डटा लेकर खडा हो जाय और उसमें पूछे—'यताओ, यह डटा तुम्हारे मिर पर पड़ेगा या कमर पर ? यह क्या उत्तर देगा ? यही कि जहाँ तुम मारना चाहोगे वहाँ ।' उसमें क्या यह मतलब न निकला कि नियति ( होनहार ) यत्ता नहीं है । जहाँ मारने वाला मारना चाहेगा वहाँ डटा पडगा, इसमें मिस्र हुआ कि होनहार मारने वाल के हाथ में है ।

आप लोग महावीर के शिष्य होकर भी वहाँ तक कहत रहोग कि—'हम क्या करें ? हमार हाथ म क्या है ? जो बुद्ध होना है वह तो होकर ही रहेगा ।' कभी आप काल पर उत्तरदायित्व थोप देते हैं—'क्या करें, समय ही ऐसा आ गया है ।' और कभी स्वभाव का रोना रोना लगत हैं—'लाचारी है, इसका स्वभाव ही ऐसा पड गया है ।' गेद ! आप महावीर क अनुयायी होकर जड पर जयापगारी डालते हैं ! भूल होता है आपकी और जयापदारी डाली जानी है जड पर । यह कैसी उल्टी समझ है ? आप यह क्यों नहीं कहत कि थोप हमारा है । हम स्वयं ऐसे हैं ।

जो मनुष्य अपना दोष स्वीकार कर लेता है उसकी आत्मा बहुत उँची चढ जाती है । अपनी भूल धताने वाले को अपना गुण मानो और भूलों का साहस के साथ निराकरण करा तो फिर गेगना तुममें कितना चमत्कार आ जाता है ।

किमान जर्पा ऋतु आने पर गेेत म हल न चलाने तो क्या ह गा ? अगर वह मोचन लग कि गेेती क्षाी है, धान्य गपनना है तो

कौन रोक सकता है ? अगर धान्य नष्ट उपनता है तो मेरे प्रयत्न करने पर भी नहीं उपजेगा । दोना हलतों में मेरा प्रयत्न व्यर्थ है । जैसी होनहार होगी, वही होगा । तब काहे को अपने शरीर का पमाना बहाऊँ ?

इसी प्रकार जुलाहा भी होनहारवाणी धन पर घँठ रहे और जगत् के समस्त कार्यकर्ता यही सोचने लगे तो जगत् के व्यवहार कितनी दूर तक जारी रह सकेंगे ? कष्टिए, इस सिद्धान्त में ममार का काम चल सकता है ?

‘नहीं चल सकता !’

इस सिद्धान्त को मान कर जनता कहीं अकर्मण्य न बन जाय, यह सोचकर सक्ताल को गोशालक के साथ असहयोग करना पडा । महावीर का सिद्धान्त उसे गचिकर और हितकर प्रतीत हुआ । महावार पुरुषार्थ वाणी थे । वे आत्मा को कर्ता मानते थे ।

मित्रो ! सक्ताल ने अन्याय में असहयोग कर लिया था । सक्ताल जाति का कमार था । मिट्टी के घर्तों की ५०० दुकानों का मालिक था । तीन करोड़ स्वण मोहरों का अधिपति और एक हजार गाथों का प्रतिपालक था । वह मन्त्र नीतिपूण व्यवहार का ध्यान रखता था ।

गोशालक के प्रति असहयोग करके भी सक्ताल ने अपनी मध्यता नहीं गँवाई । गोशालक के जाने पर वह उठा नहीं इसका कारण यह था कि गोशालक अपने सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करने गया था । उस समय उसका ‘मिरान’, अपने सिद्धान्त को स्वीकार कराना था । सच्चा असहयोगी किसी व्यक्ति-प्रिये की अवज्ञा नहीं

करता। किसी व्यक्ति के प्रति उसके हृदय में घृणा या द्वेष का भाव नहीं होता। असहयोगी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर अन्याय का प्रतीकार करता है और अन्यायी को सहयोग न देना भी अन्याय के प्रतीकार के अनेक रूपों में से एक रूप है। असहयोग प्रत्येक मनुष्य का न्यायसगत अधिकार है, यदि उसका सन शर्तें यथोचित रूप में पालन की जाएँ।

सकडाल के असहयोग के कारण गोशालक को निराश होना पड़ा। वह भगवान् महावीर के सिद्धान्त पर अटल और अचल रहा।

यहाँ बैठे हुए भाइयों में शायद ही कोई होनहारवाणी होगा। पर प्रेमे बहुत से लोग मिलेंगे जो कहा करते हैं—‘भगवान् करते हैं सो होना है। उनकी मान्यता यह है कि हमारे किये कुछ नहीं होता। हम नाचीज हैं। हम भगवान् के हाथ की कठपुतली हैं। वह जैसा नचाता है, हमें नाचना पड़ता है।’

मैं कहता हूँ, भाइयो! भ्रम को दूर कर लो। इससे तुम्हारे निराम में, तुम्हारा चमत्ता में और तुम्हारे पुण्यार्थ में राधा पड़ता है। इस भ्रम के कारण तुम्हारी स्वातन्त्र्य भावना खूब गई है। गीता को देखो। वह कहती है—

न कर्तव्यं न कर्माणि, क्षोदस्य सृजति प्रभुः ।

न कमफलसयोगा स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

परमात्मा किसी मनुष्य का न कर्तृत्व बनाता है, न कर्म। न वह



कर्ता को कर्मफल देने की व्यवस्था ही करता है। यह सब माया करती है।

जैन माई भी अन्वयिश्चाम मे दूर नहीं हैं। वे भी 'ग्या करें महाराज, कर्मों की गति।' कह कर अपना सारा दोष कर्मों के मिर मद देते हैं, मानो कर्म बिना किये हुए ही उन्हें फल देने आ दूटे हैं। स्वयं बुद्ध करने वाले ही नहीं हैं।

मित्रो! आन गोशाला दिख्वाइ नहीं देता, पर उमका उपदेश गोशालक का सूक्ष्म रूप धारण करके आपके मगान में घूम रहा है। उमके कारण आप अपनी उद्योगशीलता को भूल रहे हैं। आपने अपनी क्षमता की ओर से दृष्टि फेरली है। आप अपने आपको अकिंचित्कर मान बैठे हैं। यह गौनता का भाव दूर करो। अपनी असीम शक्ति को पहचानो। मधे वीरभक्त हो तो अपने को कर्ता—कायत्तम मान कर कल्याणमाग के पथिन् बनो।

किना भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर न बनो। समझ लो, तुम्हारी एक मुड़ा म स्वग है, दूसरी में नरक है। तुम्हारी एक मुजा में अनन्त समार है और दूसरी मुजा में अनन्त मगलमयी मुक्ति है। तुम्हारी एक दृष्टि में घोर पाप है और दूसरी दृष्टि में पुण्य का अक्षय भंडार भरा है। तुम निसर्ग की समस्त शक्तियों के म्यामी हो, कोई भी शक्ति तुम्हारी स्वामिनी नहीं है। तुम भाग्य के गिलौना नहीं हो, बरन् भाग्य के निर्माता हो। आन का तुम्हारा पुम्पार्थ कल भाग्य बन कर दास की भाँति, तुम्हारा सहायक होगा। इस लिए पे मानव कायरता छोड़ो। अपने ऊपर भरोसा रख। तू सय कुछ है, दूसरा

खुद नहीं है। तेरी क्षमता अगाध है। तेरी शक्ति असीम है। तू  
ममर्थ है। तू विघाता है। तू प्रदा है। तू शकर है। तू महावीर  
है। तू बुद्ध है। शही 'सोडह' का वास्तवि अर्थ है

भीनासर }  
 २०-११-२७ }





## आश्चर्य



[ सर मनु भाई मेहता जो बडौदा स्टेट और धीरानेर स्टेट के प्रधानमंत्री पद पर रहकर अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और जो आजरुज ग्वालियर रियासत के प्रधानमंत्री पद को सुशोभित कर रहे हैं आचार्य महाराज के अनुगमियों में से एक हैं। आचार्य महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर आप उनका अनुसारी हुए। आचार्य महाराज जब धीरानेर या आसपाम-भीनासर आदि विराजमान होते थे, तब सर महता अकसर उपदेश श्रवण का लाभ लते थे। ]

लन्दन में हुई पहली गोलमेज कांफ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए सर मनु भाई जब विलायत जाने लगे तब आप आचार्य महाराज के दर्शनार्थ आये थे। उस समय आचार्य महाराज ने जो प्रभावशाली उपदेश दिया था वह सभी के लिए उपयोगी है अतः उसका भार यहाँ दिया जाता है। ]

गायकवाड सरकार के पूर्वकालीन तथा बीकानेर सरकार के वर्तमानकालीन प्रधान सर मनु भाई महता । और उदयपुर सरकार के पूर्वकालीन प्रधान राजेश्री कोठारी बलवन्तमिहजी । तथा ममन्त सज्जनगण ।

आज मेरा और सर मनु भाई मेहता का यह मिलन एक महत्वपूर्ण अवसर पर हो रहा है, अतएव यह मिलन भी महत्वपूर्ण है । सर मेहता विलायत का प्रवाम रुग्ण वाले हैं, और जैसा कि बतलाया गया है, शायद आज ही रवाना हो जाएंगे । आप लोगों को यह विदित होगा कि महताजी का यह प्रवाम न तो अपने किसी निजी प्रयोजन के लिए है और न बीकानेर सरकार के किसी कार्य के लिए । आज जो विकट समस्या न केवल भारतवर्ष के किन्तु सारे समार के सामने उपस्थित है, उसको हल करने में अपना योग देने वे जा रहे हैं । हमारे शत्रुओं में व भारतवर्ष के भाग्य का निपटारा करने के लिए इग्नेएड जा रहे हैं ।

श्रीवान साहय अधिकार सम्पन्न व्यक्ति हैं । इस यात्रा के प्रसंग पर सभी लोग अपना अपनी मयादा के अनुसार उनकी यात्रा के प्रति शुभ-कामना प्रकट करेंगे । मैं भी साधुत्व की मयादा के अनुसार आपका शुभ उद्देश्य के प्रति मशनुभूति प्रकट करता हूँ । मैं अकिंचन अनगार न हूँ जा भेंट दे सकता हूँ, वह उपदेश रूप ही है । साधुओं पर भी राजा का उपकार है और उस उपकार से उच्छृंग होने का उपदेश ही एकमात्र उनके पास उपाय है ।

साधुओं के जीवन और धर्म की रक्षा में पाँच वस्तुएँ महायत्न होती हैं । इन पाँच के बिना साधुओं का जीवन एव धर्म टिकना कठिन है इनमें तीसरा सहायक राजा माना गया है ।

पर्जन्य इव भूतानामाधार पृथिवीपति ।

विकलेऽपि हि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपति ॥ १

राजाऽयं जगतो वृद्धैर्दुष्टैश्चाभिपगत ।

नयनानन्दजनन, शशाङ्क इव वारिधे ॥

इन काव्यों का अर्थ गम्भीर है। इन्हीं विशद व्याख्या करने का समय नहीं है। अतएव सक्षेप में यहाँ मगध लीजिए कि राजाओं द्वारा धर्म की रक्षा हुई है। राजा द्वारा देश को स्वतन्त्रता की रक्षा होती है, प्रजा में शान्ति, सुव्यवस्था और अमन चैन कायम किया जाता है, तभी धर्म की प्रगति होती है। जहाँ परतन्त्रता है, जहाँ अराजकता है और जहाँ परतन्त्रता-य हाहाकार मचा होता है वहाँ धर्म को कौन पूछता है ?

हिन्दू शास्त्र में धर्म की रक्षा का रहस्य सक्षेप में कहा है —

यदा यदा हि धर्मस्य स्तानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

हिन्दू शास्त्र के अनुसार जब अधर्म बढ जाता है, अधम बढ जाने से धर्म का ह्रास हो जाता है, तब धर्म की रक्षा के लिए ईश्वर अवतार लेता है। तात्पर्य यह है कि किसी महान् शक्ति के सहयोग बिना धर्म की रक्षा नही होती। एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ने भी कहा है —

न धर्मो धामिकैर्दिना

अर्थान् उर्मात्माओं के बिना धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

मर मेहता की यह चौथी अवस्था संन्यास के योग्य है, मगर एक कर्मयोगी मन्यामी का जो कर्त्तव्य है, व वही कर रहे हैं। इसी

कारण सर मनु माइ वृद्धावस्था में भी अपने अनुभव को उम काय में लगा रहे हैं, जिसने लिए आप विलायत जा रहे हैं । सर महता को धर्म की रक्षा करने का यह अपूर्व अवसर मिला है ।

सर मनु माइ यद्यपि अनभिज्ञ नहीं हैं, तथापि मैं इस अवसर पर रास तौर पर यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि धर्म को लक्ष्य बनाकर जो निर्णय किया जाता है वही निर्णय जगत् के लिए आशीर्वाद रूप हो सकता है । धर्म की व्याख्या हो यह है कि वह मंगलमय कल्याणकारी हो । 'धम्मो मंगलमुक्तिदु' अर्थात् जो उन्मृष्ट मंगलकारी हो वही धर्म है ।

क्यों यह न सोचे कि धर्म किसी व्यक्ति का ही हो सकता है । राउण्ड टेबिल कॉन्फ्रेंस में, जिसने लिए महतानी जा रहे हैं, धर्म का प्रश्न ही क्या है ? मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गुलाम और अत्याचार पीड़ित प्रजा में वास्तविक धर्म का विकास नहीं होता, इसलिए धार्मिक विनाश के लिए स्वातन्त्र्य अनिवार्य है और इसी समस्या का समाधान करने के लिए लन्दन में कॉन्फ्रेंस की जा रही है ।

श्रेष्ठ पुरुष शांतिपूर्वक विचार करके मय की शांति का उपाय करते हैं ।

जिस निर्णय से बहुजन-समाज का कल्याण होता है, वही धर्म का निर्णय कहलाता है । 'महाजनो यन गत म पथा' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष, जिस मार्ग पर चलते हैं, जो निर्णय करते हैं वह निर्णय सभी को मान्य होता है । श्रेष्ठ पुरुष अपने उत्तरदायित्व का भलीभाँति ध्यान रखते हैं और गम्भीर सोच विचार करके, धर्म और नीति को सामने रखकर, ऐसा निर्णय करते हैं जिसे सर्व साधारण मान्य करते हैं और जिससे सब का कल्याण होता है । इस अपेक्षा से समाज

व्यवस्था की रचना करने वालों को इश्वर का दर्जा दिया गया है। उन-कल्याण के लिए नीति-मर्यादा का विधान करने वालों को अगर 'विधाना' या 'मनु' का पद दिया जाय तो हममें अनीचित्य भी क्या है?

मर मनु भाई यद्यपि स्वयं विवेकशील हैं, बुद्धिमान हैं, तथापि हम परमात्मा में प्रार्थना करते हैं कि उन्हें ऐसी मद्बुद्धि प्राप्त हो, जिससे वे सत्य के पथ पर टटे रहें। नाजुक में नाजुक प्रसंग उपस्थित होने पर भी वे सत्य से डरना भी विचलित न हों। सत्य एक ईश्वरीय शक्ति है जो विजयिनी हुए बिना नहीं रह सकती। चाहे मगर ममार उलट-पलट हो जाय मगर सत्य अटल रहेगा। सत्य को कोई बदल नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य का जीवन-लीला एक दिन समाप्त हो जायगी, ऐश्वर्य त्रिस्वर जायगा परन्तु सत्य की सेवा के लिए किया गया उत्सर्ग अमर रहेगा। सत्य पर अटल रहने वालों का वैभव ही म्यायी रहेगा।

माधु के नात में सर मनु भाई को यही उपदेश देना चाहता हूँ कि दूसरे के असत्यमय विचारा के प्रभाव से दूर रह कर, शुद्ध मस्तिष्क से सत्य विचार करना और चाहे विश्व की समस्त शक्ति मगठित होकर विरोध में खड़ी हो सत्र भी अपन सत्य को न छोड़ना। त्रिभी के असत्य विचारा की परछाई अपने ऊपर न पड़ने देना। शास्त्रानुसार और अपने अंतर के मकेत के अनुसार जो सत्य है, उन्ही को विजयी बनाना बुद्धिमान का कर्तव्य है और सत्य की विजय में ही सदा कल्याण है।

ईश्वरीय कार्यों में बुद्धि को स्वतंत्र रक्खा जाता है या परतंत्र ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। परमन्त्र बुद्धि से जो काम किया जाता

है उसक विषय में, थोड़े मे शर्तों में कुछ नहीं रद्द ना सकता ।  
तथापि हम और सकेत सा कर देना आवश्यक है ।

यद्यपि काय की सहायता के लिए प्रत्येक व्यक्ति कानून-कायदा  
बहुजन समाज आदि का आश्रय लेता है, लेकिन यह मत्र है  
परतंत्रता । प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का पुत्र है । प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धि है  
और प्रत्येक की बुद्धि में जागृति है । जिमन सामाजिक लाभ के लोभ  
मे बुद्धि की जागृति पर पर्दा डाल दिया है उसकी बुद्धि की शक्ति  
अवश्य क्षिप्त गई है, मगर जिसने स्वार्थ का पर्दा अपनी बुद्धि पर सं  
हटा दिया है, वह तुच्छ से तुच्छ आत्मा भी महान बन गया है ।  
इसके लिए अनेक प्रमाण मौजूद हैं । हमी निस्वार्थ विचार शक्ति के  
प्रभाव से गाल्मीकि और प्रभव चोर महर्षि के पद पर पहुँचे थे ।  
हम लिए स्वार्थ के किवाड़ लगा कर उस विचारशक्ति को रोक देना  
उचित नहीं है । अपनी बुद्धि को अपनी विचार शक्ति को मत्र प्रकार  
के विकारों से दूर रख कर जो निर्णय किया जाता है वही उत्तम  
होता है ।

जब आदमी को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से काम करना है तो  
उसका लक्ष्य क्या होना चाहिए ? उसका लक्ष्य पेम होना चाहिए  
जिसे आर्श मान कर सब लोग अपना काम कर सकें । जहाँ में  
बैठे हुए लोगों की दृष्टि ध्रु पर रहती है, उमी प्रकार पेम लोगों को भी  
अपना लक्ष्यचिन्दु ध्रु-सा बना लेना चाहिए । उस लक्ष्यचिन्दु के  
सम्बन्ध में भी कुछ शब्द कह देना उचित प्रतीत होता है ।

जीवन-व्यवहार के साधारण कार्य, जैसे खाना-पीना, चलना-  
फिरना आदि ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं । धार्या में



इस प्रकार समानता होने पर भी बड़ा भेद रहता है। अज्ञानी पुरुष अज्ञान-पुरुष, बिना किसी विशेष उद्देश्य के कार्य करता है जबकि ज्ञानी पुरुष जीवन का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा व्यवहार गम्भीर ध्येय से निष्काम भावना से, वामनाहोन होकर यज्ञ के लिए करता है। शास्त्रकारों ने यज्ञ के लिए काम करना पाप नहीं माना है। मगर प्रश्न यह है कि वास्तविक यज्ञ किसे करना चाहिए? लोगों ने नाना प्रकार के हिंसात्मक कृत्य करके और अग्नि में घो होमने को ही यज्ञ मान लिया है। मगर यज्ञ के मन्त्रों में गीता में कहा है —

द्रव्ययज्ञस्तपोयज्ञा, योगयज्ञास्तथाऽग्रे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञश्च यतयः शमितप्रता ॥

—अ० ४ श्लो० २८

यज्ञ अनन्तर प्रकार के होते हैं। अगर किसी को द्रव्य यज्ञ करना है तो धन पर से अपनी मत्ता उठा ले और कहे 'इदं न मम।' अर्थात् यह मेरा नहीं है। यम, यज्ञ हो गया।

ममार से जो गड़बड़ी मची हुई है उसका मूल कारण समग्र बुद्धि है। समग्र बुद्धि से समग्रशीलता उत्पन्न हुई और समग्रशीलता ने समाज में वैषम्य का विष फैला कर दिया। इस वैषम्य ने आज समाज का शान्ति का सर्वनाश कर दिया है। इस विषमता का एक सफल उपाय है—यज्ञ करना। अगर लोग अपने द्रव्य का यज्ञ कर लें—'इदं न मम' कह कर उसका उत्सर्ग कर दें तो सारा गड़बड़ आन ही शान्त हो जायगी।

द्रव्य-यज्ञ के पश्चात् तपोयज्ञ आता है। तप करना उतना कठिन नहीं है, नितना तप का यज्ञ करना कठिन है। बहुत से लोग हैं जो तप करते हैं परन्तु उनकी उससे असुख फल प्राप्त करने की आकांक्षा

नी रहती है। इस प्रकार आमाज्ञा वाला तप एक प्रकार का सौदा बन जाता है। वह तप यज्ञ रूप नहीं बन पाता। तप करके उसमें फल का कामना न करे और 'इद न मम' कह कर उसका यज्ञ दे, तो तप अधिक फलदायक होता है।

मैं सर मनु माई महता को सम्मति देता हूँ कि वे अपने प्रगणमन्त्री के अधिस्तरा का भी यज्ञ कर दें।

मेरा तात्पर्य यह है कि अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो मत्र वस्तुआ पर मे अपना ममत्व हटा लो। 'यह मेरा है' इस बुद्धि में ही पाप की उत्पत्ति होती है। इस दुर्बुद्धि के कारण ही लोग इश्वर का अस्तित्व भूले हुए हैं। 'इद न मम' कह कर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहंकार का विलय हो जायगा और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा।

वे योगी जो यज्ञ नहीं करते, उपहास के पात्र बनते हैं। इस योगियो! अपना किया हुआ स्वाध्याय, प्राप्त किया हुआ विविध <sup>विध</sup> भाषाओं का ज्ञान और आचरित तप आदि समस्त अनुष्ठान <sup>अनुष्ठान</sup> ईश्वर <sup>को</sup> समर्पित कर दो। अगर तुमने सभी कुट्ट इश्वर को आप्त कर <sup>कर</sup> दिया तो तुम्हारे मिर का बोझा हल्का हो जायगा। कामनाएँ तुम्हें <sup>अनु</sup> सता न मक्केगी। बुद्धि गम्भीर होगी। अपना कुट्ट मत रक्खो। किसी वस्तु को अपनी बनाइ नहीं कि पाप ने आकर घेरा नहीं।

भाइयो, आप सब लोग भी हृदय में ऐसी भावना <sup>भाइय</sup> नि सर मनु भाइ महता को ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि वे <sup>इत्यस्य</sup> जाक

गोल-मेज-काफ़ेस में अपने सम्पूर्ण साहम का परिचय दे। मेरी हार्दिक भावना है कि मध्व प्राणी कल्याण के भाजन बन।

अन्त में मेरा आशीर्वाद है कि आपकी भावना सदा धर्ममयी बनी रहे और धर्मभावना के द्वारा आप यशस्वी और पूर्ण सफल बनें।



卐 चारु-चयन 卐



## अल्पपरम्भ-महारम्भ

वैश्य का कर्त्तव्य समग्र करना हो सकता है परन्तु वह समग्र स्वार्थमय परिग्रह नहीं बन जाना चाहिए। स्वार्थमय परिग्रह देश को आधा नहीं धरता करता है। वैश्यों को न केवल समान और देश में भलाई के लिए ही वरन अपनी आभिन्न उन्नति के लिए भी परिग्रह से बचना चाहिए। परिग्रह मात्र समग्र भागना बढ़ाने वाला है। और वही आजादी (मोक्ष) को रोक्ता है। अतएव परिग्रह को बढ़ान के बदले घटान का प्रयत्न करना चाहिए। जीवन विद्या के लिए आवश्यक पदार्थों का परिमाण नियत करना चाहिए और शेष पदार्थों के प्रति अनासक्त रहना चाहिए। परिमाण नियत कर लेने से आत्मा को बड़ी शान्ति मिलती है। चित्त की व्याकुलता कम होती है और मयम की ओर रुचि नष्ट होने लगती है। अतएव बुद्धिमान मनुष्य को इस बात का पूरा विचार होना चाहिए कि मैं अपनी आवश्यकता से अधिक समग्र न करूँ।

एक विद्वान् आविष्कारक ने बतलाया है कि प्रकृति उतना उत्पन्न करता है नितने से एक भी मनुष्य भूया न मरे और नगा न रह । पर हाय ! आन लाग्यों मनुष्य भूय के मारे मर रहे हैं । उन्हें तन डेड़ने को पूरा कपडा भी नसीब नहीं होता । मित्रो ! विचार करने से मालूम होगा कि इसका कारण लोगा का समूह-बुद्धि ही है । एक और अन्न के लिए तरसते हुए मनुष्य मर रहे हैं और दूसरी तरफ आवश्यकता न होने पर भी जीवनोपयोगी वस्तुआ का समूह किया जाता है ! क्या इसमें यह बात मिद्ध नहीं होती कि स्वार्थी मनुष्य, मनुष्य के घात का कारण बन रहा है ?

कई लोग कहते हैं, साँप मनुष्य का शत्रु है, क्या कि यह उसे काट कर उसकी जीवनलोला समाप्त कर नेता है । सिंह मनुष्य का शत्रु है, यह उसे फाड़कर खा जाता है । रांग फैलकर मनुष्यों का संहार करता है इसलिए यह भी मनुष्य का शत्रु है ।

इन बेचारों के ज्ञान नहीं है, अतएव मनुष्य चाह मो आक्षेप उन पर कर सकते हैं । अगर उन्हें अपनी सफाई पेश करने की योग्यता मिली होती तो वे निडर होकर तनस्वी भाषा में कह सकते हैं कि—'मनुष्यो ! हम नितने क्रूर नहीं जतने क्रूर तुम हो । तुम्हारी क्रूरता के आगे हमारा क्रूरता किसी गिनती में ही नहीं है । सर्प किसी को विचारण नहीं काटता । यह प्राय आत्मरक्षा के उद्देश्य से ही काटता है । और नख काटता है तो मीठा जहर चन्ता है और जिसे जहर चन्ता है वह मस्ती के साथ प्राणविमर्दन करता है । उसे प्रकट रूप में दुःख भी कष्ट अनुभव नहीं होता । पर मनुष्य, मनुष्य को किम तुरी तरह मारता है ? साँप और मनुष्य की तुलनाकरके देखो, मैं अधिक क्रूर है ?

बहुत से भाई दर्भित्त के समय अपने घर में इतना अधिक धान्य संग्रह कर लेते हैं कि उनके खाने पर भी समाप्त न हो। ये लोग अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का भी विनिमय नही करते। नन्ही एक मात्र आमाजा यही रहती है कि धान्य नितना महंगा हो, नतना ही अच्छा। उनके मन में यही रटन रहती है कि पाँच मेर के बन्ले चार सेर का आर चार सेर के बन्ले तीन मेर का धान्य हो तो यही बात है। इस तृष्णा ने मसार को नरक बना डाला है। जिस घर में एक आदमी है वह अपने लिए पर्याप्त संग्रह करे तो कोई मना नहीं कर सकता, जिस गृहस्थी में पाँच मनुष्य हों वे अपने योग्य गृहिन संग्रह करें तो किसी को क्या आपत्ति है? पर एक आदमी दस के योग्य संग्रह कर रखे तो परिणाम क्या होगा? न दूसरे शान्ति से रह मर्गे और न बही। जब चारों तरफ नवानल सुलगेगा तो उसके बीच रहने वाला कोई एक शान्ति से कैसे बैठ सकेगा?

माता अपने बालक के लिए रात्रि सामग्री संचित कर रखती है और समय पर उसे खिलाकर प्रसन्नता का अनुभव करती है और बालक का पोषण भी। वैश्य का संग्रह ऐसा ही होना चाहिए। देश का प्रजा उसके लिए बालक के समान है।

एक गाय को ५० पूले घाम के एक माथ डाले गये। वह उन्हें खाती नहीं। पैरों से रौंद रौंद कर मिगडनी है। वह घाम न तो उसके काम आता है, न दूसरों के। गाय इस बात को समझती नहीं इस कारण उसके मालिक को सोचना चाहिए कि मैं गाय को उतने ही पूले टालूँ, जिससे गाय का काम चल जाय और घास नाहक खराब न हो। जो इस प्रकार की वृत्ति अपनी गिरस्ती में रखेगा उसे कोई पापी नहीं कहेगा।



मित्रो ! आदर्श वैश्य ससार की माता की तरह सप्रह करता है, जौंक की तरह नहीं। जो इस बात का ध्यान रखता है वह न्याय, करुणाशील और धर्मात्मा कहा जायगा, क्योंकि उसकी जीविका धर्म की जीविका है, अधर्म की नहीं।

वैश्य को किस प्रकार की आजीविका करनी चाहिए, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आजीविका दो प्रकार की होता है—मूल आजीविका और (२) उत्तर आजीविका। येनो करके अनान या कपास उपनाना मूल आजीविका है और रई, सूत या वस्त्र का व्यापार करना उत्तर आजीविका है।

आज कल मूल आजीविका पर प्रति उचित आदरभाव दिखाई नहीं देता। लेकिन मूल आजीविका के बिना उत्तर आजीविका टिक नहीं सकती। आप लोग खेती नहीं करत पर खेती में पैसा हुई रई और कुस्टा आदि का व्यापार करत हैं। अगर किसान खेती करना छोड़ दे तो आपका व्यापार किस आधार पर चलेगा? आपसे मिहनत का काम नहा होता इसलिए आपने खेती करना महापाप का काम मान लिया है। मगर कभी यह भी विचार किया है कि कृष्ण की अधिकता किसर्म है? जरा तुलना करके देखो कि खेती करने वालों ने कितनों को डुबाया है और दूसरे व्यापार करने वालों ने कितनों को? गरीब किसान उतना अमत्यमय व्यवहार नहीं करता जितना साहूकार कहलाने वाले सेठ करते हैं। किसी किसान ने स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी को डुबाया हो, ऐसा आज तब नहीं सुना गया, किन्तु बड़े व्यापार करने वाले सैन्डों ने लोभवश दिवाला निजाल दिया और बड़्यों के पैसे हजम कर लिये।

एक आदमी त्रिनली का व्यापार करना है और दूसरा खेती करता है। अब आप बतलाइए आरम्भ का पाप किम्में ज्यादा है ?

आप चुप हो रहे हैं। आप जानते होंगे कि बला कहीं हमारे गले पड़ जायगा। मित्रों! आप घबराइये नहीं। अगर आप नहीं कह सकते तो मैं नात्र कह देता हूँ कि त्रिनली का व्यापार करने वाला दुनिया के ऊपर अनावश्यक बोझ डालना है। यह जमनी जापान और अमेरिका आदि विदेशों से माल मँगवा कर लोगों का ललचाया करता है। दुनिया मरे या त्रिये उमरी बला से। उसे अपना जेब गरम करने से मतलब है। लोगो की आँखों को धानि पहुँचती है तो पत्तों, आँखों फल फूटती थीं सो आन हो क्यों ? फूट जाँ, उसे इससे क्या प्रयोजन ? उसे अपना घर भरने से काम है।

खेती करने वालों को राता जागना पड़ता है (कड़कडाता हुड सर्पों के त्रिनों में ठडी ठडी हवा की लहरा पर नाचना पड़ता है) प्रीत्य काल के प्रारण्ड सूर्य की कठोर किरणों से पृथ्वी जय तत्र के समान तप जाती है, और वायुमण्डल में आग फैल जाती है, तब त्रिमार उधाड़ बदन खेत में अपने काम में जुटा रहता है। यह भूमलधार वषा अपने मिर पर श्रोदता है। गर्मी, सर्दी, वर्षा आदि का कष्ट उसे अपने कर्तव्य से डिगा नहीं सकता। उस प्रकार सैकड़ों घोर कष्ट सहन करके, अपने सुर्यों को बलिदान करके दुनिया को शान्ति पहुँचाने वाला, और 'अत्र वै प्राणा' इम कथन के अनुसार समार को प्राण देने वाला किमान पापी है और दुनिया में लूटमार भवान वाले, दुनिया की आँखों फोड़ने वाले धमत्ता हैं। यह कहाँ का न्याय है ? यह कैसा इसाफ है !

खेती करने वाला स्वतन्त्रजीवा प्राणी है। उसे किसी के सामने

हाय फैलाने की जल्दगी नहीं है। मारा मसार रुठ जाय तो भी उसका कुछ विगाड नहीं हो सकता, मगर यदि खेती करने वाला रुठ जाय तो मत्र को नानी याद आने लगे। मत्र प्राहि-प्राहि और हाय-हाय का घोर आचनाद सुनाड पडने लगे। इसी कारण कहा जाता है कि खेती दुनिया का प्राण है। खेती के बिना दुनिया में प्रलय मच सकता है।

ऐसी अवस्था में तुम्हें मत्स्य और न्याय का प्रचार करना चाहिए। खेती करने वालों से घृणा का व्यवहार न करके, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहिए। मरल और साधे रिमानों का आदर करना चाहिए और उनसे जगत्कल्याण के लिए कष्ट मंहुने का सयक माग्ना चाहिए।

मित्रो ! अब एक और प्रश्न मैं तुम्हारे सामने रखता हूँ। क्या खेती करने में ज्यादा पाप है या जुआ खेलने में ? बोलिए, चुप मत रहिए।

श्रावक—उपर की दृष्टि से तो खेती का काम ज्यादा पाप का मालूम पडता है।

टीक है। इस प्रकार कहने से मुझे मालूम हो जाता है कि आप किस वस्तु को किस रूप में समझ रहे हैं।

मित्रो ! उपर की दृष्टि में जुआ अल्प पाप गिना जाता है। इसमें किसी की हिंसा नहीं होती। केवल इधर की धैली उधर उठाकर रखनी पडता है। पर खेती में ? अरे धाप रे ! एक हल चलाने में न जाने कितने जीवों की हिंसा होता है ? यह कहना भी अत्युक्ति नहीं है कि खेती में छद्मों काय की हिंसा होती है।

मित्रो ! उथले विचार से ऐसा मालूम होता है सही, पर अगर गहराई में जाकर विचार करेंगे तो आपको कुछ और ही प्रतीत होगा। आप इस बात पर ध्यान नीति कि जगत् का कल्याण किसमें है ? पाप का मूल क्या है ? क्या यह मन्देह करने की बात है कि मृती के त्रिना जगत् सुरा नहीं रह सजता ? मृती से प्राणियों की रक्षा होती है। थोड़ी देर के लिए कल्पना कीजिए कि मसार के सब किमान कृषि-कार्य का त्याग कर जुआरी बन जाएँ तो कैसी घाते ?

श्रावक—‘दुनिया का काम नहीं चल सकता ?’

अब आपकी समझ में आ रहा है। तो किस कार्य से प्राणियों की रक्षा होती है वह कार्य पुण्य का है या पाप का ?

श्रावक—‘पुण्य का।’

अब आप जुग की तरफ देखिए। जुआ जगत्-कल्याण में तनिक भी सहायक नहीं है। वल्कि जुआ खेलने वालों में भूठ, कपट, झलझिल, तृष्णा आदि अनेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। अधिक क्या कहा जाय, मसार में जितन दुर्गुण हैं वे सब जुग में विद्यमान हैं। किसी ने कहा है—

विवाद कजहो राटि, कोपो मान असा भ्रम ।

पैशुन्य मस्मर शोक, सर्वे घृतस्य बाधका ॥

घृत हिंसाकर जोके, घृत कूटप्रभावितम् ।

घृतेन धीर्यभावाऽपि, घृदाद् दुःख मृषा मनु ॥

अर्थात्—विषाण, कलह, रार-तकरार, क्रोध, मान, अम, भ्रम, पैशुन्य, ईर्ष्या, शोक यह सब जुग के भाइ-वद हैं।

जुआ हिंसाकारी है, जुग में असत्य भाषण होता है, जुआरी चोरी करने के लिए भी उद्यत हो जाता है। जुग से निश्चय ही मनुष्य दुःख का भागी होता है।

वास्तव में जुआरी प्राणियों पर न्या नहीं करता। धर्मराज युधिष्ठिर ने जुग के जाल में फँस कर के ही द्रौपदी को तब पर रख दिया था। जुआ धर्मराज की बुद्धि पर भी पर्ना डाल सकता है तो दूसरे साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है ?

जुआ और खेती व पाप की तुलना करते समय आप यह बात भी न भूल जाएँ कि शास्त्रों में जुग को सात कुल्यमनों में गिना गया है, पर खेती करना कुल्यसन के अन्तर्गत नहीं है। श्रावक को सात कुल्यमनों का त्याग करना आवश्यक है। अगर जुग की अपेक्षा खेती में अधिक पाप होता तो सात कुल्यमनों की अपेक्षा खेती का पहले त्याग करना आवश्यक होता। परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि आनन्द जैसे धुरधर श्रावक ने श्रावकधर्म धारण करने के पश्चात् भी खेती करने का त्याग नहीं किया था।

इस विवेचन से आप अल्प पाप और महापाप को समझ सकेंगे, फिर भी अत्रि स्पष्टीकरण के लिए मैं कुछ उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। उनमें कई बातों का निचाड़ निम्नल सकेगा।

एक पुत्र्य कहता है—'मैं ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। अतएव विषय-लालसा का तृप्ति के लिए दो-तीन मास में यस्या-गमन करना अन्ध्रा मममता है। सामाजिक मयादा के अनुसार विवाह करना अर्धग है। विवाह करने में कई आरम्भ-समारम्भ करने पड़ते हैं। विवाह के पश्चात् भी कपड़े के लिए और कभी गहनों के लिए आरम्भ करना पड़ता है। विवाह के फल स्वरूप पुत्र या पुत्री का जन्म होने

पर उनके विवाह आदि के निमित्त भी तरह-तरह का मायघ व्यवहार करना पड़ता है और इस प्रकार पाप की परम्परा चलती जाती है। अतएव विवाह संनिवाह आरम्भ के और कोई बात ही नहीं है।

क' कहता है—'वेद्या-गमन में गेमा कोई भङ्ग ही नहीं है। थोड़े से पैसे दिये और छुट्टी पाई। वह मरे चाहे जिये, हमें कोई मरेंकार नहीं। न हमें वेश्या क' कपड़े की चिन्ता, न आभूषणों की फिज। न उनके लिए किसी प्रकार का आरम्भ, न किसी तरह का समारम्भ। विवाह आरम्भ-समारम्भ का घर है। अतएव विवाह से वेश्या-गमन में कम पाप है।

मित्रो! उपर की दृष्टि से वेश्या-गमन में कम पाप नजर आता है, पर जरा गहराई में जाकर देखो तो पता चलगा कि इस विचार में अनर्था की कितनी दीर्घ परम्परा दिखी हुई है। यह विचार नितन भयंकर पापों से परिपूर्ण है। हम कुविचार की सुराहियों जिहा द्वारा नहीं थतलाई जा सकेंगी।

गृहस्थ मत्तगरी यन मन्ता है, वेद्यागामी नहीं। वेद्यागामी महापापी है यहाँ तक कि वेद्य, गमा की भायना मन में उन्ति होना भी घोर पाप का कारण है।

दूसरा उगाहरण लीजिए—एक आत्मी खेती करके थोड़े से पैसे कमाता है और मनोर से अपना जीवन यापन करता है। दूसरा आदमी किसी धनवान् के घर चोरी करके धनोपार्जन करता है। चोरी करने वाला कहता है—'मैं वनाभाव के घर में जतना ही धन चुरा कर लाता हूँ, नितने स उमे धनाभाव के कारण कष्ट न उठाना पडे। जैसे, १०-२० लाख के वनी के यहाँ से एक-दो हजार रुपये ही धुरता हूँ।

इससे मेरा पिता किसान विशेष आरम्भ-समारम्भ के काम चला जाता है और उस धनी का भी उपकार हो जाता है। चुराये हुए धन पर से धनी का ममत्व कम हो जाता है और ममत्व का घटना धर्म है। इस तरह धनी ममत्व की अधिकता से बच जाता है और मैं गैरी, व्यापार आदि के आरम्भ-समारम्भ से बच जाता हूँ।

अब यह आपका काम है कि आप गैरी करने वाले और चोरी करने वाले दो पुम्पों के काम की परीक्षा करें यह निर्णय करें कि अल्प पाप किममें है और महापाप किममें है ?

मुझसे एक भाइ कहने थे—‘आप गायें पालने का उपदेश देते हैं।’ मैंने उन्हें बतलाया—आप मेरे कथन को ठाक तरह नहीं समझे हैं और ऊपर की बात लेकर उल्टे पड़े हैं।

मेरा कहना यह है कि बाजार का दूध लेने से घर पर गाय पालने में कम पाप है। इस कथन की सच्चाई भिन्न करने के लिए अनेक प्रमाण माजू हैं। अमा कुट्ट दिनों पहले योमानेर के एक विद्वान संठना मेरे पास आय थे। उन्होंने मुझ बतलाया कि—कितन दूध नेरन बाल घोसी आते हैं, उनके घर जाकर दूधवा जाय तो एक भी बछड़ा न मिलेगा। शक्ति व कसाइखान में बछड़ भेज देते हैं। हाय ! कितनी कल्याणपूर्ण शक्ति है ! फिर भा आप मोल का दूध लेने में पाप नहीं समझते ?

यद्यपि विशाल नगर में ऐसा होना मुना जाता था मगर मालूम हुआ मर्यादा ऐसा अत्याचार होता है। सुनते हैं—घोमी लोग गाय के गुप्त स्थान में नली के द्वारा हवा भरते हैं, जिससे गाय फूल जाती है और घोर घेन्ना अनुभव करती हुई तड़फने लगती है। आप

मानते हैं ? इसलिए कि दूध सूत-सूत कर अधिक निकाला जाय !  
 कैसा घोर अत्याचार है ! कितनी नृशमता है ! वैसी श्रुता है !

और यह कितने आश्चर्य एवं रोष का घात है कि आप इस प्रकार निकाले हुए दूध को रखीने हैं और उसके गोये की मिठाइयाँ खाने में आनन्द मानते हैं !

भाइयो और बहिनो ! आपको महापाप का मूल और फल रूप केमा दूध पीना उचित नहीं है। इसकी अपेक्षा घर पर गाय का पालन पोषण करना बँस अनुचित कहा जा सकता है ? क्या इस दान्ण हिंसा में अल्प पाप की कल्पना का जा सकती हैं ?

मित्रो ! आप इस गहरी इष्टि में अल्प पाप और महापाप का विचार कीजिए। यह यात्र रक्षित जहाँ मादगी को स्थान मिलता है वहीं अल्प पाप होता है। सागरी में ही शील का वास है। विलासिता खाने वाली माममी महापाप का कारण है। वह स्वयं विलासी को भ्रष्ट करती है और साथ ही दूसरों को भी।



मित्रो ! बहुत से लोग गेती करने वालों को और मिट्टी के घर्तन गढ़ने वालों को पापी समझते होंगे, पर मैं तो अनेक बड़े-बड़े धनवानों को उनसे कहीं अधिक पापी मानता हूँ। वे बेचारे सरी मिहनत करके अपना निर्वाह करते हैं, उन्हें आप पापी कहते हैं किन्तु जो लोग गदियों पर पड़े पड़े ध्यान स्वात हैं या किसी एमे ही व्यापार द्वारा गरीबों को चूसते हैं, अपने हाथ से कुछ भी काम नहीं करते, आलस्य में पड़े पड़े 'उसे मारूँ, इसे गिराऊँ, उसका धन स्वाहा कर दूँ, इसे



कैसाई, अमुक का घर द्वार नीलाम पर चढ़ा दूँ' ऐसा सोचा करते हैं, उन्हें आप पुण्यामा मममते हैं। यह कैसा उलटा ज्ञान है? जो लोग मिट्टा भिगोने और जूते गौंठने में ही पाप मानते हैं और ऐसे भयकर कामों को पाप नहीं मानते, व अभी अज्ञान में पड़े हैं।

आज परंपरा के कारण पुष्प सूँघने वाले को पापी और तमाखू सूँघने वाल को अच्छा समझा जाता है। लोग इसका कारण यह मममाने हैं कि तमाखू अचित्त वस्तु है और पुष्प सचित्त। किन्तु अगर आप इन दोनों को विचार का तुला पर तालेंगे तो बड़ा अन्तर नजर आएगा। उस समय आप ही मालूम होगा कि तमाखू में ज्यादा पाप है या पुष्पों में। नैनशास्त्र ऊपर ऊपर से विचार करने का उपदेश नहीं देता, वह उपनिषद् ज्ञान का राज करने का उपदेश देता है। अगर आप हम धात का विचार करेंगे कि तमाखू किस प्रकार जोड़ जाती है और धात में कितने आरभ-समारभ के साथ तैयार की जाती है और मात्र ही मान्य ज्ञान के कारण उससे कितनी भावहिमा होती है तो आपको तत्काल मालूम हो जायगा कि पुष्प सूँघने में अपेक्षाकृत अल्प पाप और तमाखू सूँघने में अपेक्षाकृत महापाप है। निज भाइया को इतना गहरा विचार करना न आवे, वे यदि ऊपरी दृष्टि से भी विचार करेंगे तो भी उन्हें अमलियत का भान हो जायगा।

विचार कीजिए, मनुष्य तमाखू सूँघने के बाद क्या करता है? वह नासिका का मैल धर धर डाल देता है और कई बार नीचालों पर भी हाथ से पौछ लेता है। यहाँ तक देखा जाता है कि कई लोग अपने कपड़ों में भी पौछ लेते हैं। उनके कपड़े धुरी तरह घासने लगते हैं। लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और जब कपड़े

बहुत मँले-शुचैले हो जाते हैं तब धोय जाते हैं । कहिए, तमाखू सूँघने स कितना आरम-समारम बढा ? पर क्या आपने पुष्प सूँघने-में यह नोप लेमे हैं ? पुष्प की सुगध से हवा शुद्ध होती है, मन्तिष्क म शान्ति का सचार होता है, उममें और भी कई प्रकार के गुण हैं, जेमा वैद्यक शास्त्र और आन का विज्ञान बतलाता है । पर तमाखू में कौन-से गुण हैं, चिनके लिए इतना आरम-समारम रिया जाता है ? अलबत्ता यह नो मुना गया है कि तमाखू सूँघने वालों को कई प्रकार की भीमारियाँ पैग होती हैं ।

आन आप लोग पुष्पों की सुगध से, पाप समक कर टरते हैं पर मन्तिष्क को भ्रष्ट करने वाली घाँडी जैमी अपवित्र और पापमय चीनों से रने सें, लुँडर बगैर सूँघन में जुरा भी दिक्किचाहट नहीं करते । मैं यह नहीं कहता कि पुष्प सूँघन में पाप नहीं है, अवश्य है, पर इनके बगैर नह। । पर जेमी तुलना के लिए सीधी चीजों पर मौँत उठाने वालों को समय कटौ ? अप्रत्यक्ष में अतरों के लिए हजारों-लागों पुष्प भले ही तोड़े जाँ, इमरी खुद भी परवाह नहीं, पर यों एक फूल सूँघने में जतनी पाप नजर आवाती है सिरो ! विनेक सीरो । धर्म विनेक में है—अधाधुपी म नहीं ।

भीतासर

२१—१०—२७

मैं कई बार कह चुका हूँ कि मीधा वस्तु के भरोसे अल्प पाप की जगह कई भाई अपने सिर पर महापाप ले लेते हैं। मीधा ग्याना या उसका शौकीन बनना आलस्य की राम निशानी है। आलस्य में धर्म नहीं होता। धर्म तो कर्तव्यपालन से होता है।



अच्छा वैद्य रोगी का मनचाहा पथ्य नहीं बतलाता, बरन् रोगी के स्वास्थ्य का ध्यान रखकर हितकर पथ्य बतलाता है। मद्य उपदेश जनता को चाटुकारी नहीं करता, जल्कि मद्य, हितकर और अम्युदय कारक बात ही कहना है।



## विचार-विन्दु

जो भाई यह समझत हैं कि विषयभोग से ही सत्सार चल रहा है, कहना चाहिए वे बड़े भ्रम में हैं। सत्सार तप के आधार पर चल रहा है। जिस दिन मानव-समान तप की वास्तविक महत्ता समझ लगा उसी दिन उसके बढमूल कुसंस्कार ढीले पड जाएंगे।



भ्रमणोपासक के पाम म्यजाना आनाय तो क्या, और नष्ट हो जाय तो क्या ? बह किसी भी हालत में दुखी नहीं होता। हमशा पलंग पर सोता है। एक दिन जमीन पर सोना पडा तो दुःख किम बात का ? बह तो यही सोचता है कि मेरे गुरु हमशा जमीन पर

मोते हैं। यदि मैं आज जमीन पर सो गया तो उसकी विशेष भक्ति मगझनी चाहिए। जा रात दिन दुर्गा के दरिया में गोता गाना रहता है, जो रठिनाश्यां को देखकर डर जाना है वह मया भ्रमणो पामक कहा कहला सकता। भ्रमणोपासन की किसी भी हालत में दुर्गा नहीं मना करना। उमर चेहरे पर मदा हैमी नाशनी रहती है। पर वह कष्टों या रठिनाश्यां से भ्रम जाना है तो धारणापूर्वक उसका सामना करता है। निराशा का तावक गम नहीं जाना।



अन्त करण शुद्ध किये बिना कभी शान्ति नहीं मिल सकती। जिस घरतन में बदनूतार घी भरा हो उस चाँद नितना मँजा जाय, उसकी बदबू नहीं मिटने की। समा प्रसार ग्मान करण अन्त करण शुद्ध नहीं होता। अन्त शुद्धि के लिए चोरी से धचन का जरूरत है। अन्त शुद्धि के लिए व्यभिचार से मदा दूर रहना चाहिए। अन्त शुद्धि के लिए आलस्य से मना दूर रहना जरूरी है। जो मनुष्य इस धार्मिक का ध्यान रकरंगा उस शान्ति मिल बिना न रहेगी।

अन्त करण की शान्ति चाहने वालों को हमारे पर कभी द्वेष न लाना चाहिए। द्वेष की अप्रति बढ़ी भयकर है। द्वेष की आग में मतलब प्राणी को अच्छे अज्ञान भी लपलपाती हुई भयकर अप्रति क समागत लगते हैं। जब आपका कोन शत्रु बढ़िया बस्त्राभूषण पहन कर आपके सामने से निकलना है तो आपके दिल में कैधी आग धकने लगती है? द्वेष के कारण ही घर में घमासान युद्ध छिड़ा रहता है। जिस घर में द्वेष है वह नरक तुल्य है।



आप दूसरों को अभयदान देना चाहते हैं। पर यह तो समझ लो कि अभय कौन दे सकता है? निमरु पास जो है वह वही दान दे सकेगा। अगर अभयदान देना चाहते हैं तो पहले स्वयं अभय—निहर्ष बनो। निमेष भूत, प्रेत, डाकिन, जम, जरा, मरण आदि भयभीत नहीं कर सकते, मसार की कोई शक्ति जिसे अपने पथ में विचलित नहीं कर सकती, वह अभय है।

❀ ❀ ❀ ❀

जो धर्म की रक्षा करना चाहता है उसे वीर बनना पड़ेगा। वीरता बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती। भक्त का मुटय उदरय वीर बनना ही होना चाहिए।

जो वीर भक्त बन जाता है, उसके मार्ग में कितनी ही आपत्तियाँ आवें, फोड़ भी उसके मार्ग से डिगाने का प्रयत्न करे, वह विचलित नहीं होगा। क्या कामदेव विपत्तियों में डरा था?

❀ ❀ ❀ ❀

पारस्परिक अविश्राम होना अमृत्यु का आधिपत्य होना, एक का दूसरे को राक्षस रूप में दिखाई देना, यह सब आसुरी सम्पदा के लक्षण हैं। हमके फल बड़े कटुक होते हैं। ज्ञानी जन इस बात को अच्छी तरह जानते हैं इसलिए वे अपना तमाम बुद्धि-बल लगा कर इसमें होने वाले क्लेश को जानने का प्रयत्न करते हैं।

यह कितनी लज्जा की बात है कि अपने आपको बुद्धिमान समझने वाले लोग, जनता में कितना अविश्राम फैलाने और अमृत्यु का प्रचार करते हैं, कितना मूर्ख बढलाने वाले नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

जिसने अन्न करण में चञ्चलता भरी है, जिसका हृदय क्रोध की भट्टी बना हुआ है, वह अगर दूमरों को उपदेश देने के लिए उग्रत होता है तो उसका दुस्माहम ही समझना चाहिए।

आज वक्ताओं की बाढ़ सी आ रही है, मगर अपनी ही वक्तृता के अनुसार चलने वाले कितने हैं ? जो मृत्यु पर नहीं चलता वह उपदेश देकर दूमरों को सत्यवादी कैसे बन मकना है ना ?

व्याख्यानमञ्ज पर स्वर्ण उपदेशक जय कहता है—'मैं आकाश बॉध दूंगा, मैं पाताल बॉध दूंगा,' तब देखना उमा अपनी धोती अच्छी तरह बॉधी है या नहीं ? जो अपनी धोती भी अच्छी तरह नहीं बॉध सजता वह आकाश पाताल क्या बॉधेगा ?

आत्मा स्वतंत्र है, इस तथ्य को समझते हुए भी जो कहता है—'मुझे अमुक का सहारा चाहिए, अमुक मेरी आशा पूरी कर देगा, अमुक के द्वारा मेरा भला बुरा होगा, इत्यादि' उसने धर्म का मर्म नहीं जाना।

वास्तव में आत्मा अपने ही कर्त्तव्यों में स्वतंत्र बनती है और उसी के कर्त्तव्य उसे स्वतंत्र में परतंत्र बना डालते हैं।



भिखारी आपके पास माँगने आता है। आप उसे पैसा दो पैसा दे देते हैं और वह मन्तोप कर लेता है। पर आपको भिखाने पैसों की आवश्यकता है ? हजारों-लाखों से भी आपका मन नहीं मानता। अब आप ही सोचिये—बड़ा भिखारी कौन है—आप या वह ?

भिखारी आप से रोटी न टुकड़ा माँगता है, मिलने पर वह उसी में तृप्त हो जाता है। पर आपको कलाकद लहूँ, घर्फी, आचार, मुग्धा आदि से भी सतोष नहीं। बताइए—बड़ा भिखारी कौन है ?



भक्त कहता है—'किसके आगे अपना दुखड़ा रोऊँ ? जिसे अपना दुःख सुनाता हूँ। वह स्वयं दुखी है। जो अपना दुःख नहीं मिटा सकता है वह मेरा दुःख क्या दूर करेगा ? जो समस्त दुःखों से परे है वही मेरा दुःख दूर करेगा।

दुःख का गुलाम दुःख से कैसे छुड़ा सकता है ? स्वयं रोने वाला दूसरे को क्या हँसाएगा ?

अपनी रक्षा के लिए जो दूसरों का मुहताज है वह मेरी रक्षा कैसे कर सकता है ?



मनुष्य अपनी शक्ति से अपरिचित रह कर निर्बल बन रहा है। जब वह अपनी शक्ति को पहचान लेगा, तब उसे अपनी गहरी मूल का पता चलेगा। उस समय वह सहज ही समझ लेगा—'तमाम दुनिया और शक्तियों का बल एक ओर है और मेरा बल दूसरी ओर है। फिर भी मैं अधिक मजबूत हूँ।

प्रभु को प्रसन्न करना है तो निर्बल बनो। निर्बल का मतलब पुरुषार्थहीन बनना नहीं है। निर्बल का अर्थ है—भौतिक बल के अभिमान का त्याग। तुम्हारे पास जो धन-बल है, उसका अभिमान मत करो। धन ने अनेक धनवानों के नाक, कान, हाथ, पैर काट डाले



हैं और कह्यों के प्राण हरण कर लिए हैं। जिस परतुम भगोमा करो, वही तुम्हें दगा द जाय, भला बह भी कोइ बल है ? पेसा धन बल बल क्या हुआ धैरी हुआ। इमे तुच्छ समझ कर प्रभु की शरण में जाओ।

जनबल की भी यही दशा है। यह ईश्वर कीटा धन कर तुम्हारा घोर अहित करता है। संभार में सर्वाट्टष्ट बल ईश्वर ना ही बल है। उसी की प्राप्त करन का प्रयत्न करो।

ससार के पदार्थ दगाघोर हैं या नहीं, यह निर्णय करना ही तो अनाथी मुनि का अनुकरण कगे। उन्होंने हॉडी की तरह बजा बजा कर हरेक वस्तु की पराज्ञा की थी। परीक्षा करने पर तुम्हें भी थोथा पन नजर आने लगेगा।



जब तक गरीब आपको प्यारे नहीं लगेंगे तब तक आप ईश्वर को प्यारे न लगेंगे।

अगर आपको गरीब प्यारे नहीं लगते, तो क्या दूसरों को मारने के लिए ईश्वर से बल की याचना करना चाहते हो ?



जो मनुष्य निम काम को नहीं जानता उसे उसके फल को भोगने का क्या अधिकार है ? जो कपड़ा बुनना नहीं जानता उस कपड़ा पहनने का अधिकार नहीं है। जो अन्न पैदा नहीं कर सकता उसे खान का क्या अधिकार है ?

प्राचीन काल में बहतर कलाएँ प्रत्येक को सीखनी पड़ती थीं ।  
उनमें कपड़ा धुनना और रेशी करना क्या सम्मिलित नहीं था ?



जो देश रोटी और कपड़े के लिए दूसरे देश का मुह तारता है  
वही गुलाम है । गुलामी रोटी और कपड़े की पराधीनता से आती है ।  
जो देश दो धानों में अर्थात् रोटी और कपड़े में स्वतंत्र होता है उसे  
कोई गुलाम नहीं बना सकता ।



रोटी को छोटी और गहनों को बड़ी चीज मानना विपरीतानुपाय  
का लक्षण है । गहनों के बिना जीवन कट जाना है पर रोटी के बिना  
कितने दिन कट सकेंगे ? आपने गहनों को उन्नी चीज मान कर  
आडम्बर बढ़ा लिया । परिणाम यह हुआ कि भारत में छह करोड़  
आदमी भूखों मरते हैं ।



आपके घर में विधवा बहिनें शीलदेवियाँ हैं । इनका आदर  
करो । हन्द् पूज्य मानो । इन्हें सोटे दुग्धदाई शत्रु मत कहो । यह शील  
देविया पवित्र हैं, पावन हैं । यह मगनरूप हैं । इनके शकुन अच्छे  
हैं । शील की मूर्ति क्या कभी अमङ्गलमयी हो सकती है ?

समाज की मूर्खता ने कुशीलवती को अमङ्गलमयी और शीलवती  
को अमङ्गला मान लिया है । यह कैसी भ्रष्ट बुद्धि है ।

याद ररतो, अगर समय रहते न चेते और विधवाओं की मान रचा न की, उनका निरन्तर अपमान करते रह उठें ठुकराते रहे, तो शीघ्र ही अधर्म फूट पड़ेगा। आपका आर्श धूल में मिल जायगा और आपकी ममार क सामन नतमस्तक होना पड़ेगा।



विधवा या सुहागिन बहिनों के हृदय में कुविचार उत्पन्न होने का प्रधान कारण उनका निरम्मा रहना है। जो बहिनें काम काज में फँसी रहती हैं, उह कुविचारों का शिकार होने के लिए अवकाश नहीं मिलता।

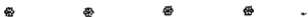
विधवा बहिनों क लिए चर्खा अच्छा साधन माना गया है, पर आप लोग तो उमरे फिरन में वायुकाय की हिंसा का महा पाप मानते हैं। आपको यह विचार उहाँ है कि अगर विधवाएँ निकम्मी रह कर इधर उधर भटकती फिरंगी और पापागर का पोषण करेंगी तो कितना पाप होगा।



बहिनो ! शील आपका महान् धर्म है। जिन्होंने शील का पालन किया है वे प्रातः स्मरणीय बन गईं। आप धर्म का पालन करेंगी तो मातात् मंगलमूर्ति बन जाएंगी।

बहिनो ! स्मरण रखो—‘तुम सती हो, सदाचारिणी हो, पवित्रता की प्रतिमा हो। तुम्हारे विचार उदार और उन्नत होने चाहिए। तुम्हारी दृष्टि पतन की ओर कभी न जानी चाहिए। बहिनो !

दिम्बन करो । घैय धारण करो । सश्री धर्मधारिणी यहन में कायरता नहीं हो सकती । धर्म जिसका अमोघ षवच है, उममें कायरता कैसी ?



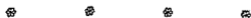
मातृभूमि और माता का बम्बान नहीं हो सकता । इनकी महिमा अगाध है । यह स्वर्ग से अधिष प्यारी हैं । इमलिए महा पुरुष कहते हैं—‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गापि गरीयसी ।’

यान् रखना चाहिए—आपके ऊपर मातृभूमि का ऋण सब से ज्यादा है । आपके माता-पिता इसी भूमि में पले हैं और इसी के द्वारा उनका और अपना जीवन टिक रहा है । अतएव आपका सर्वप्रथम यत्तय्य उसका ऋण चुकाना होना चाहिए । मातृभूमि और माता के ऋण न उच्छ्रण हो जाने के बाद आग पैर बढ़ाना उचित है ।



यह शरीर पय भूत रूपी पचों का मरान है । शुभ कर्म रूपी किराया देने पर इमें यह मिला है । अतएव इसके मालिक बनने की दुश्चेष्टा न करते हुए शीघ्र ही कुछ शुभ कार्य कर लेने चाहिए, ताकि पचों को धका देकर ग्राह्य निकालने का अवसर न मिले । अगर हम किराय की चीज पर अपना स्वामित्व स्थापित करन का दुस्साहस करेंगे ता नरक का कारागार तैयार है । मित्रो ! मावधान बनो ।

सम्पूर्ण श्रद्धा से कार्य में सफलता मिल जाती है अविश्वासी/को सफलता इमलिए नहीं मिलती कि उमका चित्त डाँवाडोल रहता है । उसके चित्त की अस्थिरता ही उसकी सफलता में बाधक होती है ।



मनुष्य मात्र ईश्वर की मूर्ति है। किसी भी मनुष्य को नीच मत समझो। उससे घृणा मत करो। मनुष्य से घृणा करना परमात्मा से घृणा करना है। अज्ञानी जिस नीच कहते हैं, उनकी संज्ञा करो, बलिष्ठ उनकी रूढ़ मेघा करो। सतुष्ट रहो। दुःख पड़ने पर घबड़ाओ नहीं, सुख में फूलो मत। समभाव में ही मन्था सुख है।



घर द्वार, हाट, हवेली, रुपया, पैसा—कोई भी जड़ वस्तु स्थिर नहीं है। धड़े चड़े धक्कवर्ती भी इन्हें अपने साथ नहीं ले जा सके। क्या तुम साथ ले जाने की आशा रखते हो? नहीं, तो सद्व्यय करना सीखो। दान करने से परोपकार के साथ आत्मोपकार भी होता है। परोपकारी को सारी दुनिया पूजती है।



ओ मनुष्य! तू नरुदीर लेकर आया है। जरा तरुदीर पर भरोसा रख। प्रकृति का कानून मत तोड़। क्या मौम न म्याने वाले भूखों मरते हैं? हम देखते हैं कि जितने मांसाहारी भूखों मरते हैं, उतने शाकाहारी नहीं।



मतान्ध होना भूर्वना का लक्षण है। विवेकपूर्वक विचार करने में ही मानवीय मस्तिष्क की शोभा है।

दुनिया के तमाम काम करते हो, तुम्हें ईश्वर के नाम लेने का भी काम करना चाहिए। ईश्वर का नाम लेने से तमाम कुबासनाएँ

मित जाती हैं। राजा निम्न हितचिन्तक बन जाता है उसे चोरों और डाकुओं का डर नहीं रहता, पर जो पुरुष राजा के राजा (परमात्मा) के साथ नाता जोड़ लेगा उसे काम, क्रोध, आदि लुटेरे नहीं लूट सकते। वह सदा सर्वत्र निर्भय रहेगा।



## सामाजिक



राग द्वेष का परित्याग कर, प्राणीमात्र को विनय के साथ अपने आत्मा के समान देवना 'मम' है। उम समभाव का ध्याय अर्थान् लाभ होता ममाय' कहलाता है और निस त्रिया के द्वारा 'समाय' की प्रवृत्ति की जाय उसे 'सामायिन' कहते हैं।

कोई भाई प्ररन कर सकता है कि हम गृहस्थ लोग राग द्वेष से छूट कर समत्व कैसे प्राप्त कर सकते हैं? समभाव का उपदेश तो क्षत्रियत्व का नाशक और कायगता का उत्पादक जान पड़ता है। यह विधवा बहिनों और उन श्रावकों के लिए हो सकता है जिन्होंने ससार श्रधन को ढाला कर दिया है। समाम या व्यापार करने वालों के लिए यह उपदेश किस काम का ?

मित्रो ! यह तर्क बिलकुल पोचा मालूम होता है। अगर मामा यिक का गर्म समझ लिया जाय तो, उलटी ममम् के कारण

सामायिक के विषय में उत्पन्न होने वाले तर्क उठ ही नहीं सकते। क्या कोई शूरवीर भूखा रहकर सम्भ्रम कर सकता है? भोजनसामग्री समाप्त हो जाने पर सिपाही एक दिन भी सम्भ्रम में नहीं टिक सकता। आप जब व्यापार के लिए यादर निकलते हैं तब साथ में कुछ सामग्री क्यों ले जाते हैं? इसलिए कि वह सामग्री आपकी शक्ति है। इस आप नहीं भूलत, पर मित्रों! आप सच्ची शक्ति दान वाली वस्तु के प्रति शरणाशील अथवा प्रमादशील बन गये हैं।

सामायिक सच्ची शक्ति देने वाली वस्तु है। निम्न समय सच्ची सामायिक की जाती है उस समय आत्मा क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि विकारों से रहित हो जाता है। निरन्तर गति में राग द्वेष आदि चलते रहने से आत्मा की शक्ति क्षीण होती है और मनुष्य निष्क्रमा बन जाता है। जो मनुष्य रात दिन परिश्रम करता रहता है, उसकी फाय करने की शक्ति जल्दी नष्ट हो जाती है। पर जो समय पर गान्तिद्रा लेना रहता है वह नुकसान से बचा रहता है। क्योंकि प्रगात्तिद्रा लेने में उसे नवीन शक्ति प्राप्त हो जाती है। ठीक यही बात सामायिक के विषय में समझनी चाहिए। जो मनुष्य राग द्वेष को छोड़े समय के लिए भी त्याग देता है, उसका आत्मा में अपूर्व ज्योति प्रकट होती है और वह शान्ति का आनन्द अनुभव करता है।

ऐसी अपूर्व कौन सी वस्तु है जो सामायिक द्वारा प्राप्त न हो सकती हो?

एक सच्ची सामायिक की कीमत में चिन्तामणि और कल्पवृक्ष भी तुच्छ हैं और वस्तुआ की तो बात ही क्या?

समय में आज लड़ाई भागड़े तेजी से चल रहे हैं। पति-पत्नी पिता-पुत्र भ्रैरगना-चिठानी, भाई भाई, समान समाज सब के



सामायिक के अमात्र में ही लड़ रहे हैं। अगर लोग हृदय से सामायिक को अपना लें, तो इन लडाइयाँ का शीघ्र अंत आ सकता है।

आज लाभ की फमौटी पैसा है। पैसे का लाभ हा आजकल लाभ माना जाता है। पैस के लिए लोग दिन रात एक कर रहे हैं, पर सामायिक के अपूर्व लाभ को कोई लाभ ही नहीं मानता। इसके लिए दो घडा रच करना उन्हें पसंद नहीं है।

दो घडा रोच विज्ञान का अध्ययन करने वाला महाविज्ञानी बन जाता है दो घडा नित्य अभ्यास करने वाला महापरिष्ठित बन जाता है, इसी प्रकार यदि आप नित्य दो घडी सामायिक में रच करेंगे तो आपको अपूर्व शान्ति मिलेगी और महाकल्याण का लाभ होगा।

मित्रो! मन को मचरून बनाइये और मची सामायिक में लगाइए। अगर आप समार भ्रमण को काटना चाहें और महा व्याधियों से ग्रसित आत्मा को उधारना चाहें तो मन्धीर की बतलाइ हुई इस अमृत्य सामायिक रूपी महीपथ का मयन कीजिए। आपका कल्याण होगा।



समत्व प्राप्त करना ही सामायिक का खास उद्देश्य है। प्रश्न उठ सकता है समत्व को पहचान क्या है? उत्तर होगा—ज्ञान ज्ञान में शान्ति का अनुभव होना ही समत्व की पहचान है। जिस सामायिक के द्वारा ऐसा अलौकिक शान्ति सुख मिले उसके आगे चिन्तामणि और कल्पवृक्ष किस गिनती में हैं? यद्यपि आप गृहस्थों को पैसे-पैसे के लिए कष्ट उठाना पड़ता है पर सामायिक में बैठे हुए

भावक को यदि कोई कीमती से वीगती वस्तु देन आवे तो क्या उस समय वह लेगा ?

'नहीं ।'

तो अनुमान लगाइए कि सामायिक कितनी कीमती है, जिसे त्याग कर वह उन वस्तुओं को लाने के लिए तैयार नहीं जाता । सामायिक के समय प्राप्त होने वाले बड़े भारी उपहार को भी श्रावक मुशी के साथ अस्वाकार कर देता है, मानो स्वयं उसका दाा ही करता हो । उस समय के उसक हर्ष को तुलना करना अशक्य है । उस हर्ष का अनुभव बातों में नहीं, क्रिया में हो सकता है ।

सामायिक में बैठ करके भी जो अपन भाग्य को कोमता है, तुच्छ वस्तुओं के लिए भी आठ आठ आँसू गिराता है, उस कुछ लाभ नहीं होता । ऐसी सामायिक करने और न करने में श्याम अन्तर नहीं रहता ।

सामायिक के समय श्रावक को समस्त मावण अर्थात् पापमय क्रियाओं से निवृत्त होकर निरवद्य अर्थात् निष्पाप क्रिया ही करनी चाहिए ।

जैम चतुर व्यापारी अपने पुत्र को व्यापार में प्रवृत्त करते समय सीख देता है कि—देसो, लुचे लहंग, चोर तुम्हारे पास बहुत आवेंगे, उनसे मावधान रहना और भलेमानसों के साथ ही व्यापार करना । शास्त्रकार की मावध और निरवद्य को मीस्र श्रावक के लिए एमी ही है । इस पर मूष ध्यान देना चाहिए ।

सामायिक कितने समय तक करनी चाहिए, शास्त्र में इसके लिए नियमित समय का उल्लेख देखने में नहीं आया ।

दो ऋषी घडी का समय नियत किया है। यह समय ठोक है और हम भी इसका समर्थन करते हैं।

सामायिक में बैठ कर निरुन्मा नहीं रहना चाहिए। मनुष्य का मन बन्दर-मा चलता है। उसे कुछ न कुछ काम चाहिए। जहाँ उस अच्छा काम नहीं मिलता तो बुरे काम में ही लग जाता है। बुरे काम को छोड़कर मायश काम करो, एक ही बात है। मायश काम नीचे गिराने वाले और निरवश काम ऊपर उठाने वाले होते हैं। अतएव श्रावक को निरवश कामों की तरफ विशेष रूप में ध्यान देना चाहिए। कहा भी है —

सामाह्यमि तु कडे, समथो इव सावधो इवह जग्हा ।  
 ण्तेण कारणेण बहुसो सामाह्य बुज्जा ॥

अर्थात्—सामायिक परत समय श्रावक भी साधु के समान हो जाता है, क्योंकि वह उस समय मायश का त्यागी है अतएव धार धार सामायिक करनी चाहिए।



## स्नान



समाज में आजकल स्नान का विषय विवादास्पद बन गया है। प्रश्न यह है कि स्नान करना चाहिए या नहीं? हम इस प्रश्न पर जब वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं, तब इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि स्नान करने से हानि भी होती है और लाभ भी होता है। यह किस प्रकार? सो सुनिए—विज्ञान बतलाता है कि स्नान करने से चमड़ी के स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं और चमड़ी की हवा द्वारा किय जाने वाले आघातों को सहन करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। साथ ही स्नान न करना स रोमकूर्पा में मैल जम जाता है और उनमें होकर आने जाने वाली हवा में रुकावट पड़ जाती है। हवा की इस रुकावट के कारण बड़े बड़े भयंकर रोग फूट निकलते हैं।

ब्रह्मचारी के लिए स्नान करने का शास्त्र में निषेध है, जो इस कारण कि वह आसन आदि के प्रयोग द्वारा हवा के आवागमन की रुकावट टर कर सकता है। इसीलिए हमारे यहाँ ब्रह्मचारियों को स्नान करने की मनाई की विधि चली आई है। पर किसी शास्त्र में

श्रावक को साधु की क्रिया पालने का आदेश नहीं दिया गया है। यह बात मैं अपने मन से नहीं कहता, पर आनन्द श्रावक का आदर्श आपके सामने है। म पर ठीक ठीक विचार करने में आप सत्य स्वरूप को पहचान लेंगे।

मैं अथ श्रद्धा वाला नो हूँ नहीं कि यथा अगर अन्न का त्याग करने के लिए मरे पाम आवे तो मैं उसे अन्न का त्याग करा दू। वस्तु स्थिति की गरुड नर डाल कर देवना मरा कर्तव्य है। कोई भाइ बैठा-बैठा अचानक ही वैराग्य में आकर निष्कारण 'स-थारा' करने की इच्छा प्रकट कर तो मैं 'साह' इन्कार कर दूंगा, फिर वह अपनी इच्छा म भले ही मनचाहा करे। मैं तो उसे आत्महत्या का पाप कहूँगा। स्नान क मन्थन म भी मरा शास्त्रीय अनुभव यही यतलाना है कि कोई श्रावक अपनी इच्छा से स्नान न करे, यह उसको इच्छा पर निर्भर है परन्तु शास्त्र गदा रहन की आशा नहीं देता। गदा रहने से लाग जिममाग की निन्दा करते हैं और गदा रहने वाला की भी हँसी करत हैं। व यह समझते हैं कि साधु इन्हें गदा रहना सिखलाते होंगे।

साधु गदा रहना नहीं सिखलाते, हाँ विधि की तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिए। साधु विधि का और यतना का उपदेश अवश्य देते हैं।

क भाइयाँ को यह बात शायद नई मालूम होती होगी, आर ये कई प्रकार से शक्ति होते होंगे, पर मित्रो ! क्या करूँ ? मुझ म शास्त्र की बात नहीं टिपाई जाती।

आनन्द श्रावक स्नान करते समय पानी का किम प्रकार उपयोग करता था, यह जरा देखिए। शास्त्र में लिखा है—

उद्विपदि उदगस्म चनेदि

इसकी टीका यह है—उट्टिका—वृत्तमयभाण्ड, तत्पूरण प्रयोगा ये घटात्म उट्टिका, तत्रितप्रमाणा अनिलघबो गटातो वत्यर्थ ।

अर्थात् उट्टिका नामक प्रमाण म घटा हुआ एक मिट्टी का पात्र होगा था । आनन्द उसे भर कर स्नान करता था । इसका मतलब यह था कि पानी की आवश्यकता में न्यूनताधिक न हो । मित्रो ! मेरिण, परिमाण करने म कितनी निवृत्ति हा गई ? एक आदमी कुएँ में गा मरोघर में स्नान करगा और दूसरा इस प्रकार करगा । अथ आप ही मोषिण, महापाप में कीर्त्तवा ?

( उपासकदर्शांग की व्याख्या में से उद्धृत )

भीनासर }  
२०—१०—७ } :



## दत्तौन

— • —

'दत्तवगविधि' का संस्कृत टीका में अर्थ किया है—'दत्तपावन  
नमलापकर्पणकाष्ठम्।' अर्थात् नार्ता का मल साफ करने के काम  
में आने वाली लकड़ी।

पहले के आर्यक दत्तौन भी किया करते थे। आजकल के कई  
भाई हाथ-मुह धोने और दत्तौन करने का दो चार दिन के लिए त्याग  
ले लेते हैं पर आर्यक के लिए ऐसी क्रिया का कहीं विधान देखने में  
नहीं आया। लोग अपने मन में कुछ भी कर लें, मगर मैं तो इस  
समय शास्त्र की बात कह रहा हूँ।

पूर्वीय और पाश्चात्य वैश्वक शास्त्र के कथनानुसार दत्तौन न  
करने से बड़ी बड़ी घामारियाँ हो जाती हैं।

कई भाई इसलिए दत्तौन करना छोड़ देते हैं कि ऐसा करने से  
'आरम्भ' में बुरा आएँ। साधुनी जय दत्तौन नहीं करते तो हम भी  
दत्तौन न करें। इसमें हानि ही क्या है ?

परन्तु उन भाइयों को समझना चाहिए कि श्रावक और साधु की विधि में इतना अन्तर है, जितना आसमान और जमीन में। साधु ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और भोजन पर पूर्ण अकुश रम्यत है। आरोग्य शास्त्र का नियम है कि जो सात्विक और सुपच आहार करता है उसके दातों पर मैल नहीं जमता तथा दुर्गन्ध भी पैदा नहीं होती। इस नियम के अनुसार साधु निना दंतौन कभी रह सकता है पर आज्ञाफल के गृहस्थ, जो आहार आदि पर जरा भी अकुश नहीं रम्यत कैसे साधुओं का अनुकरण करते हैं, यह समझ में नही आता।

कई साधु भी गृहस्थ को दंतौन का त्याग करा देते हैं। इसका कारण यह मालूम होता है कि साधु की महज दृष्टि असो पर जाती है और गृहस्थ भी यही सोचता है कि जब मुनि महाराज दंतौन का सर्वथा त्यागी हैं, तब यदि हम भी कुछ दिनों के लिए उनका अनुकरण करें तो क्या हर्ज है? पर मित्रो! मैं यह फहता हूँ कि जो साधु लौकिक दृष्टि को सामने न रखन हुए गृहस्थ को त्याग करा देता है, वह उस पर अनुचित रोम्भा डालता है। एसा करने से वह उलटे रोगी बन जात हैं।

दंतौन का त्याग विम्वे करना है वह खुशी से त्याग करे, परन्तु इस त्याग से पहले जिम तैयारी की आवश्यकता है, जैसे तामस और राजस भोजन का त्याग, मयादा ीन भोजन का त्याग आदि पहले उमकी पूर्ति तो कर ले। पशु अपनी मर्यादा के अनुसार ही भोजन करता है, अनाप्य उम दंतौन करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी उमक गत मनुष्य के दातों को अपेक्षा अधिक साफ सुथरे रहते हैं। कर्न का आशय यह है कि आप दातों को मैला धान वाले भोजन का त्याग कर द तो दंतौन करने की आवश्यकता ही न रहे। आप ऐम भोजन का त्याग नहीं करते और इस कारण दात



और दुर्गन्धमय बन जाते हैं। फिर भी दुर्गा करन का त्याग करते हैं, यह चारित्र के क्रम के अनुकूल नहीं है। आप्त मित्रों! क्रम को देखो और चारित्र की शृङ्खला की ठीक तरह से रचा रहो।

साधुओं को अपनी विधि पालन के लिए शास्त्र में वर्णित विभिन्न उच्च श्रेणी के साधु का अपना आदर्श बनाना चाहिए। इसी प्रकार श्रावक को अपनी विधि पालने के लिए उच्चश्रावक आचार्य की दिशा चर्या पर ध्यान देना चाहिए। आनन्द श्रावक का उल्लेख इसी प्रयोजन के लिए शास्त्र में किया गया है। ऐसा न होना तो उसके उल्लेख की आवश्यकता ही क्या थी ?

( उपासकदशांग की व्याख्या में से उद्धृत )

भीनामर }  
२०—१०—२७ }



## कीर्त्यरक्षा

मनुष्य को अपनी श्रेष्ठता का गर्व है। वह प्राणी-जगत् में अपने को सर्वोत्कृष्ट मानता है। यह ठीक भी है। मनुष्य में अपने हित अनहित पहचानने की जैसी विशिष्ट बुद्धि है, वैसी अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती। पर उस बुद्धि का किनना मोल कूना जा सकता है, वो बन्ध्या है, जो निष्फल है। बुद्धि का फल मदाचार है। हितहित के विवेक की सार्थकता इस ध्यान में है कि मनुष्य हित की गत जान कर उसमें प्रवृत्त हो और अहितकारक गत से दूर रहे। बुद्धि तब आगर की जननी नहीं बनती तब वह बन्ध्या है। मनुष्य के लिए अन्याय छोड़ों क समान वह भी एक योद्धा है।

पशुओं में मनुष्य जैसी विशिष्ट बुद्धि न मही, पर उनमें पितनी बुद्धि है उस सब का अगर वे सदुपयोग करते हैं और मनुष्य अपनी

अतुल बुद्धि का अगर दुरुपयोग करता है, तो आप निर्णय कीविषय दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?

जीवन के प्रधान आगरभूत वीर्यरक्षा की कमौटी पर मनुष्य को और पशु को परिगण। आपको आश्चर्य होगा कि जगत् का सर्व श्रेष्ठ प्राणी किस प्रकार पशु में भी इस विषय में गया श्रोता है। जो घुरी बात पशुआ में भी नहीं पाई जाती वह मनुष्य में यहाँ तक कि आरु कहलाने वालों में भी पाई जाती है।

श्रावक परस्त्री का त्याग करते हैं पर स्त्री में अपन को सर्वथा ही सुल समझते हैं। आप जरा मरी बात पर ध्यान दीजिए। मैं पूछता हूँ, जो पराये घर की जूठन त्याग कर अपने घर की गोटियाँ मर्यादा मुलाकर रायेगा उसका अर्जाण न होगा ? क्या वह रोग से बच पायगा ? नहीं। भाइया ! चाहे पराये घर की जूठन आपन त्याग दी हो पर यदि अपन घर की मर्यादा —मात्रा— न रक्खागे तो याद रखना आपकी रक्षा न हागा। स्वदारमन्तोप धारण करना पुष्पमात्र का क्तव्य है। स्वस्त्री क प्रति तीव्र अमतोप होना श्रावक धर्म में प्रतिबुल है।

पहले के जमाने में बिना पूण वय के कोई संसार कृत्य नहीं करता था, पर आज आठ आठ दस दस वय के छोकर इस काम में लग जात हैं। जो माता पिता डाका उस उम्र में विवाह कर देते हैं, क्या वह क्रायदे के अनुसार है ? कई नामधारी आरु सूदम हिंसा की तरफ ध्यान देते हैं पर इस कृत्य क द्वारा होत वाला भयकर हिंसा उनका नजर में नहीं आती। जितनक धनवानों ने यह भ्रष्टकारिणी प्रथा चल कर भोली जनता के सामन एर पतित आदश खडा किया है। लक्ष क्रिया के

लिए शास्त्र में 'नरिसवया' आदि पाठ कहा गया है। विवाह करने के पश्चात् जो स्त्री 'धम्मसहाया' अर्थात् धर्मप्रिया म महायता पहुँचाने वाली समझी जाती थी वह आज भी मांग की माममी गिनी जाती है।

जो वस्तु संजीवनी जड़ी से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उसे हम प्रकार नष्ट करना सचमुच धार अविवक है और अपने पतन को आमंत्रण देना है। क्या आप अमृत म पैर धोने वाले को बुद्धिमान कहेंगे ? नहीं। जिस वस्तु म तीर्थंकर अवतार या महापुरुष कहलान बात महान् आत्मा उत्पन्न होत है, उस वस्तु को शत्रुकाल क बिना पैर देना कितनी भूल्यता है ? ना भाइ बहिन अपनी शक्ति का समुचित रक्षा करेंगे वे समार के सामने आदर्श खड़ा कर सकेंगे। आपने हनुमान जी का नाम सुना है, जिनमें अतुल बल था। जानत हैं उम बड़ बल कहाँ से आया था ? वह रानी अपना और महाराज पवन के आरह धप तक ब्रह्मचर्य पालने का प्रताप था। इसलिए वीर्यरक्षा करना अपनी सन्तान की रक्षा करना है।



कितनेक मनुष्यों की दशा कुत्तो और गधा से भी गई होती पाता है, नव मर सताप की सामा नहीं रहती। ये जानवर प्रकृति क नियमों क कितन पाबंद रहते हैं ? पर मनुष्य ? वह प्रकृति के नियमों का निःसंकोच होकर डुकराता है। शायद मनुष्य सोचता है— 'मेरे सामर्थ्यक सामन प्रकृति तुच्छ है। वह मेरा कामधियाइ मकेगी ?' पर इस अज्ञान के कारण मनुष्य को बहुत घुरे नतीजे मिले हैं और भिल रहें हैं। ये जानवर नियत समय में अपनी कामवामना तृप्त करने हैं पर मनुष्य के लिए 'मध दिन एक समान' है। कहाँ तक

कहा जाय, विवाह हो जाने पर भी मनुष्य परब्रह्मा के पीछे धूल खाते फिरते हैं। हाय ! यह कितनी उड़ी नाचता है ? क्या मनुष्य में अत्र पशुआ जितनी बुद्धि भी अवशेष नहीं रही ? ६० वर्ष के बूढ़े के गले १० रुप की कन्या बाँव देना विवाह प्रथा का भीमत्स उपहास करना है, मानवीय बुद्धि का दिवाला फूट देना है, अनाचार दुराचार को आमरण देना है, समाज का विरुद्ध अक्षम्य विद्रोह करना है, राष्ट्र का साथ द्रोह करना है, भावी सत्तान के पैर पर कुठाराघात करना है और स्वयं अपने जीवन को कलत्रित करना है।

1

हम प्रकार का दुस्ताहस प्रायः अमीर लोग ही करते हैं। येचारे गरीबा की इतनी हिम्मत कहाँ ? धनवान् मनुष्यो ! क्या तुम्हारे पाम घन इसलिए है कि तुम उससे पशुता पशुओं से भावदतर स्थिति खरीदो ?



## कालविकाह



पूत्र्य श्री श्रीलालनी महाराज कहा करते थे कि किमान जब बीज बोना है तो पहले उनका धनन देख लेना है । जो बीज ज्यादा धननगर होता है वह अच्छा गिना जाता है । और उससे निपन भी अच्छी होती है । किमान बीज की जिननी जाँच पढताल करता है उतनी जाँच आप अपने बालकों और बालिकाओं के लिए करते हैं ? याद रमिण वीर्यशाली युगल ही भारी—बलवान होगा और उसीसे उत्तम मन्तान उत्पन्न हो सकगी । पोचें माता पिता स्वय ही दु स्वमय जीवन नहीं बिनात धरन अपनी मन्तानपरम्परा म भा दुग्ग क बीज राते हैं । मित्रो ! मैं पूत्रना चाहता हूँ कि इस दुगति का उत्तरदायित्व किम पर है ? फडिए, छोटी उम्र में मातृपितृपद को दीक्षा लेन बालों का ।

बेचारे भोले-भाले बालक निहोंन गम्पत्य जीवन की पूरी तरह कल्पना भी नहीं की, जो समार को खिनबाड समझते हैं ।

म स्त्रीत्व और पुरुषत्व का भावना भी परिपक्व नहीं होने पाइ है, आप लोगों क द्वारा दाम्पत्य की घोषीली गाड़ी में जोत दिए जाते हैं। गेद की बात तो यह है कि आप बालविवाह क दुःपरिणाम प्रत्यक्ष देखते हैं फिर भी नहीं चेतत। बालविवाह के फल स्वरूप सतति रोगी, शोकी निर्बल और अल्पायुष्क होती है।

आज भारत में सर्वत्र इमी प्रकार की चचलता नजर आ रही है। विवाह क विषय में जितनी अधीरता पाई जाना है उतनी शायद ही किसी अन्य विषय में हो। नीतिज्ञ जनों का उपदेश है कि—

गृहीत इव केशेषु सत्युना धर्ममाधरेत् ।

अर्थात् मौन सिर पर नाच रहा है, प्रेमा मोचकर धर्म का आचरण करना चाहिए।

पर आपके यहाँ उल्टी गज्जा घटती है। धर्माचरण के समय तो आ। सोचत हैं—'बुद्धापा किस काम आएगा ? उस समय सामाजिक झुंझट जय कम हो जाएंगे तो धर्म की आराधना हो जायगी। पर वहाँ क विवाह के विषय में ऐसा विचार करते हैं मानों आपने समाज का नश्वरता को भलीभाँति समझ लिया है और जीवन का कल तत्र भरोसा नहीं है। इस कारण 'काल करे मो आन कर, आज कर मो अय।' इस नीति का अवलम्बन करते हैं। और आप समझत हैं कि हम अपना सतति के बड़े हिन्तचिन्क हैं। आपके रज्याल से आपकी मन्तान में उतना योग्यता नहीं कि वह आवश्यकता समझल पर अपना विवाह आप कर लेगी। पर मित्रो ! कभी आप यह भी विचार न्यत हैं कि जो मन्ता अपना विवाह करने योग्य भा न होगी, उसमें विवाहित जावन का गुन्तर भार सहार सक्ने की योग्यता उहाँ से होगी ?

अगर आप अपने अन्न करण की समीक्षा करें तो मालूम होगा कि विवाह मन्त्री अधीरता में मन्तान के कल्याण की कामना कारण नहीं है मगर अपने आन्द की अपरिहार्य अभिनापा ही उस अधीरता का प्रधान कारण है। पुत्र और पुत्रियों से आपका जी भर गया है। अब आपके मनोरथन के लिए नयी मामत्री के रूप में पोता और पोतियों का जरूरत है। इस अपना मनोरथन के हेतु आप अपनी सन्तान पर भी दया नहीं खाते। अपने साथ के लिए उनके साथ ऐसा निर्दय व्यवहार करते हैं कि वह जीवन भर इसका कटुक फल भुगनना पड़ता है और फिर भी उमका अन्त नहीं आता।

मित्रो ! इस दुर्भावना में बचो। विचार करो कि आपको थोड़े साथ से मन्तान का जीवना किम प्रकार नष्ट हो रहा है ? अपनी हवम पूरी करने के लिए ऐसे बालकों का विवाह मत करो जिन्हें विवाह का उद्देश्य ही मालूम नहीं है।

सन्तान उत्पन्न करने तुमने अपने मिर पर जो भारी उत्तरदायित्व अगीकार किया है उसका निर्वाह उनका विवाह करने से नहीं होता। ऐसा करके आप अपने उत्तरदायित्व का अधिक धरते हैं। अगर आप मन्तान के उत्तरदायित्व से निभाना चाहते हैं—अगर आप मन्तति ऋण से मुक्त होना चाहते हैं तो उन्हें सुशिक्षित बनाएँ, वीर्यशाली बनाइएँ, जीवनोपयोगी अनेक विद्यार्थी का सम्यक् ज्ञान दीजिए। जो माता पिता मन्तान को जन्म देता है पर उसे जीवन की समर्था देन में लापरवाही करता है वह अपने उत्तरदायित्व से मुकरता है और मन्तान के प्रति कृतघ्नता प्रदर्शित करता है।

माता पिता का परम कर्त्तव्य तो यह है कि बालक या बालिका जन्म तक परिपक्व उम्र का न हो जाय जब बालावरण



दुमरों की आँख खोल दी। पर जो लोग जानकर आँसों बन्द किए हैं उनका क्या इलाज हो सकता है? अगर वह पृथ्वी विवाह करा पा दुस्ताहम न करता तो उस लड़की का पतन शायद ही होता।

भारत में पहले स्वयंवर का रीति प्रचलित थी। कन्या अपनी इच्छा के अनुसार घर का चुनाव कर सकती थी। माता पिता उसमें विशेष हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे जानते थे—एक जावन को दुमर जीवन के साथ मिला देना कठिन काम है। अगर 'योग्य योग्यन योचयेत्' के अनुसार उचित मन्वन्ध न हुआ तो परिणाम अत्यन्त अवाञ्छनीय होता है।

बाल में यह काम माता पिता ने अपना हाथ में लिया। उस समय यह परिवर्तन सकारण रहा होगा पर आज तो इस परिवर्तन में कुछ और ही रंग दिग्याया है। अनक धार तो ऐसा होता है कि क्या भी व्यापार बन जाता है।

श्रावणो! आपने यह यथान की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए की कन्या विक्रय और घर विक्रय आवश्यकता के विरुद्ध हैं। हममें धर्म, नीति और समाज की मयादा का खंडन होता ही है, साथ ही बच्चे जाने वर और कन्या का जावन भी सदा के लिए दुःखमय बन जाता है। अतएव हम कुप्रथा का अन्त परा हमी में कल्याण है।



## मृत्युमोज



मृत्युमोज गारबाइ प्रान्त में मान्य कहलाता है। 'गोमर' का भोजन महागसमी भोजन है। वह गरीबों का अधिक गरीब बनाने वाला और धनवानों का न्यादान बनाने वाला है।

आप मीन के उलटव में किये जाये वाले भोजन को खाने के लिए जिम्मेदार उ गारबाइ के माध्यम से, क्या कभी उनके घर की भीतरी हालत भी आपसे पूछी है? क्या जातीय समझौते की इतिहासी परक घर भोजन कर खान में ही हा जानी है?

आपकी इस कुरीति ने अनेक गरीबों का सत्यागार कर डाला है। भनवानों लोगों को पैस की कमी आई। वे इस प्रसंग पर पैसा सुटाते हैं और गरीबों पर ताने कमत हैं। बेचार गरीब जाति में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए धनवानों का अजुकरल करत हैं। जानि में भनवानों की प्रधानता होती है और उन्होंने प्रतिष्ठा की कमी की इसी प्रकार की बना रखी है। पर याद रखना

दूसरा की ओर रोल नीं। पर जा लोग जानकर आसैं थद् किण हैं उनका क्या इलाज हो सकता है ? अगर वह वृद्ध विवाह करे वा दुस्साहम न करेता तो घम लड़की का पता शायद ही होता ।

भारत में पहल स्वयंवर की रीति प्रचलित थी। कन्या अपनी इच्छा के अनुसार वर का चुनाव कर सकती थी। माता पिता उसमें विशेष हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे जानते थे—एक जावन जो दूमर जीवन के साथ मिला देना कठिन काम है। अगर 'योग्य योग्येन योजयेत्' के अनुसार उचित सम्बंध न हुआ तो परिणाम अन्यत्र अवाच्छनीय होता है।

बाद में यह काम माता-पिता ने अपना हाथ में लिया। उस समय यह परिषत्तन सकारण रहा होगा पर आन तो इस परिषत्तन ने कुछ और ही रंग दिखाया है। अनेक बार तो ऐसा हाता है कि ब्याह भी न्यापार बन जाता है।

आवरो ! आपको ये घनात की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए की न या विक्रय और वर विक्रय आवश्यकता के विरुद्ध हैं। हममें घम, नीति और सम्राज की मर्यादा का रखना होता ही है, साथ ही बेचे जाने वर और कन्या का जीवन भी सदा के लिए दुःखमय बन जाता है। अतएव हम कृपया न अन्त करो इसी में करवाए है।







